तुलसी के गीतिकाव्यों में संगीत का
अथवा
सांगीतिक-तत्वों का विश्लेषणात्मक अध्ययन

दयानन्द वैदिक स्नातकोत्तर महाविद्यालय, उरई
(सम्बद्ध बुन्देलखण्ड-विश्वविद्यालय, झांसी, उ०प्र०)

के

संगीत-विभाग के अन्तर्गत पी-एच.डी. उपाधि

हेतु

शोध-प्रबन्ध

सन्-2007
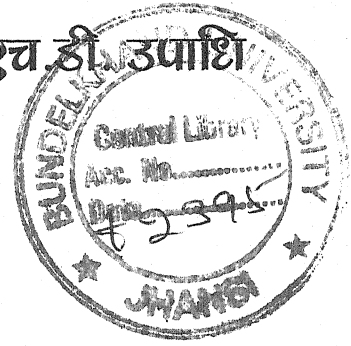
निर्देशिका
डॉ. (श्रीमती) वीना श्रीवास्तव
रीडर-संगीत विभाग
दयानन्द वैदिक महाविद्यालय,
उरई-(उ०प्र०)

अनुसंधित्सु
श्रीमती शोभा कंचन
एम.ए. संगीत

दयानन्द वैदिक महाविद्यालय, उरई

डा0 वीणा श्रीवास्तव
रीडर संगीत (गायन) विभाग
दयानन्द वैदिक महाविद्यालय
उरई –285001 (जालौन)

संगीत निर्देशिका वातायन उरई
(रंगमंचीय एवम् सांस्कृतिक संस्था)

मानद् सदस्य, नीति निर्धारण प्रकोष्ठ
संस्कृति विभाग उ0प्र0 शासन, लखनऊ

''स्वराश्रय''
633, नया रामनगर,
उरई–285001 (उ0प्र0)
Ph. (05162) 52737
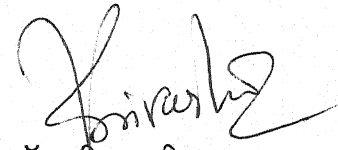
पत्रांक :

दिनांक 20/12/06

निदेशक का प्रमाण पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि श्रीमती शोभा कंचन एम0 ए0 (संगीत गायन) ने मेरे निर्देशन में ''तुलसी के गीति–काव्यों में संगीत का अथवा सांगीतिक–तत्वों का विश्लेषणात्मक अध्ययन'' विषय पर शोध–कार्य सम्पन्न किया है। तुलसी के गीति–काव्यों विशेष रूप से विनय–पत्रिका, गीतावली एवं श्रीकृष्ण गीतावली के पदों में काव्य तत्वों के साथ–साथ संगीत–तत्वों का अनुशीलन, रागों पर आधारित पदों का स्वरांकन एवं सी0 डी0 में रिकार्ड कर उनको संरक्षित किया गया है। साथ ही तुलसीदास जी को वाग्गेयकार के रूप में प्रतिष्ठित किया है। ये इनका शोधपरक मौलिक कार्य है। जो इनके श्रम एवं लगनपूर्वक किये गये कार्य का सूचक है।

इन्होंने नियमानुसार 200 दिन की उपस्थिति पूरी कर अध्यवसाय एवं अध्येतावृत्ति का परिचय दिया है। इस प्रबन्ध का कोई भी अंश या सम्पूर्ण प्रबन्ध किसी अन्य विश्वविद्यालय की शोध उपाधि के लिए विचारार्थ प्रस्तुत नहीं किया गया है। मैं इस शोध प्रबन्ध को परीक्षकों के मूल्यांकन हेतु प्रस्तुत करती हूँ।

डॉ0 वीणा श्रीवास्तव
रीडर एवं विभागाध्यक्ष – संगीत
दयानन्द वैदिक महाविद्यालय
उरई (जालौन)

प्राक्कथन

काव्य कवि मात्र के लिए ही नही; अपितु समस्त मानव–जीवन के लिए सर्वाधिक आनन्ददायी वस्तु है। संसार में सर्वोपरि काव्य ही है। काव्य की प्रशंसा में कहा भी गया है–

"कं पृच्छामः सुराः स्वर्गे निवासामो वयं भुवि।

किंवा काव्य रसः स्वादुः किंवा स्वादीयसी सुधा।"

काव्य का रसास्वादन स्वर्ग के समान है। और इसका पान करने से मन में उत्साह और आनन्द का संचार होता है। आनन्द के संचार के साथ–साथ काव्य हमें संस्कारित भी करता है।

काव्य में अनुभूति और कला का योग काव्य को उत्कृष्ट बनाता है। काव्य में सरसता, सामाजिक उपादेयता, प्रेषणीयता, रागात्मक परिष्कार प्रमुख हैं। परन्तु संगीतात्मक एवं नाद–सौन्दर्य काव्य को आकर्षक बनाते हैं।

संगीत और काव्य दोनों ही कलाएं गतिशील हैं। कोई भी कलाकार भावों को व्यक्त करने के पूर्व अपने अन्दर उसका चित्र अवश्य अंकित कर लेता है। कल्पना को आकार देना कलाकार की साधना का चरम रूप है। कवि कल्पना को शब्द व अर्थ द्वारा, चित्रकार रंग व तूलिका द्वारा तथा संगीतज्ञ नाद एवं स्वर द्वारा उसे साकार रूप प्रदान करता है।

साहित्य एवं संगीत का सम्बन्ध प्राचीन काल से ही चला आ रहा ह। संगीत के प्रकाण्ड विद्वानों का मानना है। कि आदिम संगीतज्ञ नटराज के ताल–लय के समन्वित ताण्डव से काव्य व संगीत के तत्वों का एक साथ ही सूत्रपात हुआ। यही धारणा है कि प्राचीन काल में कवि स्वयं गायक भी होते थे।

संगीत–तत्व की यही मूल प्रतिष्ठा मध्य काल के सन्त कवियों में भी दिखाई देती है। सन्त शिरोमणि तुलसीदास जी ने भी अपने पदों, भजन एवं रचनाओं में गायन को भी दृष्टि में रखा है। काव्य के अन्तर्गत कविता या पद जब तक गेय रूप में प्रस्तुत नहीं किए

जाते तब तक वह अपना सम्पूर्ण प्रभाव नहीं डाल पाते।

संगीत भी जब तक कवित्व या शब्दयुक्त नहीं होता, तब तक पूर्णतया प्रभावोंपादपा नहीं होता। कवि सार्थक शब्दों की सहायता से तथा उपयुक्त वातावरण का सहारा लेकर ही उपयुक्त व अभीष्ट रूप व रस की सृष्टि करता है। इसी से विश्व का प्राचीनतम साहित्य कविता में लिखा गया। 'कालोई' ने–कविता को संगीतमय विचार ' कहा है। कविता में किसी न किसी रूप में संगीत तत्व विद्यमान रहता है। ध्वनि व लय का उपयोग कविता व संगीत में समान रूप से होता है। संगीत जिन भावनाओं की सूक्ष्म व निराकार अभिव्यक्ति करता है, कविता उसी को साकार रूप प्रदान करती है।

'तुलसी' के पद अपनी मार्मिक अभियक्ति और कलात्मक शब्द–योजना के कारण ही प्रसिद्ध है।, ताल और स्वर के सांचे में ढलकर कविता के शब्द जब आगे बढ़ने लगते हैं, तब एक–एक स्वर एक एक शब्द को मार्मिकता प्रदान करने लगते हैं।

तुलसीदास को महाकवि के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त है। आपकी रचनाएं असीम हैं। रामचरित मानस तो जन–जन में ऐसे व्याप्त है, जैसे प्रत्येक ह्रदय में राम। तुलसी के गीति–काव्यों को संगीत के आधार पर स्वर एवं लयबद्ध किया गया है जिससे वे गेय हो सके हैं।

तुलसी के गीति काव्य को समय–2 पर अपनी–2 परिभाषाओं मान्यताओं एवं काव्य की अनेक कसौटियों पर कसा गया है। परन्तु शोधार्थी द्वारा तुलसी के गीति–काव्य– विनय–पत्रिका, गीतावली एवं श्रीकृष्ण गीतावली के उन पदों को जिनके मात्र राग नाम का ही उल्लेख मिलता है। उन रागानामुल्लिखित पदों एवं उनकी रागानुसार एवं तालानुसार स्वरलिपियां बनाकर उनकी धुनों को सी0डी0 में रिकार्ड कर उनको प्रस्तुत करने का कार्य किया गया है। साथ ही पदों में काव्यतत्व के साथ–2 संगीत–तत्वों को भी उद्घाटित कर तुलसी को वाग्गेयकार की श्रेणी में प्रतिष्ठापित कर शोध परक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

प्रस्तुत शोध ग्रंथ का प्रथम अध्याय– 'काव्य एवं संगीत से संबंधित है। प्रस्तुत अध्याय में काव्य एवं संगीत का अर्थ एवं स्वरूप, संगीत–तत्व एवं काव्य तत्व तथा संगीत

और काव्य के पारस्परिक सम्बन्ध पर विचार किया गया है।

द्वितीय अध्याय में मध्यकालीन, संगीत की स्थिति का सम्पूर्ण विवरण दिया गया है। मध्यकालीन संगीत, संगीत का स्वर्ण युग था। तत्कालीन सन्तों पर भी संगीत का विशेष प्रभाव था। तुलसी को तत्कालीन संगीतज्ञों का सानिध्य प्राप्त था। अतः उन पर संगीत का प्रभाव पड़ना जायज था। संगीत ने जहाँ एक ओर काव्य को समृद्ध किया वहीं दूसरी ओर काव्य ने संगीत का सानिध्य पाकर रस वर्षा की। शास्त्रीय संगीत का सम्पूर्ण प्रभाव कवियों एवं सन्तों पर पड़ा। फलस्वरूप उन्होंनें अपने काव्य में राग एवं ताल का सन्निवेश कर काव्य को श्रेष्ठता प्रदान की।

तुलसी दास जी की काव्य–दृष्टि के साथ–साथ उनकी सांगीतिक रूचि–प्रवृत्ति पर विशेष प्रकाश डाला गया है। मध्ययुगीन भारतीय संस्कृति का उत्कर्षापकर्ष तुलसी के काव्य में विविध रूपों में परिलक्षित हुआ है। तुलसी के काव्य में सभी कलाओं को स्थान मिला है। जीवन में इन कलाओं की श्रेष्ठता सिद्ध करते हुए इनकी अनिवार्यता को भी आवश्यक बताया है।

तृतीय अध्याय में तुलसी के साहित्य एवं गीति–काव्यों का विस्तृत वर्णन किया गया है। तुलसी ने गीति काव्यों विशेषकर विनय–पत्रिका, गीतावली एवं श्रीकृष्ण गीतावली में श्री राम के विभिन्न पक्षों को सामने रखा है। विनय पत्रिका में विनय से सम्बन्धित पद हैं, तो गीतावली में सम्पूर्ण रामचरित का पदों में वर्णन किया गया है। परन्तु गीतावली में रसों का सांगोपांग दिग्दर्शन कराया गया है। श्री राम के रूप–माधुर्य, भगवान की बाल–लीला, भरत–मिलाप, जटायु–उद्धार, विभीषण–शरणागति, सीता जी की वियोग व्यथा, राम–हिंडोला तथा होली आदि का बड़ा ही करूण एवं मर्मस्पर्शी वर्णन किया गया है। जिसे भिन्न–2 रागों में प्रस्तुत किया गया है।

श्रीकृष्ण गीतावाली, में भिन्न–2 लीला–प्रसंगों का वर्णन है बाललीला, रूप–सौन्दर्य,विरह, उद्धव–गोपिका संवाद आदि के पद परम सरस और मनोहर हैं। उपर्युक्त

का विशद् वर्णन प्रस्तुत अध्याय में किया गया है।

चतुर्थ अध्याय में गीति–काव्यों के 21 पदों को तथा उन पदों को तुलसीदास जी द्वारा उल्लिखित रागों में बांधकर उनकी स्वरलिपि प्रस्तुत की गई है। साथ ही भिन्न–2 तालों में बंधी स्वरलिपियों को प्रस्तुत किया गया है।

पंचम अध्याय पदों में प्रयुक्त रागों के सम्पूर्ण परिचय से सम्बन्धित है। रागों का विस्तृत वर्णन, रागों का स्वरूप चलन तथा सांगीतिक तत्वों का वर्णन किया गया है।

छठे अध्याय में वर्णित तुलसी के गीतिकाव्यों में काव्य और संगीत का मणिकांचन योग है। तुलसी ने अपने गीतिकाव्यों में रस–व्यंजना एवं छन्द–योजना का विशेष प्रयोग किया है। उनकी रस भाव–व्यजंना एवं छन्छ–योजना ही उनको मध्यकालीन साहित्यकारों में श्रेष्ठ सिद्ध करती है। तुलसी ने हिन्दी गेय परम्परा की पृष्ठभूमि में मानवता वादी धार्मिक भावनाओं का गीति–काव्य के रूप में एक सुस्पष्ट स्वरूप समाज और साहित्य के समक्ष रखा। साथ ही पदों में लयात्मकता एवं लयात्मक तत्वों का भी वर्णन किया गया है।

संगीत के माधुर्य में साहित्य की ग्राह्यता स्वीकार कर एवं उसे जन–2 तक पहुंचाने में सफल तुलसी एक वाग्गेयकर के रूप में भी सफल रहे।

अतः काव्य और संगीत दोनों की साधना की श्रेष्ठ परिणति के रूप में तुलसी के गीति–काव्यों का विस्तृत विवेचन, उनका सांगीतिक विश्लेषण कर पदों की स्वरलिपियां एवं सम्बन्धित सी0डी0 अर्थात सम्पूर्ण शोध अपने लक्ष्य और उद्देश्य को प्रस्तुत करता हुआ आपके समक्ष है।

शोध– ग्रंथ से संबंधित समस्त पत्र–पत्रिकाओं एवं पुस्तक आदि का विवरण संदर्भ ग्रंथ सूची में दिया गया है।

प्रस्तुत शोध प्रबंध में जिन गुरूजनों ने, विद्वानों ने, इष्ट मित्रों व सहयोगियों के कृपा की है, उनके प्रति मैं हृदय से कृतज्ञ हूँ।

सर्वप्रथम मै अपनी शोध–निदेशिका डॉ0 वीना श्रीवास्तव के प्रति हृदय से

कृतज्ञ हूँ जिनके सफल निर्देशन एवं पथ–प्रदर्शन से ये शोध कार्य सुसम्पन्न हो सका है।

मेरे परम पूज्य गुरू श्री आर0सी0एस0 नाडकरणी के प्रति मैं हृदय से विनयावनत हूँ, जिन्होनें संगीत के क्षेत्र में निरन्तर प्रगति के पथ पर अग्रसित किया।

शोध के प्रारम्भिक क्षणों में जो सम्बल एवं स्नेह मेरे पिता श्री जे0बी0 वर्मा 'कैफ़ बरेलवी' एवं माता श्रीमती कमला वर्मा जी ने प्रदान किया उनके लिए शब्द नाकाफ़ी है।

आदरणीय शशि दीदी एवं छोटी बहन मधु वर्मा ने शोध कार्य में सामग्री आदि प्रदान करने में अप्रतिम सहयोग किया। में उनकी हृदय से आभारी रहूंगी।

भ्राता तुल्य श्री राजेश निरंजन एवं संदीप एवं कुमारेन्द्र सिंह ने स्वरांकन एवं रिकार्डिंग आदि में सहयोग कर इस शोध कार्य को पूर्णता प्रदान करने में मदद की। मैं उनकी हार्दिक धन्यवाद प्रेषित करती हूँ।

अनेक समस्याओं के बावजूद भी मुझे पारिवारिक दायित्वों से मुक्त कर निरन्तर सहयोग एवं प्रेरित करने वाले मेरे पति श्री उमेश कंचन एवं मेरी प्यारी बेटियां शिविका, श्रेया एवं साक्षी ने मुझे पूर्ण सम्बल प्रदान किया, जिसके कारण ये शोध कार्य निर्विध्न पूर्ण हुआ।

अन्त में अपने सभी इष्ट मित्र, सहयोगियों एवं शुभचिन्तकों के प्रति भी आभार व्यक्त करती हूँ, जिनकी शुभकामनाओं के फलस्वरूप ये शोध–यज्ञ सुसम्पन्न हो सका।

Skanchan

श्रीमती शोभा कंचन

अनुसंधित्सु

अनुक्रमणिका

तुलसी के गीति–काव्यों में संगीत का अथवा सांगीतिक तत्वों का विश्लेषणात्मक–अध्ययन

प्रथम अध्याय

'काव्य एवं संगीत'

(1) अर्थ एवं स्वरूप –

'कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूः (1) (ईशावास्योपनिषद्, 8) की धारणा कवि और उसके स्वरूप को लेकर वैदिक साहित्य में ईश्वर के पर्याय रूप में स्वीकारी गयी है। यहाँ कवि का अर्थ रचनात्मक शक्ति अथवा प्रतिभायुक्त व्यक्ति से स्वीकारा गया है। इसी प्रकार 'तदेतत्सत्यं मन्त्रेषु कर्माणि कवयो यान्पश्यंस्तानि त्रेतायां बहुधा संततानि'(2) (मुंडकोपनिषद् द्वितीय खंड,1) में स्वीकारा गया है कि जिस प्रकार ऋषि तत्व और रहस्य को अनुभव करता है या प्रत्यक्ष रूप में देखता है उसी प्रकार कवि भी अपनी कविता का प्रत्यक्ष दर्शन करता है। मुंडकोपनिषद् में कवि को तत्वद्रष्टा ऋषि के रूप में स्वीकारा गया है। कवि–प्रतिभा के द्वारा ही कवि के मन में काव्य का अथाह स्रोत विद्यमान रहता है। शक्ति–सम्पन्न कवि और उसके काव्य को किसी परिचय की आवश्यकता नहीं होती है। कवि सत्य का ज्ञाता, सौन्दर्य का स्रष्टा और रहस्य का द्रष्टा है। जड़ चेतन की सभी वस्तुएं कवि के लिए अनुभूति–संयुक्त और संवेदनशील हैं। कवियों की इसी संवेदनशीलता से जीवन का एक आदर्श प्रस्तुत होता है। जीवन की कला कवियों की कृतियों द्वारा विकास पाती हैं। कवि अपनी काव्यमय प्रस्तुतियों के द्वारा अमृतमयी सन्देशों और सौन्दर्य को प्रस्तुत करता है।

काव्य कवियों मात्र के लिए ही नहीं अपितु समस्त मानव–जीवन के लिए सर्वाधिक आनन्ददायी वस्तु है। संसार में सर्वोपरि काव्य ही है। काव्य प्रशंसा में किसी कवि ने कहा भी है –

'कं पृच्छामः सुराः स्वर्गे निवासामो वयं भुवि।
किंवा काव्यरसः स्वादुः किंवा स्वादीयसी सुधा।।

काव्य का रसास्वादन स्वर्ग के अमृत समान है और इसका पान करने से मन में उत्साह और आनन्द का संचार होता है। काव्य हमें आनन्द देने के साथ–2 हमें संस्कारित

भी करता है। हमारे भीतर स्नेह और मधुरता का विकास करता है। ऐसे काव्य की रचना यात्रा कभी भी नहीं रूकती, वह निरन्तर नये–नये आयामों की रचना करती हुई मानव को आनन्दित करती रहती है।

काव्य शब्द 'कवि' तथा 'ष्यञ' के योग से निष्पन्न हुआ है। हलायुध कोश में 'कवि' शब्द को 'कु' धातु में 'अच : ई' प्रत्यय के संयोग से उत्पन्न बताकर उसका व्युत्पत्ति परक अर्थ इस प्रकार किया गया है– 'कवते सर्वं जानाति, सर्वं वर्णयति, सर्वं सर्वतो गच्छति,' अर्थात जो सब कुछ जानता है, सभी का वर्णन करता है तथा चारों ओर जाता है, कवि कहलाता है।

भट्टगोपाल ने कवि शब्द की व्याख्या इस प्रकार की है– ''कौति शब्दायते विमृशति रसभावान् इति कविः अर्थात रस और भावों के विमर्शकर्ता को कवि कहते हैं।

इसी कवि की नवोन्मेषशालिनी प्रतिभा और रसभावों से परिपूर्ण रचना काव्य का रूप लेकर सामने आती है। काव्य की शक्ति को, उसका मर्म समझने को कवि शब्द का भावार्थ समझना आवश्यक होता है। शायद इसी कारण ज्यादातर विद्वानों ने कवि शब्द की व्यापक व्याख्या की है। 'कवि' शब्द की उक्त व्याख्यों के अतिरिक्त 'काव्य' शब्द को अलग–अलग रूपों में परिभाषित किया गया है। हलायुध कोश के अनुसार, 'कवेरिदं कर्मभावो वा', अर्थात कवि का कर्म या भाव काव्य कहलाता है। संस्कृत साहित्य में शब्द और अर्थ के सहभाव को अधिक महत्व दिया गया है। भामह ने इसी को आधार बनाकर काव्य की परिभाषा दी है – 'शब्दार्थो सहितौ काव्यम्' अर्थात शब्द और अर्थ के सहभाव को काव्य कहते हैं। यहाँ कुछ विद्वानों की दृष्टि में इस परिभाषा में दोष है। शब्दार्थ का सहभाव केवल काव्य में ही नहीं अपितु साहित्य, शास्त्र, लोक व्यवहार आदि में भी मिलता है। कुन्तक ने इस दोष का निवारण करते हुए लिखा है– ''साहित्य वह है जिसमें शब्द और अर्थ की न्यूनता और आधिक्य से रहित, परस्पर स्पर्द्धापूर्वक मनोहारिणी तथा श्लाघनीय स्थिति हो।'' *(1) (कुन्तकः हिन्दी वक्रोक्ति जीवित (सम्पा0 विश्लेश्वर 1/17 वृंति)*

प्रारम्भ में 'काव्य' और 'साहित्य' दोनों का एक ही अर्थ ललित साहित्य अथवा भावात्मक साहित्य से था। 'काव्येषु नाटकं रम्यम्', गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति', 'कविर्दण्डी, कविर्दण्डी, कविर्दण्डी न संशयः' आदि उक्तियों से स्पष्ट है कि प्रारम्भ में नाटक, गद्य, आदि को काव्य के अन्तर्गत ही माना जाता था किन्तु धीरे धीरे 'काव्य' शब्द का अर्थ संकुचित होने लगा। आज सभी विधाओं के लिए साहित्य शब्द का उपयोग किया जाता है। इसमें गद्य, पद्य, नाटक, उपन्यास, चम्पू आदि आता है किन्तु 'काव्य' का तात्पर्य पद्यबद्ध रचनाओं से होता है। वर्तमान में साधारण शब्दों में कहा जा सकता है कि पद्यबद्ध रचना अथवा कविता को ही 'काव्य' कहा जाता है।

काव्य का स्वरूप अत्यन्त व्यापक है, साथ ही उतना सूक्ष्म भी। आदिकाल से लेकर वर्तमान तक काव्य को लक्षणों के आधार पर बाँधने का प्रयास किया जाता रहा है। हर प्रयास के बाद भी काव्य का विकासशील स्वरूप लक्षणों और परिभाषाओं की सीमा से बाहर ही दिखाई पड़ता है। काव्य को लेकर जनमानस में लोगों की अपनी अपनी धारणाएं हैं। कुछ लोगों का मानना है कि जैसे जैसे सभ्यता विकसित होती रही, वैसे वैसे काव्य का ह्रास होता रहा। अपनी इस बात के पीछे इन लोगो का तर्क होता है जितने काव्यग्रन्थ पुरातन काल में लिखे गये उतने वर्तमान में नहीं लिखे जा रहे हैं। इसके साथ ही आज काव्य ग्रंथों के पढ़ने का प्रमाण दिखाई नहीं देता है।

कारण कुछ भी रहे हों, आज भले ही महाकाव्यों–प्रबंध अथवा खण्ड–काव्यों को न पढ़ा जा रहा हो पर सत्यता तो यह भी है कि मानव काव्य रचनाओं के द्वारा रसानुभूति करने का प्रयास भी कर रहा है। काव्य के जीवन से घनिष्ठ सम्बन्ध के कारण भले ही आज पुरातन काल जैसी समृद्ध परम्परा का निर्वाह न हो पा रहा हो पर काव्य लक्षणों, उसके स्वरूप आदि पर विद्वानों की चर्चाओं से स्पष्ट है कि काव्य को वर्तमान में भी मानव जीवन के आसपास स्वीकारा जाता है। यद्यपि अनेक विद्वानों द्वारा दिए गये काव्य के विविध लक्षणों से काव्य के स्वरूप को बाँधा नहीं जा सकता किन्तु इन लक्षणों के आधार पर काव्य के

विविध रूपों और तत्वों को आसानी से समझा जा सकता है। काव्य लक्षणों को संस्कृत, हिन्दी, अंग्रेजी भाषाओं के विद्वानों ने अपने अपने तरीके से समझाया है।

संस्कृत काव्य–लक्षण --

लक्षण संस्कृत का परिभाषिक शब्द है जिसका अर्थ वह सरल तथा संक्षिप्त परिभाषा से है जो अव्याप्ति, अतिव्याप्ति और असम्भव दोषों से मुक्त हो। सरल भाषा में इसे पूर्ण एवं निर्दोष परिभाषा कहा जा सकता है परन्तु वास्तविकता में ऐसा होना सम्भव नहीं दिखता, फिर काव्य के क्षेत्र में निर्दोष परिभाषा देना तो दुष्कर कार्य है। इसी कारण से आज तक काव्य की पूर्ण, उचित परिभाषा नहीं बन सकी जो काव्य के स्वरूप को भली भांति समझा सके।

संस्कृत का प्रथम काव्य शास्त्रीय ग्रन्थ भरतमुनि का 'नाटयशास्त्र' है। नाट्य शास्त्र में यद्यपि काव्य का कोई लक्षण नहीं दिया गया है किन्तु काव्य के विविध अंगों – रस, गुण, अलंकार, भाव आदि– का विवेचन किया गया है। नाट्य शास्त्र के सप्तदश अध्याय में काव्य लक्षणों के सन्दर्भ में उल्लिखित है–

मृदुललित पदाठयं गूढ शब्दार्थ हीनम्
जनपद सुख बोध्यं युक्तिमन्नृत्योज्यम्।
बहुरसकृतमार्ग सन्धिसन्धानयुक्तम्
स भवति शुभकाव्यं नाटकप्रेक्षकाणाम्।।

भरतमुनि ने उक्त के अनुसार सात काव्य लक्षणों को स्वीकारा है– (1) मृदु ललित पद–योजना (2) गूढ शब्दार्थ हीनता (3) सर्वसुगमता (4) युक्ति युक्तता (5) नृत्य की योजना योग्य (6) नानाविध रस योजनाओं से परिपूर्ण (7) सन्धियुक्तता। देखा जाये तो इसमें काव्य लक्षण न होकर काव्य–प्रशस्ति मात्र ही किया गया है। इस दृष्टि से इसे काव्य की परिभाषा नहीं स्वीकारा जा सकता है। काव्य की प्राचीनतम परिभाषा के लिए अग्निपुराण की काव्य सम्बन्धी परिभाषा का अवलोकन उचित रहेगा।

''संक्षेपाद्वाक्यमिष्टार्थव्यवच्छिन्ना पदावली।

काव्यं स्फुरदलंकारं गुणवद्दोषवर्जितम।।(1)

(अग्निपुराण 337 अध्याय, 607 श्लोक)

इस परिभाषा के अनुसार संक्षेप में अपने इष्ट को प्रकट करने वाली पदावली से युक्त काव्य जिसमें अलंकार प्रकट हों, दोषरहित तथा गुणयुक्त हो वही काव्य है। इस परिभाषा से एक बात स्पष्ट होती है कि संक्षिप्त वाक्य रमणीयता का द्योतक है, अलकंार और गुण से युक्त होना काव्य गुणों की स्थिति का संकेत है तथा दोषरहित होना उत्तम काव्य का लक्षण है, ऐसी स्थितियों के द्वारा काव्य को बाहय सीमाओं में बांधने का प्रयत्न किया गया है। इसमें इसका मुख्य प्रभावकारी स्वरूप स्पष्ट नहीं हो सका है।

अग्निपुराण की काव्य सम्बन्धी यह परिभाषा काव्य के स्वरूप को पूर्णतः परिभाषित नहीं कर सकी, तब विद्वानों ने संस्कृत काव्यशास्त्र के प्रसिद्ध आचार्य भामह के काव्य लक्षण को सर्वथा उपयुक्त स्वीकारा। आचार्य भामह की परिभाषा के अनुसार शब्द और अर्थ का संयोग काव्य है अर्थात--शब्दार्थो सहितौ काव्यम् (काव्यालंकार प्रथम परिच्छेद, 16) ऐसा स्वीकारा गया कि भामह की यह परिभाषा काव्य के व्यापक स्वरूप को परिभाषित करती है क्योंकि यह काव्य के साथ साथ इतिहास, शास्त्र आदि को लेकर भी चलती है। इसके बाद भी इस परिभाषा पर काव्य रूप के स्पष्टीकरण को उचित ढंग से न करने का भी आरोप लगा। ऐसा माना गया कि शास्त्रादि में अर्थ ही महत्व रखता है, शब्द नहीं। अतः यह परिभाषा भी काव्य के अत्यन्त व्यापक और वाह्य स्वरूप को ही स्पष्ट करती है।

भामह की शब्दार्थ को मानने वाली परिभाषा से भिन्न परिभाषा आचार्य दण्डी द्वारा की गई थी। आचार्य दण्डी इष्टार्थ के व्यंजक पदों को ही काव्य स्वीकारते हैं। उनकी परिभाषा के अनुसार अभीष्ट अर्थ को व्यक्त करने वाली पदावली ही काव्य–शरीर है। इसके साथ साथ उनका मानना था कि अलंकारों के माध्यम से काव्य को शोभा प्राप्त होती है।

'काव्याशोभाकरान् धर्मान् अलंकारान् प्रचक्षते'– (काव्यादर्श) काव्य को शब्द, अर्थ, अलंकार, गुणों से दोषरहित मानने वाले विद्वानों का एक व्यापक वर्ग था। अधिसंख्यक

विद्वानों की दृष्टि में शब्द और अर्थ का समन्वय ही काव्य है। मम्मट ने इसमें थोड़ा सा आगे आकर उत्तर संस्कृत काल की प्रौढ़ रचना 'काव्यप्रकाश' में काव्य की अपनी परिभाषा दी है। जिसमें शब्द और अर्थ की समष्टि से आगे भी इस शब्दार्थ की कुछ विशेषताओं को बतलाया है। मम्मट की परिभाषा के अनुसार–

'तद्दोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलंकृति पुनः क्वापि।'

मम्मट की इस परिभाषा में शब्दार्थ की जिन विशेषताओं पर प्रकाश आरोपित किया गया है उनमें प्रथम–यह दोषों से मुक्त होना चाहिए, यदि सदोष है तो काव्यत्व की हानि होगी। द्वितीय–इसे माधुर्य प्रसाद आदि गुणों से सम्पन्न होना चाहिए। तृतीय–साधारणतः काव्य अलंकृत ही होता है किन्तु जहाँ रसादि की प्रतीति हो वहाँ अलंकार रहित भी हो सकता है। "मम्मट का काव्य लक्षण इतना लोकप्रिय हुआ कि हेमचन्द्र, वाग्भट, विद्याधर, विद्यानाथ, जयदेव आदि अनेक आचार्यो ने उनकी काव्य विषयक धारणा का अनुकरण करते हुए अपने लक्षण प्रस्तुत किये हैं।"(1)

(भारतीय काव्य शास्त्र–डॉ0 रामानन्द शर्मा,पृ0 6)

मम्मट की यह परिभाषा भले ही लोकप्रिय रही हो किन्तु इसका भी विरोध किया गया। मम्मट के द्वारा काव्य में अलंकारों को वैकल्पिक मानने का विरोध हुआ। जयदेव ने इसका विरोध करते हुए लिखा कि काव्य निसर्गतः अलंकारयुक्त होता है, उसे अलंकार रहित मानने का प्रश्न ही नहीं होता। जयदेव का मानना था कि जो काव्य को अलंकार विहीन मानता है वह अग्नि को उष्णताविहीन क्यों नहीं मान लेता। चूंकि जयदेव अलंकारवादी आचार्य थे, उनका अलंकारों के प्रति अतिशय मोह ही उन्हें मम्मट की परिभाषा के विरोध में ले गया। भले ही मम्मट की परिभाषा का विरोध हुआ हो किन्तु उनका काव्य–लक्षण, अन्य लक्षणों की अपेक्षा अधिक परिमार्जित है। उन्होनें निर्दोषता तथा गुणवत्ता को महत्व देकर नया दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है। जयदेव ने भले ही मम्मट का विरोध किया हो परन्तु बाद में मम्मट के अनुकरण पर ही अपना काव्य–लक्षण प्रस्तुत किया–

'निर्दोषा लक्षणवती सरीतिर्गुण भूषिता।

सालंकाररसानेकवृर्त्तिर्वाक काव्यनामभाक्।।

अर्थात वह वाणी, जिसमें दोषों का अभाव हो, लक्षणों से सम्पन्न हो, रीति और गुणों से युक्त हो, अलंकार और रसों से विभूषित हो काव्य है।

संस्कृत काव्य शास्त्र में अनेक विद्वानों ने काव्य को लेकर अपने–अपने मत प्रकट किये। वामन ने रीति को काव्य की आत्मा माना है तो आचार्य आनन्दवर्द्धन ने शब्द और अर्थ को काव्य का शरीर बताकर काव्य की आत्मा ध्वनि को माना है। आचार्य कुन्तक काव्य का जीवन वक्रोक्ति है (वक्रोक्तिः काव्य जीवितम्) सिद्ध करते थे तो क्षेमेन्द्र ने औचित्य को प्रभावी माना। विश्वनाथ ने 'वाक्यं रसात्मकं काव्यम्' कह कर रस को काव्य की आत्मा बताया है जबकि संस्कृत काव्य शास्त्र में अन्तिम प्रतिष्ठित आचार्य पंडितराज जगन्नाथ ने काव्य को शब्दनिष्ठ तथा रमणीक अर्थ का वाहक माना है। उनके अनुार–

'रमणीयार्थ प्रतिपादकः शब्दः काव्यम्।'

यदि समस्त विद्वानों के काव्य लक्षणों पर विचार करें तो ज्ञात होगा कि सभी की काव्य सम्बन्धी परिभाषाओं में किसी न किसी प्रकार का दोष रहा है। मम्मट जहां सदोष काव्य का निषेध करते हैं तो कोई भी काव्य ऐसा नहीं होगा जिसमें दोष न हो। यदि ऐसा हो तो क्या उस कृति रचना को काव्य क्षेत्र से बाहर निकाल दिया जायेगा। यदि अन्य विद्वानों की दोषहीनता, गुण, अलंकार की अनिवार्यता को स्वीकारा जाये तो काव्य एक सीमित क्षेत्र में स्वयं को समेट लेगा। चूंकि अलंकार, गुण दोष स्वयं में ही शास्त्रीय शब्द हैं अतः इस काव्य लक्षण के द्वारा काव्य की स्पष्ट परिभाषा नहीं दी जा सकती है। इसी तरह के दोष लगभग सभी परिभाषाओं में सामने आते रहे हैं। यदि रस को काव्य की आत्मा स्वीकार लिया जाये तो बिहारी और केशव की अनेक काव्य पंक्तियाँ काव्य की सीमा रेखा से बाहर हो जायेंगीं। उनकी अनेक पंक्तियों में रस की पूर्ण निष्पत्ति नहीं है अपितु अलंकार एवं उक्ति वैचित्र्य का चमत्कार है। इसी तरह रमणी का अर्थ देने वाला शब्द काव्य है वाली परिभाषा भी अपनी

सीमितता के कारण विरोध का कारण बनी। लोगों का मानना है कि काव्य के अन्तर्गत सदैव शब्द की रमणीयता नहीं होती, पूरे वाक्य से रमणीयता प्रभावित होती है। हालांकि कई बार ऐसा होता है कि एक शब्द का चमत्कार ही कवित्व ला देता है परन्तु हमेशा सम्पूर्ण 'काव्य' संसार की दृष्टि से यह उपयुक्त नहीं है। सभी विद्वानों की परिभाषाओं को सम्मिलित रूप से, उनकी महत्ता को स्वीकार कर काव्य के बारे में कहना संगत होगा कि – 'शब्द', अर्थ अथवा दोनों की रमणीयता से युक्त वाक्य रचना को काव्य कहते हैं।' (काव्य शास्त्र, डा0 भगीरथ मिश्र, पृ0 11) इसमें शब्द की रमणीयता शब्दालंकार, रीति, वृत्ति, संगीत–तत्व आदि के रूप में देखी जा सकती है और अर्थ की रमणीयता अर्थालंकार, वक्रोक्ति, ध्वनि, रस आदि में प्रकट होती है। शब्द की रमणीयता अधिक संकेत देती है कि यह वाक्य रचना काव्य है क्योंकि अर्थ की रमणीयता तो चित्र, मूर्ति आदि की रचना में भी देखी जा सकती है।

हिन्दी काव्य–लक्षण ---

हिन्दी में काव्य शास्त्रीय चिन्तन का प्रारम्भ रीतिकाल से होता है। हिन्दी के रीतिग्रन्थों से प्रारम्भ काव्य शास्त्रीय चिन्तन में मौलिकता का अभाव दिखाई देता है। अधिकांश काव्य लक्षणों पर संस्कृत के लक्षणों का प्रभाव दिखाई देता है, वहीं आधुनिक विद्वान अंग्रेजी काव्य–लक्षणों से प्रभावित दिखाई देते हैं। रीतिकाल के अधिकांश विद्वान 'मम्मट' के काव्य लक्षण से प्रभावित दिखे हैं। रीतिकाल के प्रारम्भिक आचार्य कवि चिन्तामणि ने अपना काव्य लक्षण इस प्रकार प्रस्तुत किया है–

'सगुन अलंकारक सहित, दोषरहित जो होइ।
शब्द अर्थ बारौ कवित्त, बिबुध कहत सब कोई।। *(काव्यप्रकाश)*

इस परिभाषा पर मम्मट का प्रभाव दिखता है किन्तु अलंकारों की अनिवार्यता पर चिन्तामणि का काव्य लक्षण, मम्मट के काव्य–लक्षण से भिन्न दिखता है।

मम्मट ने अलंकारों को अनिवार्य नहीं माना है जबकि चिन्तामणि ने अलंकारों को अनिवार्य माना है। देखा जाये तो यह परिभाषा मम्मट की अपेक्षा हेमचन्द्र के लक्षण से अधि

ाक साम्य रखती है। इसके साथ ही साथ आचार्य चिन्तामणि रस से युक्त वाक्य को काव्य पर जोर देते हुए अपने ग्रन्थ 'कविकुलकल्पतरू' में कहते हैं–

'बतकहाऊ रसमै जु है कबित कहावै सोय'

आचार्य चिन्तामणि के अतिरिक्त कुलपति मिश्र अपने 'रस–रहस्य' में मम्मट के काव्य–प्रकाश का ही आधार ग्रहण करते दिखते हैं। लेकिन वे 'वाक्यं रसात्मक काव्यम्' की आलोचना करते हुए स्वयं काव्य–लक्षण को इस प्रकार व्यक्त करते हैं–

जग ते अद्भुत सुख सदन, सब्दरू अर्थ कवित्त।
यह लच्छन मैंने कियो, समुझि ग्रन्थ बहु चित्त।।

(रस रहस्य 1, 16)

अर्थात संसार से विलक्षण आनन्द देने वाला शब्दार्थ काव्य है। यहाँ काव्य का यह स्वरूप भी अस्पष्ट लगता है क्योंकि संसार से विलक्षण आनन्द कैसे समझा जाये वह विचारणीय है। तत्कालीन विद्वानों की स्थापित की गई परिभाषाओं में से महाकवि देव की परिभाषा सबसे अलग और विलक्षण प्रतीत होती है। महाकवि देव ने शब्द को शरीर न मान कर रस को शरीर माना है। चूंकि गति की गम्भीरता भावों पर निर्भर करती है, अलंकारों पर नहीं, इस कारण से देव की इस धारणा को युक्ति संगत कहना सही नहीं होगा कि गम्भीरता अलंकारों पर निर्भर रहती है। देव की काव्य सम्बन्धी परिभाषा से काव्य के स्वरूप को समझने में कोई विशेष सहायता नहीं मिलती है–

सब्द जीव तिहि अरथ मन, रसमय सुजस सरीर।
चलत वहै जुग छन्द गति, अलंकार गम्भीर।। *(काव्य–रसायन)*

इधर रीतिकालीन जो भी कवि, विद्वान काव्य सम्बन्धी परिभाषाओं की स्थापना करते नजर आये हैं वे किसी न किसी रूप में मम्मट से प्रभावित ही दिखाई देते हैं। सोमनाथ, सूरति मिश्र, श्रीपति, विश्वनाथ आदि विद्वान मम्मट की काव्य छाया में अपनी काव्य प्रतिस्थापना करते दिखे हैं। अधिकांश कवियों की काल सम्बन्धी धारणाएं हल्की श्रेणी की हैं

और किसी प्रकार से काव्य का तात्त्विक विश्लेषण उपस्थित नहीं करतीं हैं।

आधुनिक युग के कवियों की काव्य सम्बन्धी धारणाओं पर विचार करें तो ज्ञात होगा कि अधिकांश विचारकों की काव्य धारणाएं पाश्चात्य विचारधारा से या तो प्रभावित हैं या उन्हीं पर आधारित हैं। कुछ विचारकों ने काव्य स्वरूप का मौलिक विवेचन भी किया है। इस प्रकार का विवेचन क्रमबद्ध रूप से दिखाई नहीं देता है, कहा जाये कि उनके काव्य–सम्बन्धी विचार किसी अन्य प्रसंगों के माध्यम से ही दिखाई पड़ते हैं।

हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में अग्रणी स्वीकारे जाने वाले आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने काव्य–विषयक धारणाओं को सीधे–2 स्थापित नहीं किया है अपितु यत्र–तत्र काव्य–सम्बन्धी मान्यताओं का प्रतिपादन करते दिखे हैं। दो–तीन अलग–2 प्रसंगों के आधार पर उनके काव्य स्वरूप विचारों को समझा जा सकता है–

'कविता प्रभावशाली रचना है जो पाठक या श्रोता के मन पर आनन्ददायी प्रभाव डालती है।

मनोभाव शब्दों का रूप धारण करते हैं। वही कविता है चाहे वह पद्यात्मक हो चाहे गद्यात्मक।

'अन्तःकरण की वृत्तियों के चित्र का नाम कविता है।'

(रसज्ञरंजन, 501)

इन धारणाओं से भी काव्य के स्वरूप का सही–सही विवेचन नहीं होता है। इसमें लक्षण का उचित रूप से न होना प्रमुख है। शब्दों का रूप लेकर सामने आये प्रत्येक मनोभाव कविता–काव्य नहीं हो सकते हैं। इसके अतिरिक्त यहाँ कविता को काव्य के पर्याय रूप में प्रयोग किया है। यहाँ कविता और काव्य की भेदक धारणा स्पष्ट नहीं की गई है।

रामचन्द्र शुक्ल की काव्य सम्बन्धी धारणा सबसे अलग रही। चूंकि आचार्य रामचन्द्र शुक्ल रसवादी विचारक थे। इस कारण से अपनी काव्य सम्बन्धी धारणा में उन्होंने इसे प्रमुखता से सामने रखा है।

"जिस प्रकार आत्मा की मुक्तावस्था ज्ञानदशा कहलाती है, उसी प्रकार हृदय

की मुक्तावस्था रसदशा कहलाती है। हृदय की इस मुक्ति की साधना के लिए मानव की वाणी जो शब्द–विधान करती आयी है उसे कविता कहते हैं।" [1]

(चिन्तामणि प्रथम भाग)

छायावादी कवियों में प्रमुख जयशंकर प्रसाद ने सर्वाधिक महत्वपूर्ण धारणा स्थापित की। उनकी परिभाषा में कवि को पाठक की अपेक्षा प्रमुख स्थान दिया गया है। जयशंकर प्रसाद की यह धारणा अस्पष्ट होते हुए भी सत्यं, शिवं, सुन्दरम का उचित समावेश करती नजर आती है।

"काव्य आत्मा की संकल्पात्मक अनुभूति है, जिसका सम्बन्ध विश्लेषण, विकल्प या विज्ञान से नहीं है। वह एक श्रेयमयी प्रेय रचनात्मक ज्ञानधारा है। काव्य या साहित्य आत्मा की अनुभूतियों का नित्य नया रहस्य खोलने में प्रयत्नशील है।"[2]

(काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध, पृ017)

प्रसाद जी की इस काव्य–धारणा को कसौटी पर कसने पर विद्वानों ने इसे अस्पष्ट बताया है। काव्य को यहाँ पर अनुभूति माना गया है जबकि यह अभिव्यक्ति है। इसके साथ–2 काव्य को ज्ञानधारा भी कहना तर्कसंगत नहीं, वह भी तब जब इसे विज्ञान नहीं माना जा रहा है। इसके बाद भी प्रसाद की इस धारणा में काव्य का गौरव और महत्व प्रकट होता है। सत्य को पूर्ण सौन्दर्य के साथ अभिव्यक्त करना काव्य है, यह इस तथ्य का प्रमाण देता है।

महादेवी वर्मा की काव्य–कविता सम्बन्धी धारणा रसात्मक काव्य अथवा रीतिकाल पर विशेषतः लागू होती दिखती है। उनका स्थापित किया गया काव्य–लक्षण समूचे काव्य क्षेत्र पर लागू नहीं होता है – "कविता कवि विशेष की भावनाओं का चित्रण है और वह चित्रण इतना ठीक है कि उससे वैसी ही भावनाएं किसी दूसरे के हृदय में आविर्भूत होती हैं।"

आचार्य नन्द दुलारे बाजपेयी अपनी परिभाषा के द्वारा काव्य में अनुभूति और कला का योग स्वीकारते नजर आते हैं जो पाठकों के हृदय को भावोद्बोध से भर देता है।

काव्य के स्वरूप पर विचार करते हुए कहते है–

"काव्य तो प्रकृत मानव–अनुभूतियों का नैसर्गिक कल्पना के सहारे ऐसा सौन्दर्यमय चित्रण है, जो मानव मात्र में स्वभावतः अनुरूप भावोच्छवास और सौन्दर्य सम्वेदन उत्पन्न करता है। इसी सौन्दर्य सम्वेदन को परिभाषिक शब्दावली में रस कहते हैं, यद्यपि यह स्वीकार करना होगा कि रस का हमारे यहाँ दुरूपयोग भी कम नहीं किया गया।"

अधिकांश हिन्दी विद्वानों की काव्यधारणा पाश्चात्य विचारकों से प्रभावित रही है, इस कारण से वे अपनी मौलिक धारणा देने में असफल रहे हैं फिर भी कुछ विद्वानों की काव्य धारणाओं को आज भी महत्व दिया जाता है।

अंग्रेजी काव्य–लक्षण–

अंग्रेजी विचारकों ने भी काव्य सम्बन्धी अपनी–2 धारणाएं प्रस्तुत की हैं। एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका में लिखा है – पोइट्रीः आर्ट वर्क ऑफ दि पोयट (Poetry : art work of the poet- Encyclopedia Britannica) अर्थात कवि का कार्य, कला काव्य है। यह काव्य लक्षण इस दृष्टि से भी काव्य स्वरूप का पूर्णतः उद्घाटन नहीं कर पाता क्योंकि पहले समझा जाये कि कवि क्या है तब उसके कार्य को काव्य कहा जाय।

प्रसिद्ध कवि ड्राइडन का मत है कि "कविता सुस्पष्ट संगीत है" (Poetry is articulate music - Drycten) परिभाषा को लेकर यदि काव्य स्वरूप को तय करने का प्रयास किया जाये तो सम्भव है कि यह धारणा भी अधूरी सिद्ध हो क्योंकि गीत जो गाये जाते हैं, उन सभी में काव्य सम्बन्धी विशेषता नहीं होती है। संगीत कविता का एक अंग तो हो सकता है पर संगीत–तत्व काव्य का अनिवार्य अंग नहीं हो सकता है।

इसी तरह की कुछ आधी अधूरी धारणा प्रसिद्ध कवि कॉलरीज भी करते हैं, जिनके अनुसार 'सर्वोत्तम शब्द अपने 'सर्वोत्तम क्रम में कविता होती है', (Poetry is the best words in their best order.) यह धारणा इस कारण अधूरी लगती है कि किस शब्द को सर्वोत्तम माना जाये और उसका सर्वोत्तम क्रम क्या होगा। ऐसी धारणा से तो तमाम सारे बुरे

शब्दों को काव्य क्षेत्र की परिधि से बाहर आना पड़ेगा जो कविता में समय समय पर प्रयोग होते रहते हैं।

अंग्रेजी के प्रसिद्ध कवि वर्ड्सवर्थ का विचार है कि "कविता प्रबल अनुभूतियों का सहज उद्रेक है, जिसका स्रोत शान्ति के समय में स्मृत मनोवेगों से फूटता है।" (*Poetry is the spontaneous overflow of powerful feelings, it takes its origin from emotions recollected in tranquillity - Wordsworth*) मैथ्यू आरनाल्ड की धारणा है कि "कविता अपने मूलरूप में जीवन की आलोचना है।" (*Poetry is, at bottom, a criticism of life - Arnold*) इसे उत्तम काव्य विशेषता का एक रूप स्वीकारा जा सकता है, पर यह कविता की परिभाषा नहीं हो सकती। जीवन का आलोचना समीक्षा साहित्य के अनेक रूपों में भी हो सकती है, केवल कविता में ही नहीं।

19 वीं शताब्दी के प्रसिद्ध लेखक डॉक्टर जानसन ने काव्य सम्बन्धी अपनी जो अवधारणा प्रस्तुत की है, उसके अनुसार 'कविता कला का वह रूप है जो कल्पना की सहायता से युक्ति के द्वारा सत्य को आनन्द से समन्वित करती है।' (*Poetry is the art of uniting pleasure with truth by calling imagination to the help of reason - Johnson*) इस परिभाषा के द्वारा डॉक्टर जानसन ने काव्य का प्रधान स्वरूप स्पष्ट किया है। आनन्द का समावेश, रमणीयता और रोचकता के गुण का संकेत, कल्पना का इसमें प्रमुख होना है। युक्तिसंगत होना सत्य के स्वरूप का आधार है। ऐसी स्थिति में काव्य सम्बन्धी डॉक्टर जानसन की परिभाषा महत्वपूर्ण सिद्ध होती है जो कविता के कलात्मक पक्ष की ओर अधिक जोर देती है।

अंग्रेजी में भी अधिकांश विचारकों ने कविता को कला के रूप में देखा है, यद्यपि कला केवल चमत्कारिता के संकीर्ण अर्थ में न होकर व्यापक अर्थ में देखी गई है। कला के ही रूप में कविता की पूर्ण परिभाषा अंग्रेजी के 'चैम्बर्स कोश' की स्वीकारी गई है–'कल्पना और अनुभूति से उत्पन्न विचारों को मधुर स्वरों में अभिव्यक्त करने की कला

कविता है। '(*Poetry is the art of expressing in medolious words, thoughts which are the creations of imagination and feelings- Chamber's Dictionary*) इस परिभाषा से काव्य स्वरूप पर विचार करें तो यह परिभाषा कल्पना और अनुभूति के विचार तत्वों को आवश्यक स्वीकारती है। कविता के लिए मधुर से अधिक लयात्मक एवं प्रभावकारी शब्द आवश्यक हैं पर यह पद्य काव्य की विशेषता है न कि गद्य काव्य की। कहा जा सकता है कि अभिव्यक्ति की कला काव्य है क्योंकि यह काव्य की कलात्मकता है, पूरा काव्य नहीं। कल्पना और अनुभूति से गृहीत सत्य की, रमणीय सत्य की अभिव्यक्ति ही काव्य है।

अब यदि निष्कर्ष रूप में समस्त विचारकों की धारणाओं का विवेचन कर एक सर्वमान्य निष्कर्ष निकालने का प्रयास किया जाये तो काव्य स्वरूप की व्यापकता के कुछ अंश को तो प्राप्त किया ही जा सकता है।

संस्कृत आचार्यो के मत आलंकारिकता सगुणता, निर्दोषता, रसमयता, वक्रता आदि तथ्यों से परिपूर्ण रहे हैं। इनमें सौन्दर्यवादी तत्वों ने काव्य के बाह्य पक्ष पर जोर दिया है, वहीं रसवादी तत्वों ने आन्तरिक पक्ष पर जोर दिया है। चूंकि काव्य में भी अन्तरंग और बहिरंग तत्व आवश्यक हैं अतः एक ऐसी काव्य धारणा परिभाषा की आवश्यकता है जो दोनों पक्षों का उचित समन्वय हो। यहाँ संस्कृत के आचार्य पंडितराज जगन्नाथ की परिभाषा – 'रमणीयार्थप्रतिपादकः शब्द काव्यम्' को पूर्ण परिभाषा के रूप में स्वीकारा जा सकता है। काव्य का लक्ष्य लोकोत्तर आनन्द है, इससे सभी सहमत भी हैं।

इसके साथ ही यदि हिन्दी विचारकों के काव्य लक्षणों को ध्यान में रखकर काव्य स्वरूप पर चर्चा की जाये तो दो बातें ज्ञात होंगी, प्रथम तो यह कि हिन्दी की काव्य लक्षण उक्तियों में काव्य के पूर्ण स्वरूप को बाँधने की क्षमता का प्रायः अभाव दिखाई देता है। द्वितीय यह कि अधिकांश धारणाएं संस्कृत अथवा पाश्चात्य विचारकों की धारणाओं से उत्प्रेरित हैं। हिन्दी विचारकों की धारणाओं के विवेचन से जो तत्व सामने आये हैं उनमें– सरसता, सामाजिक उपादेयता, प्रेषणीयता, रागात्मक परिष्कार प्रमुख हैं। हिन्दी के आचार्य

लोकोत्तर आनन्द के साथ सामाजिक उपादेयता को काव्य हेतु आवश्यक मानते हैं। यहाँ तक आते–2 काव्य का स्वरूप सार्थकता सिद्ध करता नजर आ रहा है।

पाश्चात्य विचारकों की काव्य सम्बन्धी धारणाओं से स्पष्ट होता है कि वे संगीतात्मकता, जीवन–सत्य, कल्पना, अनुभूति, बुद्धि तत्व पर अधिक बल देते नजर आये हैं। इन विचारकों ने जीवन–सत्य की ओर अधिक ध्यान दिया है। ये कल्पना और अनुभूति को काव्य का महत्वपूर्ण तत्व मानते हैं। हिन्दी विचारकों के समान ये न तो समाजिक उपादेयता पर बल देते हैं न ही संस्कृत विचारकों की भाँति लोकोत्तर आनन्द को प्रमुख मानते हैं।

यदि सभी विचारकों की धारणाओं का निष्कर्ष रूप में प्रस्तुत किया जाये तो कुछ तथ्य प्राप्त होते हैं जिन्हें निम्न रूप में सूत्रबद्ध किया जा सकता है –

(क) सौन्दर्य तत्व–अलंकार, वक्रता, रीति आदि काव्य का अपरिहार्य अंग नहीं है। इनका प्रयोग उपयोगी है पर प्रयोगाधिक्य अनुपादेय भी है।

(ख) भाव काव्य का मूलाधार है, इसकी अवहेलना नहीं की जा सकती है, इसी से काव्य में रमणीयता उत्पन्न होती है।

(ग) अभिव्यक्ति कौशल, संगीतात्मकता, नाद–सौन्दर्य काव्य को आकर्षक बनाते हैं किन्तु ये उसके प्राणधायक तत्व नहीं हैं।

(घ) कल्पना कवि का मौलिक अधिकार है जिसके अभाव में काव्य की सृष्टि सम्भव ही नहीं है।

(ड़) काव्य का लक्ष्य है– लोकोत्तर आनन्द। सामाजिक उपादेयता काव्य का मूल प्रयोजन नहीं है। यदि काव्य आनन्द के साथ समाज के मार्गदर्शन में सक्षम है तो समाज के लिए उसका मूल्य बढ़ जाता है। *(भारतीय काव्य–शास्त्र–डॉ० रामानन्द शर्मा पृ016)*

उक्त समस्त तथ्यों को एकसूत्र में बाँध कर मानसिक धरातल पर काव्य की निम्नतम परिभाषा निर्धारित की जा सकती है– "अनुभूति और कल्पना से निस्पृह रमणीय अर्थ की सुन्दर अभिव्यक्ति ही काव्य है।"

संगीत का अर्थ एवं स्वरूप

गीतं वाद्यं तथा नृत्यं त्रयं संगीतमुच्यते।।

(संगीत रत्नाकर–शारंगदेव कृत)

प्राचीन काल से लेकर वर्तमान तक संगीत की यही सर्वमान्य परिभाषा चलती आ रही है। 'संगीत' के अन्तर्गत गीत, वाद्य एवं नृत्य तीनों को परिगणित किया जाता है। गीत, वाद्य एवं नृत्य को सदा ही कलाओं में सर्वोपरि स्थान प्राप्त रहा है। भारतीय पौराणिक ग्रन्थों में भी कलाओं में संगीत को प्रमुख माना जाता रहा है। हिन्दू धर्मग्रन्थों का आधार माने जाने वाले वेदों में भी संगीत की व्यापक महत्ता पर प्रकाश डाला गया है। वात्स्यायन ने काम की उपायभूत 64 कलाओं में सर्वप्रथम जिन तीन कलाओं को माना है वे गीत, वाद्य एवं नृत्य ही हैं।

संगीत के अन्तर्गत परिगणित तीनों कलाएं –गीत, वाद्य, नृत्य –उभयविध रूपों पर आधृत है। ये उभयविध रूप हैं – व्यक्तिगत एवं समूहगत। संगीत की ये तीनों कलाएं व्यक्तिगत के साथ–साथ समूहगत भी होतीं हैं। यदि व्यापक रूप में संगीत को परिभाषित किया जाये तो ज्ञात होगा कि संस्कृत भाषा के अनुसार संस्कृत का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ होता है – सम् + गीत अर्थात् सम्यक् प्रकार से गाया जाने वाला। कुछ इसी अर्थ में संगीत पद का प्रयोग वराहोपनिषद् में इस प्रकार किया गया है –

'संगीत ताल लयवाद्यवशं गतपि मौलिस्थकुम्भ परिरक्षणधीर्नटीव।'

–(ईशाघण्टोत्तर शतोपनिषद्, निर्णयसागर)

संगीत की व्युत्पति सम + गीत होने के बाद भी 'संगीत' गीत, वाद्य एवं नृत्य के अभिन्न साहचर्य का ही परिचायक है। भरतमुनि के नाट्यशास्त्र में स्पष्ट रूप से परिलक्षित है कि 'गीत नाट्य कला के प्रमुख अंगों में अन्यतम है, वाद्य तथा नृत्य उस गीत के अनुगामी हैं।' नाट्यकला के अन्तर्गत गीत, वाद्य एवं नृत्य तीनों कलाएँ प्रचुरता से विद्यमान रहती हैं। इसी कारण से 'नाट्य कला' के लिए 'तौर्यत्रिक' संज्ञा का भी प्रयोग किया जाता रहा है।

संगीत के बारे में विद्वानों की अलग–अलग राय रही है। संगीत के तीनों

उपादानों का निर्देश मेघदूत में 'संगीतार्थ' पद के प्रयोग द्वारा किया जाता है।

कौटिल्य अर्थशास्त्र में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि गीत, वाद्य नृत्य एवं नाट्य सहचरी कलायें हैं।

बौद्धग्रन्थों में संगीत को गन्धत्ववेद (गान्धर्व वेद) के नाम से जाना जाता है और उसके अन्तर्गत गीत, वादित्त (वाद्य), नच्च (नृत्य) तथा अख्खानम् का अन्तर्भाव था। यहाँ अख्खानम् से तात्पर्य प्राचीन आख्यान तथा वीर गाथाओं के गायन से लगाया जाता है।

एनशिएन्ट इण्डियन एजूकेशन में स्पष्ट रूप से दर्शाया गया है कि समाज सम्मद सदृश बौद्धकालीन लोकोत्सवों से लेकर आज तक के लोकोत्सवों में गीत, वाद्य एवं नृत्य के अभिन्न साहचर्य की अक्षुण्य परिभाषा बनी हुई है।

इसके अलावा संगीत के लिए 'सांगीतिक' पद का भी प्रयोग किया जाता रहा है। वस्तुतः संगीत और सांगीतिक को एक दूसरे का पर्याय समझा जा सकता है।

भारतीय समाज में संगीत की अपनी एक महत्वपूर्ण परम्परा रही है। देवों, ऋषियों के समाज में संगीत का स्थान रहा है साथ ही आम मानवजन के बीच भी संगीत लोकप्रियता प्राप्त करता रहा है।

भारतीय जनमानस में संगीत को अलग--अलग रूपों, नामों से जाना जाता रहा है। इसी तरह पाश्चात्य देशों में भी संगीत की अपनी परम्परा रही है। पाश्चात्य देशों में संगीत की अधिष्ठात्री देवी 'म्यूज' को माना जाता है। जिनके नाम से ही पाश्चात्य देशों में संगीत को म्यूजिक (Music) शब्द से पहचाना जाता है। 'म्यूजिक' शब्द में ही यहाँ भी 'काव्य और संगीत' समाहित रहते हैं। हमारे देश में संगीत की परम्परा में गीत, वाद्य एवं नृत्य को एक रूप में स्वीकार किया गया है, जबकि पाश्चात्य देशों में 'म्यूजिक' के रूप में 'गीत और वाद्य' से पृथक 'नृत्य' को एक अलग कला के रूप में जाना जाता है। देखा जाये तो हमारे देश में भी 'नृत्य' को व्यावहारिक रूप से पृथक ही समझा जाता है फिर भी गीत, वाद्य एवं नृत्य की त्रयी को समन्वित रूप से 'संगीत' ही माना जाता है।

संगीत की उत्पत्ति कैसे हुई, इस सम्बन्ध में भी पौराणिक ग्रन्थों के अनुसार अपनी अपनी मान्यताएं हैं। संगीत की उत्पत्ति के सम्बन्ध में भारतीय समाज में दो सिद्धान्त प्रचलित हैं–

(1) देवादिदेव शंकर

(2) सृष्टि रचयिता ब्रह्मा

प्रथम सिद्धान्त 'देवादिदेव शंकर' के अनुसार ऐसा माना जाता है कि शंकर भगवान ने ताण्डव नृत्य की रचना तथा स्त्रीपुरुषाश्रित श्रृंगार सम्बन्ध गान में पार्वती रचित अंगहारों का प्रयोग 'लास्य' नामक नृत्य कहलाया।

एक अन्य परम्परा के अनुसार संगीत के सात स्वरों की उत्पत्ति पशु–पक्षियों की उत्पत्ति से हुई है। दामोदर पण्डित के द्वारा प्रणीत संगीत दर्पण के अनुसार मयूर से षड़ज, चातक से ऋषभ, अजा से गान्धार, क्रौंच से मध्यम, कोकिल से पंचम, दुर्दुर से धैवत तथा हाथी से निषाद स्वर उत्पन्न होता है–

षड्ज वदति मयूरः पुनः स्वर मृषभं चातको ब्रूते।

गान्धाराख्यं छागो निगदति च मध्यम् क्रौंचः।।

गंदति पंचममविलवाक् पिको रटति धैवतमुम दुर्दुरः।

शृणिसमाहत मस्त ककुंजरो गदति नासिकया स्वरमन्तिकम्।।

–(संगीत दर्पण (वृहददेशीय)

शिवपुराण के उल्लेख से ज्ञात होता है कि नारद ने वर्षों योग साधना की तब भगवान शंकर ने प्रसन्न होकर उन्हें संगीत कला प्रदान की।

शयनमुद्रा में पार्वती के अंग–प्रत्यगों को देख उन्हीं के आधार पर शिव ने वीणा बनाई तथा अपने पाँच मुखों से पाँच रागों की उत्पत्ति की। छठा राग पार्वती के श्रीमुख से उत्पन्न हुआ। शिव के पंच मुखों –पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण एवं आकाश से क्रमशः भैरव, हिण्डोल, मेघ, दीपक तथा श्रीराग उत्पन्न हुए। पार्वती के श्रीमुख से छठा राग 'कौशिक' की

उत्पत्ति हुई।

(2) काव्य–तत्व एवं संगीत–तत्व–

काव्य में विविध विचारकों की अपनी–अपनी धारणाएं काव्य–लक्षणों को उसके स्वरूप को स्पष्ट करती हैं। काव्य विचारको–संस्कृत, हिन्दी, पाश्चात्य–की धारणाओं से स्पष्ट हुआ कि 'अनुभूति और कल्पना से निस्पृह रमणीय अर्थ की सुन्दर अभिव्यक्ति ही काव्य है।' इस मान्य परिभाषा के अतिरिक्त अन्य प्रसिद्ध विद्वानों के मान्य लक्षणों को भी काव्य शास्त्र द्वारा स्वीकार किया गया है। विभिन्न विद्वानों के लक्षणों में से जिन लक्षणों को सर्वाधिक रूप से मान्यता प्राप्त है, वे हैं–

1– वाक्यं रसात्मकं काव्यम्। (आचार्य विश्वनाथ)

2–रमणीयार्थ प्रतिपादकः शब्दः काव्यम्। (पण्डितराज जगन्नाथ)

3–अदोषौ सगुणौ सालंकारौ च शब्दार्थो काव्यम्। (आचार्य हेमचन्द्र)

4–सत्य की अपने मूल चारुत्व में अभिव्यक्ति काव्य है।(जयशंकर प्रसाद)

5–Poetry is the art of uniting pleasure with truth by calling imagination to the help of reason. (Johnson)

6- Poetry is the art of expressing in melodious words, thoughts, which are the creations of imagination and feeling. (Chamber's Dictionary)

7–काव्य, कल्पना और अनुभूति से गृहीत सत्य की रमणीय शब्दों में अभिव्यक्ति है।

8–शब्द, अर्थ अथवा दोनों की रमणीयता से युक्त वाक्य–रचना काव्य है।

(काव्य शास्त्र– डॉ0 भगीरथ मिश्र, पृ0 19)

इन मान्य लक्षणों पर विचार करें तो इनमें शब्द, अर्थ, रमणीयता, रसात्मकता, गुण, अलंकार, सत्य, चारुत्व, माधुर्य, विचार, कल्पना, अनुभूति आदि तत्व विद्यमान दिखाई देते हैं। यदि इन तत्वों पर विचार किया जाये तो भाषा, भावतत्व और कल्पनातत्व स्पष्टतः परिलक्षिणत होते हैं। इनको संगठित कर कलात्मक अभिव्यक्ति के रूप में प्रस्तुत करना बुद्धि

और विचारतत्व का कार्य होता है। काव्य–लक्षणों के यह तत्व मिल कर काव्य की रचना करते हैं। यह भी सर्वमान्य है कि काव्य का अस्तित्व सत्य के कारण है और इसी सत्य की आधार भूमि पर काव्य को ग्रहण करने की क्षमता पैदा होती है। यही सत्य काव्य की आत्मा कहलाती है। इसी तथ्य की अनुभूति करके ही अंग्रेजी के कवि कीट्स ने लिखा था– 'सौन्दर्य सत्य है और सत्य सौन्दर्य है।' (*Beauty is truth, truth Beauty, that is all*) इसी काव्यगत सत्यता का स्वभाव ही मंगलमय स्वरूप होता है जो शिव कहलाता है। काव्य के अपने सौन्दर्य और मंगलमय स्वरूप से सत्यं, शिवं, सुन्दरम् का निर्धारण होता है।

'सत्यं, शिवम, सुन्दरम्' की काव्यगत आत्मा को साकार स्वरूप देने के लिए जो तत्व आवश्यक समझे जाते हैं वे है– शब्द, अर्थ, भाव, कल्पना और बुद्धि। इन काव्य तत्वों के द्वारा ही काव्य स्वरूप का निर्माण होता है और 'सत्यं, शिवं, सुन्दरम्' की अवधारणा साकार सिद्ध होती है।

शब्द–तत्व :–

काव्य विशेष रूप से कविता में अर्थ के अतिरिक्त शब्द–तत्व की विशेषता विद्यमान होती है। अलंकारों का चमत्कार, पद की लयगति का प्रवाह, संगीतात्मकता आदि पर शब्द–तत्व का प्रभाव पड़ता है। शब्द–तत्व कवि की भावात्मकता और कल्पना का प्रेरक होता है। शब्दों की इसी संगठित लयात्मकता से पद की रचना होती है जो पाठकों, श्रोता पर चित्ताकर्षक प्रभाव आरोपित करती है। शब्दों की यह गति दो प्रकार की होती है। गद्य में साधारण तथा पद्य में नर्तन। शब्द की यही नर्तन गति और झमक काव्य को सुरीला बनाती है। शब्द तत्वों के कुछ उदाहरण निम्नवत हैं–

आनन्द उमंग मन, यौवन उमंग तन,
रूप की उमंग उमगति अंग अंग है। (गति)
कंकन किंकिन नूपुर ध्वनि सुनि। कहत लखन सन राम हृदय गुनि (झंकृति)
बीथिन में, ब्रज में, नवेलिन में, बेलिन में,

बनन में, बागन में बगरो बसन्त है। (गति)

रस सिंगार मंजन किये, कंजन मंजन दैन।

अंजन रंजन हू बिना, खंजन गंजन नैन।। (झमक)

धर तें धरिवो धरनीधर को धरक्यो न हियो धरनीधर को।

कर लै जनु काँकर को करको करनाकर को कर ना करको। (नाद)

इन उदाहरणों में शब्द–तत्व का प्रभाव स्पष्टतः परिलक्षित हो रहा है। शब्द तत्व का प्रभाव शब्दालंकार में विशेष रूप से देखने को मिलता है। किसी एक शब्द के स्थान पर कोई दूसरा शब्द रख देने पर वह चमत्कार समाप्त हो जाता है। इसी तरह का एक उदाहरण दृष्टव्य है–

राम ह्रदय जाके नहीं, विपति सुमंगल ताहि।

राम ह्रदय जाके, नहीं बिपति सुमंगल ताहि।।

शब्द की महत्ता और उसकी अपनी विशेषता को कवि भलीभाँति पहचानता है। शब्द की इसी पारखी नजर के कारण एक शब्द के स्थान पर किसी अन्य शब्द को स्थापित कर वह काव्य चमत्कार को नष्ट नहीं करता है। यह शब्द–तत्व की अनिवार्यता है कि किसी विशेष शब्द के स्थान पर अन्य कोई शब्द नहीं रखा जा सकता है।

अर्थ–तत्व –

किसी काव्य रचना में शब्द चमत्कार है अथवा नहीं उससे अधिक अनिवार्यता अर्थ–तत्व की है। शब्द चमत्कार से परिपूर्ण काव्य रचना यदि अर्थहीन है तो उसका कोई अस्तित्व नहीं होता है। अर्थ, शब्द की प्रधान शक्ति है। अर्थमत्ता की दृष्टि से अभिधा, लक्षणा, व्यंजना तीन प्रमुख शक्तियां मानी गयीं हैं। अर्थ की रमणीय अभिव्यक्ति व्यंजना द्वारा, चमत्कारिक अभिव्यक्ति लक्षणा द्वारा और स्वाभाविक अभिव्यक्ति अभिधा द्वारा होती है। काव्य में इन तीनों का विशेष स्थान होता है। वही काव्य–पंक्तियां सर्वश्रेष्ठ होती हैं जिनमें शब्द, अर्थ, बुद्धि, भाव, कल्पना सभी का चमत्कार एक साथ उपस्थित होता है।

'मोतियों जड़ी ओस की डार।

हिला जाता चुपचाप बयार।।

यहाँ जीवन की क्षण भंगुरता का भाव—बोध दर्शाया गया है, जिसमें मोतियों के समान ओस की बूंदों से जीवन की तुलना की गई है। यहाँ सत्य अपने चाबत्व के साथ उपस्थित है। इसी प्रकार अर्थ की विशिष्ट अभिव्यक्ति करने वाले कुछ उदाहरण निम्नवत हैं—

'सीताहरण तात जानि, कहेउ पिता सन जाइ।

जो मैं राम तौ कुल सहित, कहिहि दसानन आइ।

'नल की अरु नल—नीर की, गति एकै करि जोय।

जेतो नीचो है चलै, तेतो ऊँचो होय।।'

भाव—तत्व—

काव्य में प्रभाव उत्पन्न करने में सर्वाधिक प्रभावी तत्व भाव है। कल्पना का प्रेरक तत्व भी भाव कहलाता है। इसके द्वारा पाठकों के हृदय में अनुभूति का संचार होता है, जिससे मनोवेगों के संस्कारों को प्रतिष्ठित करने में सहायता प्राप्त होती है। भाव तत्व के माध्यम से बिना किसी उक्ति वैचित्र्य अथवा बौद्धिकता के बिना भी गहरा प्रभाव काव्य रचना में देखने को मिलता है। इस तत्व को संगीतात्मकता का प्रेरक माना जाता है। इसी कारण से इसका प्रमुख रूप गीति के रूप में स्वीकार किया जाता है।

'जिन दिन देखे वे कुसुम, गई सो बीति बहार।

अब अलि रही गुलाब में, अपल कँटीली डार।।

माली आवत देखि के, कलियन करी पुकार।

फूले फूले चुन लिये, कालि हमारी बार।।

कल्पना—तत्व —

काव्य रूप की सृष्टि कल्पना तत्व के द्वारा होती है। जीवन जगत के विविध रूपों को सामने लाना कल्पना का कार्य होता है। इसी के द्वारा कवियों की बिम्बयोजना, जड़—चेतन का सजीव चित्रण, भावों की सजीव हृदयंगम अभिव्यक्ति साकार

रूप ग्रहण करती है। काव्य के द्वारा कवि अतीत का चित्र प्रस्तुत करता है, वर्तमान की स्थिति दर्शाता है तो भविष्य की संभावना प्रकट करता है। कल्पना तत्व के बिना यह कुछ भी संभव नहीं हो सकता है। कल्पना तत्व के द्वारा जब काव्य रचना में चित्रावली प्रस्तुत की जाती है तो कवि की प्रतिभा तो सिद्ध होती है पाठकों को आनन्द देने की संकल्पना भी पूर्ण होती प्रतीत होती है। विभिन्न अलंकारों का प्रयोग होना कल्पना तत्व का ही परिणाम है।

'रघुपति कीरत कामिनी, क्यों कहै तुलसीदास।
सरद विकास प्रकास ससि, चिबुक चारू तिल जास।।

इसी तरह गंगा के रूप की कल्पना में इस तत्व का उदाहरण –

'वह थी एक विशाल मोतियों की लड़ी।
स्वर्ग कंठ से छूट धरा पर गिर पड़ी।।
सह न सकी भवताप अचानक गल गयी।
हिम होकर भी द्रवित रही कल जलमयी।।'

'नहिं पराग नहिं मधुर मधु, नहिं विकास यहि काल।
अलि कली ही सैं विंध्यो, आगे कौन हवाल।।'

बुद्धि–तत्व (विचार–तत्व):–

इस तत्व का महत्व पूर्व के समस्त तत्वों शब्द, अर्थ, भाव, कल्पना का उचित ढंग से संयोजन करना है। शब्द की औचित्यता से ही प्रभाव उत्पन्न होता है। बुद्धि–तत्व का प्रमुख रूप से प्रभाव प्रबन्ध काव्यों में देखने को मिलता है। किन घटनाओं, तथ्यों का चुनाव करना है कि घटनाओं का सही प्रभाव आरोपित हो यह बुद्धि तत्व का ही क्षेत्र है। काव्य रचना में बुद्धि तत्व का सफल प्रयोग ही तुलसीदास को जन–जन में लोकप्रिय बनाये है वहीं बुद्धि तत्व का यथोचित प्रयोग न हो पाने से केशवदास के चित्रण अधूरे से प्रतीत होते हैं। समस्त कवियों की काव्य रचनाओं में बुद्धि तत्व के प्रयोग में गोस्वामी तुलसीदास सर्वोपरि हैं। राम के गुणों की परिभाषा, भरतमुनि का वर्णन, मन का पुलकित होना आदि ऐसा कुछ है जिससे

समूचा चित्र सजीव होकर आँखों के सामने घूमता रहता है। यह बुद्धि तत्व की ही विशेषता कही जायेगी कि परशुराम के अजेय पराक्रम, रावण के अदम्य साहस के सामने भी राम का चारित्रिक उत्कर्ष तुलसीदास प्रमाणित कर सके हैं। बुद्धि तत्व से परिपूर्ण कुछ उदाहरण–

'पग–पग मग अगमन परति, चरन अरुनि द्युति झूलि।

ठौर–ठौर लखियतु उठे, दुपहरिया से फूलि।।

'जड़ चेतन जग जीव जत, सकल राममय जानि।

बंदहु सब के पदकमल, सदा जोरि जुग पानि।।'

बुद्धि तत्व का उचित प्रयोग न होने पर काव्य संरचना अस्त व्यस्त हो जाती है। इस को 'प्रसाद' के एक छन्द के माध्यम से समझा जा सकता है–

'ज्ञान दूर कुछ क्रिया भिन्न है इच्छा क्यों पूरी हो मन की।

एक दूसरे से न मिल सकें यही विडम्बना है जीवन की।।'

इन तत्वों का आपसी समन्वय ही काव्य की 'सत्यं, शिवम्, सुन्दरम्' की अवधारणा को पुष्ट करता है। इस समन्वय के द्वारा ही काव्य का कलात्मक रूप खिल कर सामने आता है। सत्य, शिव, सुन्दर के इस समन्वय का कलात्मक चित्रण सुमित्रानन्दन पन्त कुछ इस प्रकार करते हैं–

'वही प्रज्ञा का सत्य स्वरूप हृदय में बनता प्रणय अपार।

लोचनों में लावण्य अनूप लोक –सेवा में शिव अविकार।।'

'सत्यं, शिवं, सुन्दरम्' की समन्वित झांकी ही साहित्य का श्रेष्ठ है, कला का श्रेष्ठ है। कला और साहित्य की अधिष्ठात्री मां वीणावादिनी की पौराणिक कल्पना में ये तत्व विद्यमान है। हंस सत्य का, वीणा सुन्दर का और पुस्तक शिव का प्रतीक है। सरस्वती के वेश काव्य–कला की उदात्तता एवं रमणीयता की परिचायक हैं। कहना न होगा 'सत्यं, शिवं, सुन्दरम्, के स्वरूप में विद्यमान काव्य तत्वों के समन्वय से काव्य का उत्कर्ष परिलक्षित होता है।

साहित्य

शब्द और अर्थ के सहभाव समष्टि रूप को 'साहित्य' कहते हैं। साहित्य का लक्षण करते हुये हमारे आचार्यों ने 'काव्य' शब्द का प्रयोग किया है। पण्डितराज जगन्नाथ के अतिरिक्त प्रायः सभी आचार्यों ने शब्द और अर्थ के साहित्य को 'काव्य' की संज्ञा दी है। इस सम्बन्ध में प्राचीन आचार्यों ने अपने निम्न मत दिये हैं–

1–"शब्दाथौ सहितौ काव्यं गद्यं पद्यं च तद्द्विधा"।– काव्यालंकार (भामहप्रणीत)

2–"शरीरं तावदिष्टार्थ व्यवच्छिन्ना पदावली"। – काव्यादर्श

3–"काव्यशब्दोऽयं गुण्लङ्कारसंस्कृतयोः शब्दार्थयोवर्तते"। – काव्यालंकार सूत्रवृत्ति

4–"शब्दार्थो काव्यम्"।– काव्यलंकार (रूद्रटप्रणीत)

5–"शब्दार्थो सहितौ वक्कवित्यापारशालिनि।

बन्धे व्यवस्थितौ काव्यं तद्विहाह्यादकरिणि"।।–वक्रोक्तिजीवित

6–"अदौषौ सगुणो सालङ्कारौ च शबदाथौकाव्यम्'– काव्यानुशासन

7–"शब्दार्थो निर्दोषो सगुणौप्रायः सालङ्करौ च काव्यम्"– वाग्भटालंकार

8–"गुणालङ्कारसहितौ शब्दार्थौं दोषवर्जितौ।" –प्रताप रूद्रयशोभूषण

9–"शब्दार्थो व पुरस्य तत्र विनुधैरात्माभ्यधायि ध्वनिः– एकावली

10–"तददोषौ शब्दार्थो सगुणवनलङ्कृती पुनः क्वापि'।–काव्यप्रकाश

इस प्रकार शब्द और अर्थ की समष्टि 'काव्य' है। शब्द और अर्थ काव्य शरीर का निर्माण करते हैं। इस काव्य शरीर की आत्मा विभिन्न आचार्यों के अनुसार पृथक–2 रूप में निर्दिष्ट हैं। वामन 'रीति' को आनन्दवर्धक, 'ध्वनि' को भरत तथा राजशेखर 'रस' को, क्षेमेन्द्र, 'औचित्य' को भामहदण्डी प्रभृति, 'अलंकार' को 'काव्य' के प्राणतत्व के रूप में स्वीकार करते हैं। सभी आचार्यों के काव्य लक्षणों के विवेचन से यह तथ्य प्राप्त होता है। प्राण प्रतिष्ठा के पृथक पृथक तत्वों के साथ शब्द और अर्थ का साहित्य ही 'काव्य' को निर्मित करता है। यहां 'साहित्य' के अभिप्राय को कुन्तन ने इस प्रकार बताया है। उनके अनुसार शब्द और अर्थ

के साहित्य के तात्पर्य काव्य सौन्दर्य के लिए उनकी न्यूनता या अधिकता से रहित मनोहर स्थिति से है।

'शब्दार्थौं सहिताबेव प्रतीतौ स्फुरतः सदा।
सहिताविति तावेव किमपूर्व विधीयते।।
साहित्यमनयोः शोभाशालितां प्रति काव्यसौ।
अन्यूनानतिरिक्तत्व मनोहारिण्य वास्थवतिः।।

—वक्रोक्तिजीविता

वाल्मीकि प्रणीत रामायण से लेकर आज तक साहित्य—सर्जना का क्रम अविरल गति से चला आ रहा है। महाकवि कालीदास के साहित्य ने उनके काल से लेकर आज तक के लोगों को रस सागर में अवगाहन का सुवर्ण अवसर प्रदान किया।

(3)संगीत तथा साहित्य में सम्बन्ध

संगीत कला भी है और साहित्य भी, इन दोनों का परस्पर सम्बन्ध है। साहित्य का कार्य है अध्येय विषय को वैज्ञानिक व्यवस्था प्रदान करना जिससे विषय का अध्ययन विधि पूर्वक सम्पन्न किया जा सके। कला की गति सतत् प्रवहमान रहती है। यह देश और काल के अनुसार नूतन तत्वों को ग्रहण करती रहती है। तथा पुरातन तत्वों को दूर कर प्रत्यक्ष जीवन से तत्व प्राप्त करती है। कला की इसी गति को संयत करना शास्त्र का कार्य है जिससे कला अपने मौलिक सिद्धान्तों के प्रतिकूल न जा सके तथा लोकरूचि के अनुकूल भी रहे।

कला के मुख्यतः दो रूप होते हैं— अभिजात अर्थात् क्लासिकल एवं् तद्विपरीत अर्थात् लाइट(सुगम)। इन उभयविध रूपों की सुरक्षा के लिए कतिपय नियम होते हैं। जिनका परिपालन आवश्यक होता है और जिनका निर्देश शास्त्र ही करता है। इसी तथ्य को शारंगदेव ने संगीत रत्नाकर में बताया है:-

'यद्वा लक्ष्यप्रधानानि शास्त्राण्येतानि मन्वते।

तस्माल्लक्ष्यविरूद्धं यत्तच्छास्त्रं नेदमन्यथा।।

—भारतीय संगीत का इतिहास

संगीतकला मुख्यतः दो धाराओं में प्रवहमान रही है— 'मार्ग' तथा 'देशी'। मार्ग संगीत में शास्त्रीय नियमों के परिपालन द्वारा कला के परिष्कृत एवम् अभिजात रूप पर विशेष बल दिया जाता है। तथा देशी संगीत में लोकरूचि ही सर्वाधिक महत्वपूर्ण होती है। शास्त्रीय नियमों का पालन गौण रहता है। प्रथम प्रकार के संगीत के लिए विशिष्ट अध्ययन संस्कार, अभ्यास आदि अपेक्षित होते हैं। जबकि दूसरे प्रकार के संगीत में सहज संस्कार से युक्त प्रस्तुति ही महत्व प्राप्त करती है। मार्गी संगीत में नियमबद्धता तथा देशी में अपेक्षाकृत स्वच्छन्दता रहती है। किन्तु कला सौन्दर्य दोनों में वर्तमान रहता है।

किसी भी कला का पहले देशी रूप ही होता है। क्योंकि वह जनरूचि पर आधारित होती है। तथा उसका प्रवाह अतिसहज होता है। बाद में जब उसके नियम बन जाते हैं, तब वह कला 'मार्ग' रूप धारण करती है। 'सामवेद' संगीतकला का प्राचीनतम निदर्शन है। 'साम' संगीत भी पहले 'देशी' संगीत रहा होगा जो लोकरूचि पर आधृत रहा होगा। इसी प्रकार जन्म, विवाह तथा अन्य उत्सवों के अवसरों पर प्रस्तूयमान संगीत समग्र रूप से लोकरूचि पर आधृत होने पर अपनी सहज गति के कारण 'देशी' संगीत की संज्ञा प्राप्त करता रहा है।

संगीत एक प्रायौगिक कला है। साहित्य के लिये प्राचीन रूपों में 'विज्ञान' शब्द प्रयुक्त है। कालिदास ने तो नृत्यकला को ललित विज्ञान कहा है। जो कि 'मालविकीनमि' से ली गयी है।

ललित कलाओं में साहित्य एवं संगीत का स्थान

ललित कलाओं में साहित्य एवं संगीतकला को सर्वोपरि स्थान प्राप्त है। कला हृदय की वस्तु है। वह हृदय से ही उत्पन्न होती है और हृदय को ही प्रसन्न करती है। प्रत्येक वस्तु जो हृदय से सम्बद्ध है, कला है। साहित्य कला अपने प्रत्येक रूप में पाठक को आनन्द प्रदान करती है। संगीत प्रायः सभी को प्रिय होता है। ग्रन्थ के पठन से जो आनन्द

प्राप्त होता है वही आनन्द संगीत के श्रवण से प्राप्त होता है। 'भारतीय संगीत के दो अंग है– एक वाह्य अंग जो नेत्रों तथा श्रवणेन्द्रिय के द्वारा अनुभव किया जाता है। और दूसरा अन्तरंग, संगीत मानवमात्र की आत्मा का ऐसा भोजन है, जिसके अभाव में मानवोचित गुण फूल फल नही सकते, जिसे मानवता के विकास की उत्कट इच्छा है, उसे कोई भी महात्मा अथवा योगी चित्त की स्थिरता के लिए संगीत का आश्रय लेने का आदेश देता है।

चार्ल्स डारविन को कलाओं में अत्यधिक रूचि थी। अपने जीवन के अंतिम समय में उन्होंने निम्न पंक्तियां लिखी जो उनकी सम्मति में साहित्य एवं संगीत कला के महत्व को प्रतिपादित करती हैं।

"यदि मुझे यह जीवन दुबारा जीवित रहने को मिलता तो मैं कम से कम सप्ताह में एक बार कुछ कविता पढ़ने और संगीत सुनने का एक नियम बना लेता। यह इसलिए कि शायद मेरे मस्तिष्क के हिस्से, जो अब स्फूर्तिशून्य है, काम में लाते रहने से वे स्फूर्तिमय रखे जा सकते हैं। इन इच्छाओं का अभाव सुखी जीवन को हानि पहुँचाता है और वह बुद्धि को भी चोट पहुँचा सकता है और इससे भी अधिक हमारी भावुक प्रवृत्तियों को सन्तुष्ट न कर, हमारे आदर्श चरित्र को भी हानि पहुॅचा सकता है।

इस प्रकार मानव जीवन के सर्वविध विकास के लिये साहित्य और संगीत कला विशेषण उपादेय है। चित्र, मूर्ति एवं वस्तु– ये ललित कलायें भी महत्वपूर्ण हैं किन्तु साहित्य एवं संगीतकला का महत्व इनसे बढ़कर है, क्योंकि साहित्य एवं संगीत में अपेक्षाकृत कम उपादानों की आवश्यकता होती है। तथा इन दोनों का आनन्द कहीं भी चित्त, मूर्ति एवं वास्तुकला की तुलना में अधिक सुविधापूर्वक प्राप्त किया जा सकता है लोकप्रियता की दृष्टि से भी साहित्य और संगीतकला को चित्र, मूर्ति एवं वास्तु– इन ललित कलाओं से अधिक महत्व प्राप्त है।

संगीत–तत्व

संगीत पर अनेक विद्वानों ने अपने विचार अलग–अलग दिये हैं।

पं0 शारंगदेव ने गायन, वादन, नृत्य में गायन को प्रधान मानते हुये वादन को गायन का तथा नृत्य को वाद्य का अनुगामी बताया–

नृत्तं वाद्यानुगं प्रोक्तं वाद्यं गीतानुवर्ति च।

अतो गीतं प्रधानत्वादत्रादावभिधीयते।।

–संगीत रत्नाकर, अनु0 सुरेशचन्द्र

'संगीत दामोदर' में गीत के अन्तर्गत 'गायन' व वादन का समावेश माना–

गीतं च द्विविध प्रोक्तं यन्त्रगान विभागतः।

–द्वितीय स्तवक

संगीत को मोक्ष का साधन भी माना है। 'याज्ञवल्क्य स्मृति' में लिखा है–

वीणा का वादन में निपुण, श्रुति जाति ताल का ज्ञाता अप्रयास ही मोक्षमार्ग को प्राप्त कर लेता है–

वीणावादनतत्वज्ञः श्रुतिजातिविशारदः

तालज्ञश्वाप्रयासेन मोक्षमार्ग नियरछति।।

–संगीत परिजात श्लोक 18

संगीत मकरन्द में लिखा है–

(संगीत) सभी आश्रमों (भतों) जातियों और राजाओं के मध्य प्रीति वर्धन करने वाला है–

सर्वाश्रमाणां जातीनां नृपाणां प्रीतिवर्धनम्।

धर्मार्थकाममोक्षाणामिद्मेव हि साधनम्।।

–नारदकृत संगीत मकरन्द

जहाँ संगीत है वहां ईश्वर का वास है। श्री कृष्ण ने कहा है, ''वेदानां सामवेदोऽस्मि अर्थात मैं सामवेद में ही हूँ''।

–श्री मद्भगवत् गीता10/22

चारों वेदों में 'सामवेद' ही संगीत प्रधान है। इसकी ऋचाओं में गेयता और लयबद्धता

है । संगीत मनुष्यों को दिया गया एक ईश्वरीय वरदान है जो मधुर ध्वनि तरंगो का अथाह सागर है। यह सागर एक सहज आनन्द का स्त्रोत है जो देवता, दानव, मनुष्य, पशु पक्षियों को ही नही, बल्कि, वनस्पति को भी अपने विशाल अंतर में समेट लेता है।

संगीत एक ललित कला है अर्थात् सुन्दर और मोहक कला है।

''संगीत कं न मोह्येत्'' अर्थात् संगीत किसको मोहित नही करता?

–अभिनव नाट्यशास्त्र प्रथम खण्ड पृष्ठ 61

सर्वज्ञ पार्वती पति (शंकर) गीत से प्रसन्न होते हैं। गोपीपति अनंत (कृष्ण) वंशी ध्वनि के वशीभूत है। ब्रह्मा सामगीति में रत हैं। सरस्वती वीणा में आसक्त हैं। फिर अन्यदेव, यक्ष, गंधर्व, दानव तथा मानवों के विषय में क्या कहा जाय।

–संगीत रत्नाकर, प्रथम स्वरगताध्याय, पदार्थ संग्रह, श्लोक 26–27

उस गीत का महात्म्य वर्णन कौन कर सकता है, जो धर्म, अर्ध, काम, मोक्ष का एक मात्र साधन है–

तस्य गीतस्य महात्म्यं के प्रशंसितुमीशते।

धर्मार्थ काम मोक्षाणामिदमेवैक साधनम्।।30।।

संगीत परिजात में लिखा है :–

देवस्य मानवो गानं वाद्यं नृत्यमतन्द्रितः।

कुर्य्याद्विष्णोः प्रसादार्थमिति शास्त्रे प्रकीर्त्तितम्।।5।।

–प0 अहोबल कृत, अध्याय प्रथम पृष्ठ2

अर्थात मनुष्यों द्वारा गायन वादन तथा नृत्य तल्लीनता से किया गया हो तो वह भगवान विष्णु को प्रसन्न कर देता हैं – ऐसा ही शास्त्र में कहा गया है।

संगीत कला के दो सर्जक तत्व हैं– (1) स्वर–राग (2) लय–ताल। 'स्वर–राग' और 'लय–ताल' का समन्वय स्थल है 'बंदिश'। संगीत का सौन्दर्य–विधान इन तीनों पक्षों पर आधारित होना आवश्यक ही है।

स्वर–राग

स्वरो से ही रागों का निर्माण होता है। स्वर यदि अंग प्रत्यंग हैं तो राग एक संपूर्ण व्यक्तित्व है। वस्तुतः राग रूपी मालिका स्वर रूपी मोतियों से ही सृजित होती है। ''अग्नि का अनीक सूर्य है और सूर्य शब्द का आधार स्वर है''।

–वैदिक धर्म एवं दर्शन, द्वितीय भाग, ए0बी0 कीथ, सूर्यकान्त पृष्ठ 14

स्वर का अर्थ है प्रकाश, फलतः स्वर, सूर, सुर और सूर्य– इन सभी का सम्बन्ध प्रकाश से है। अर्थात् संगीत का स्वर पक्ष सौन्दर्य की दीप्ति है, रंजक प्रकाश है। राग का स्त्रोत स्वर, स्वर का स्त्रोत श्रुति, श्रुति का स्त्रोत और नाद का आधार ध्वनि है।

ध्वनि

ध्वनि ही सर्वजगत का कारण है – ऐसा शास्त्रों में कहा गया है।

ध्वनिर्योनिः परा ज्ञेया ध्वनिः सर्वस्य कारणम्।

आक्रान्त ध्वनिना सर्व जगत् स्थावरजङ् गमम्।।

–वृहद्देशीय पृष्ठ–2

ध्वनि ही व्यवहार का प्रथम साधन है। मंगलमय ध्वनि ऊँ ही मूल ध्वनि है यही आदि नाद है, समस्त मंत्रों का सार है, परब्रह्म है।

संगीत के आदि प्रवर्तक भगवान शंकर जो संगीतज्ञों के हृदय रूपी कमल में विराजमान होकर ब्रह्म ग्रंन्थि से उत्पन्न प्राण वायु के द्वारा गान के रूप में अभिव्यक्त होते हैं। जो रंजक स्वर, श्रुति ग्राम, अलंकार जाति आदि के मूल प्रवर्तक हैं, जो संचय नादरूप हैं, प्रकाशवान् हैं, की वंदना 'पं0 शारंगदेव' ने अपने ग्रंथ 'संगीत रत्नाकर' के प्रथम स्वरगताध्याय पदार्थ संग्रह में प्रारम्भ में ही इस प्रकार की है।–

ब्रहमग्रन्थिजमारूतानुर्गातना चित्तेन हत्पंकजे।

सूरीणामनु रंजकः श्रुति पदं योऽयं स्वयं राजते।

यस्माद् ग्रामविभागवर्ण रचनाऽ लंकारजातिक्रमो।

वन्दे नादतनुं तमुद्धुरजगद्गीतं मुदे शंकरम्।।1।।

नाद

संगीतोपयोगी ध्वनि को नाद कहते है। 'संगीत रत्नाकर' में नाद की उत्पत्ति इस प्रकार बताई गई है।

नकारं प्राणनामान दकारमनलं बिदुः।

जातः प्राणाग्नि संयोगात्तेन नादोऽभिधीयते।।

–प्रथम, स्वरगताध्याय, प्रकरण तृतीय, श्लोक6

इसका अभिप्रायः है नकार अर्थात् प्राण और दकार अर्थात् अग्नि–इन दोनों के संयोग से नाद उत्पन्न होता हैं।

एक जीवित, खिलता हुआ पुष्प ही सुंदर लगता है। प्राणत्व का लक्षण है, गतिशीलता। नाद की उत्पत्ति में कंपन और गतिशीलता होती ही है। इस प्रकार नाद 'नकार' अर्थात प्राण तत्व (प्राण वायु) सजीव सौन्दर्य–गुण है। 'दकार' अर्थात 'अग्नि' का लक्षण है प्रकाश, और निहित गुण है शक्ति। यथा सूर्य में प्रकाश और शक्ति दोनों का समन्वय है। नाद से ही स्वर निर्मित होते हैं। स्वर, सुर, सूर, और सूर्य समानार्थक हैं। नाद का दूसरा गुण 'दकार' अर्थात् अग्नि, शक्ति और प्रकाश उत्पन्न है। 'प्रकाश' ज्ञान की स्थिति है। प्रकाश से सौन्दर्य चमक उठता है। प्रकाशावस्था में 'सुन्दरम्' से साक्षात्कार होता है। उत्कृष्ट रसानुभूति का गुण भी 'स्वप्रकाशनंद' बताया गया है (जो कि साहित्य दर्पण रस व्याख्या में है।) इस प्रकार नाद के अन्तर्गत सजीवता, गति, शक्ति एवं प्रकाश (ज्ञान) का समन्वय है।

नाद ब्रह्म है, यह समस्त प्राणियों का चैतन्य है, आनन्दरूप है, उपास्य है–

चैतन्यं सर्वभूतानां विवृत्तं जगदात्मना।

नादब्रह्म नदानन्दमद्वितीयमुपास्महे।।1।।

–संगीत रत्नाकर, प्रथम स्वरगताध्याय, प्रकरण तृतीय पृष्ठ 62

नादोपासना से ब्रह्मा, विष्णु, महेश तीनों ही उपासित हो जाते है, क्योंकि वे

स्वयं नादात्मक हैं–

नादोपासनया देवा ब्रह्मविष्णु महेश्वराः।

भवन्त्युासिता नूनं यस्मोदेते तदात्मकाः।।2।।

–संगीत रत्नाकर, प्रथम स्वरगताध्याय, प्रकरण तृतीय पृ0–63

ऊँ अथवा ओंकार को नादब्रहम का सर्वोच्च उद्‌गम माना गया है– ओऽम् का अर्थ है जिससे परमात्मा की स्तुति की जाय–नादानुसंधान करते करते अंत में ओउम् नाद की सिद्धि होती है।

नाद के दो भेद हैं– अनाहत और आहत। अनाहत नाद अत्यन्त सूक्ष्म होता है। इसकी साधना अत्यन्त कठिन है और इसके लिये गहन अवधान अपेक्षित है। आहत नाद संगीत से संबधित है और यह 'लोकरंजनम् व भवभजनम्' जो कि संगीत रत्नाकर, पिंडोत्पात्ति प्रकरण, श्लोक 167 में है। दोनों गुणो से संपन्न है। 'संगीत चूड़ामणि' में भी लिखा है–

योगध्यानादिकं यस्मात् सर्वलोकानुरंजनम्।

तस्मादनन्त फलदं गीतं स्याद् भुक्तिमुक्तिदम्।।1।।

–जगदेकमल्ल कृत, पृष्ठ 1

'आहत नाद की साधना में स्थूल से सूक्ष्म की ओर जाने में 'अनाहत' नाद की सिद्धि भी संभव है''। आहत नाद की उत्पत्ति के संबंध में पाणिनीय शिक्षा में लिखा है– ''आत्मा बुद्धि से संयोग करता है, मन विवक्षाधीन अर्थो से युक्त होता है। वह व्यापारिक मन शरीर स्थित अग्नि पर आघात करता है। अग्नि वायु को प्रेरणा देता है वह मारूत ह्रदयप्रदेश में ऊर्ध्व संचरण करता हुआ मंद्र स्वर मूर्ध प्रदेश में अभिहित होता है। और मुख्य यंत्र का अंतर्वर्ती होकर वर्णों को प्रसूत करता है।'' नादोत्पत्ति का यह मार्ग नाद को स्फोट रूप प्रदान करता है। उसकी उच्चारणावस्था एवं श्रुतिलभ्य ध्वनि का निर्वचन करता है। ''अब यदि इसकी विलोम गति पर विचार करें तो नाद के पीछे चलते हुये आत्मा के समीप ही पहुँच

जायेंगे—यही नादोपासना का चरम प्रयोजन है।

--सं0 स0 सा0, नाद विवेचन विद्यानन्द मुनि पृ0 8–9

नाद से ब्रहम की सिद्धि का संकेत 'संगीत रत्नाकर' की कलानिधि टीका में भी दिया गया है :

परावाक् पर्यायस्य ब्रहमशक्तेनार्दस्य ब्रहमणोऽत्यन्तप्रत्यातन्नत्बत्तदुपासनायां कृतायां ब्रहमप्राप्तिर्माणीप्रभाप्रवृत्तस्य मणिलाभद्भवेदिति।

अतो गीत प्रपंचस्य श्रुत्यादेस्तत्व दर्शनात्।

अपि स्यात्सच्चिदानन्दरूपिणः परमात्मनः।।

प्राप्ति प्रभाप्रवृत्तस्य मणिलाभो यथा भवेत्।

प्रत्यासन्नतयाऽत्यन्तम्।।

—संगीत रत्नाकर, प्रथम खण्ड ; स्वरगताध्याय, तृतीय प्रकरण—पृष्ठ —63

तात्पर्य यह है कि परावाक् (नाद) ब्रहम की ही शक्ति है। ब्रह्म यदि मणि है तो नाद उसकी प्रभा है। मणि की प्रभा के आलोक में चलते हुये जिस प्रकार व्यक्ति मणि तक पहुँच सकता है उसी प्रकार नाद की आत्मनिष्ठ साधना करते हुये व्यक्ति ब्रह्म नाद तक पहुँच सकता है। अतः गीत श्रुति यदि प्रपंच के द्वारा सच्चिदानंद रूप परमात्मा की प्राप्ति हो सकती है।

वास्तव में नाद के समान लयकारी''समाधि सहायक अन्य कोई उपाय नही।'' ''न नादं सद्रशो लयः'' – 'योग' में 'लय' का अर्थ 'समाधि' होता है जिस प्रकार आत्मा की अभिव्यक्ति शरीर से होती है उसी प्रकार अनाहत नाद की अभिव्यक्ति आहत नाद से होती है।

'नाद' ही संगीत कला का स्त्रोत है। गीत, वाद्य और नृत्य तीनों ही नादात्मक हैं। संगीत में 'नाद' के महत्व को लोचन ने इस प्रकार वर्णित किया है—

न नादेन बिना गीतं न नादेन बिना स्वरः।

न नादेन बिना ज्ञानं न नादेन बिना शिवः।।

—राग तरंगिणी, तृतीय अध्याय पृष्ठ 35

अर्थात न नाद के बिना स्वर की उत्पत्ति संभव है, न नाद के बिना गीत रचना संभव है न नाद के बिना ज्ञान प्राप्त हो सकता है और न ही नाद के बना शिव (कल्याण) की उपलब्धि हो सकती है।

इस प्रकार स्वर और गीत के माध्यम 'नाद' से ही ज्ञान अर्थात् 'सत्यम्' की प्राप्ति होती है। क्योंकि ज्ञान की प्राप्ति तभी होती है जब सत्य का बोध होता है। 'नाद' से ही कल्याण 'शिवम्' की प्राप्ति होती है। 'नाद' स्वयमेव सुंदर ध्वनि है अतः 'नाद' में सत्यम्, शिवम्, सुंदरम् का समन्वय है। दूसरे शब्दों में 'नाद' आनंदप्रद है– यह सुंदरम् है''। 'नाद' की साधना से सत् (सत्यम्), चित् (शिवम्), आंनद (सुन्दरम्) सच्चिदानंद की प्राप्ति संभव है क्योंकि वह (ब्रह्म) स्वयं नादरूप है। इसीलिये इसे नादबह्म कहा गया है।

संगीत सम्राट 'तानसेन' ने भी नाद शक्ति का वर्णन इस प्रकार किया है–

नाद ज्ञान बरसत रहै, सारद के परसाद।

केवल यसु जड़ नाम हू, कुंडलि भये सुन नाद।।8।।

पसु ससि अहि संतुष्ट भौ, सुनौ शब्द जिन नाद।

'तानसेन' या नाद की, कही न जात मरजाद।।9।।

–रागमाला, पृष्ठ 173

''नाद को आत्मानुसंधान में सहायक निरूपित किया है। आत्मानुसंधान और आत्म तत्व की प्राप्ति ही तो परम उपलब्धि है–

नाद विवेचन, विद्यानन्द मुनि, सं0 स0 सार, पृ09

नाद ही परम ज्योति है, स्वयं हरि नादरूप हैं।

नाद रूप परं ज्योतिनादरूपी स्वयं हरिः।

–संगीत दामोदर, द्वितीय स्तवक, पृष्ठ 16

नाद की उत्पत्ति का प्राकृतिक और वैज्ञानिक कारण है– कंपन। जो कंपन और आन्दोलन नियमित होते हैं, वे ही संगीतोपयोगी नाद हैं। नियमित सौन्दर्य का एक

सर्वसामान्य सिद्धान्त है। संगीत के सौन्दर्यचिंतको ने अनियमित ध्वनि को 'कोलाहल' की संज्ञा देकर संगीत के सौन्दर्य संसार से अलग कर दिया और नियमित व समांकलित ध्वनि को ही संगीत कला में मान्यता देकर उसे 'नाद की संज्ञा प्रदान की। नाद पांच प्रकार का माना गया है। यथा अतिसूक्ष्म, सूक्ष्म, पुष्ट (व्यक्त) अपुष्ट (अव्यक्त) तथा कृत्रिम। यह पांच स्थानों – नाभि, हृदय, कंठ, मुर्द्धा तथा मुख में स्थित है। व्यवहार में यह तीन प्रकार का कहा गया है – हृदय में मंद्र कंठ में मध्य और मूर्द्धा में तार जो क्रमशः द्विगुणित है। नाद प्रकारों में नाद का विविधतापूर्ण सौन्दर्य निहित है नाद की तीन विशेषताये हैं। ये विशेषतायें यथास्थान सौन्दर्य–वृद्धि में सहायक होती हैं।

(1) नाद का छोटा बड़ापन – धीमे से व्यक्त नाद जो थोड़ी दूर तक ही सुनाई दे उसे छोटा नाद तथा जोर से उच्चारित अधिक दूर तक सुनाई देने वाले नाद को बड़ा नाद कहते हैं। संगीत में भाव सौन्दर्य की दृष्टि से नाद के इस गुण का महत्व है।

(2) नाद का ऊँचा नीचापन – नाद के इसी गुण के आधार पर श्रुति व स्वरों की रचना हुई है। हर श्रुति व स्वर एक दूसरे से ऊँचे अथवा नीचे हैं। इस प्रकार संगीत के सौन्दर्यपूर्ण विकास में स्वरों के उतार चढ़ाव में नाद की इस विशेषता का मौलिक रूप से महत्व है।

(3) नाद की जाति अथवा गुण– हर व्यक्ति की कंठध्वनि एवं प्रत्येक वाद्य की अपनी एक विशिष्ट ध्वनि होती है। नाद के इसी गुण के कारण हम बिना देखे ही किसी व्यक्ति अथवा वाद्य के स्वर को पहचान लेते हैं। भिन्न–भिन्न व्यक्तियों के कंठ में तथा विभिन्न वाद्यों से व्यक्त होने पर राग का सौन्दर्य एक नया रूप ले लेता है। विविधता सौन्दर्य का एक महत्वपूर्ण लक्षण है, नाद की जाति इस लक्षण से सुसंपन्न है।

श्रुति– सूक्ष्म किंतु श्रवणीय नाद श्रुति' है

–भरत भाष्यम् प्रथम खण्ड श्रुत्यध्याय, श्लोक 82

साथ ही श्रुति के लिए 'संगीतोपयोगित्व' तथा 'अभिज्ञेयत्व' तथा 'नियमितता' का होना भी आवश्यक है।

नित्यं गीतोपयोगित्वमभिज्ञेयत्वमप्युत।

लक्ष्ये प्रोक्त सुपर्याप्तसंगीत श्रुति लक्षणम्।।

—भातखण्डे संगीत शास्त्र, प्रथम भाग, पृष्ठ 77 (अभिनवरागमंजरी)

इस प्रकार जिस नाद में नियमितता, स्पष्टता व रंजकता— ये गुण विद्यमान थे, उसे श्रुति कहा गया। अभिनवगुप्त ने श्रुति की व्याख्या इस प्रकार दी है—

अभिधातजाच्छब्दात् अनंतरं योऽनुरणन लक्षणोन्यः।

शब्द उपजायते स तावन् निसर्ग स्निग्ध मधुराकारः।।

—नाट्यशास्त्र भाग—4 अभि0 टीका, पृष्ठ 12

अर्थात वाद्य तंत्री पर आघात करते ही जो प्रारम्भिक ध्वनि स्फुटित होती है वह श्रुति है, इसके गुण हैं— स्निग्धता और मधुरता। स्वर और श्रुति के भेद के संबंध में ग्रंथकारों का मत यही है कि प्रारम्भिक ध्वनि श्रुति है और अनुकरण और स्थिरता के होने से यह स्वर का रूप धारण कर लेती है संगीत ग्रन्थों में एक स्थान पर श्रुतियों की संख्या बाईस मानी गई और श्रुतियों की पांच जातियों का उल्लेख मिलता है — यथा संगीत रत्नाकर में—

श्रुति जातियाँ— दीप्ता, आयता, करूणा, मृदु और मध्या हैं। स्वरों के साथ इनकी स्थिति इस प्रकार है—

दीप्ता, आयता, मृदु, मध्या	—	षड्ज
करूणा, मध्या, मृदु	—	ऋषभ
दीप्ता, आयता	—	गंधार
दीप्ता, आयता, मृदु, मध्या	—	मध्यम
मृदु, मध्या, आयता, करूणा	—	पंचम
करूणा, आयता, मध्यम	—	धैवत
दीप्ता, मध्या	—	निषाद

बाईस– श्रुतियों का जातियों में विभाजन इस प्रकार किया गया है–

तीव्रा, रौद्री, वज्रिका, उग्रा– दीप्ता

कुमुद्वती, क्रोधा, प्रसारिणी, संदीपनी, रोहिणी– आयता

दयावती, आलापिनी, मदंतिका–करूणा

मंदा,रति, प्रीति, क्षिति–मृदु

छंदोवती, रंजनी, मार्जनी, रक्तिका, रम्या, क्षोभिणी–मध्या

'नाद विनोद' की 'नाद भूमिका' जिसके लेखक गोस्वामी पन्नालाल है, में श्रुति को इस प्रकार समझाया है–

श्रुति के ये अर्थ हैं कि जो शब्द हस्त मात्रा करके स्वर के आदि और अंत में श्रवण होवें, उसी को श्रुति कहा है। श्रुतियों के कारण स्वर ह्रस्व, दीर्घ, द्रुत होते हैं, श्रुतियों के न्यूनार्धक होने से राग की परीक्षा होती है। इससे राग में स्वर श्रुति के औचित्यपूर्ण उच्चारण का निर्देश मिलता है अतः श्रुति एक श्रवणीय सुंदर ध्वनि है जिसका स्थान नाद और स्वर के मध्य में है श्रुति जातियों में श्रुतियों का वैचित्र्य व वैविध्य झलकता है श्रुति राग सौन्दर्य की भूमिका है।

स्वर

वह संगीतोपयोगी ध्वनि जो स्थिर, गूँजदार, स्पष्ट और श्रुति मधुर हो, स्वर कहलाती है, 'कोहल' के अनुसार– 'ध्वनि रक्तः स्वरः स्मृतः' अर्थात् ध्वनि जिस प्रकार स्वर में रंजक है उसे स्वर कहते हैं।

मतंग के अनुसार –राग जनक ध्वनि ही स्वर है

–वृहददेशीय, पृष्ठ 6

नान्यदेव के अनुसार– स्वंयमात्मानं रंजयति निपात्नात्सवर निरूक्तिः।।69।।

–भरतनाट्यम् प्रथम खण्ड, शिक्षाध्याय, पृष्ठ–23

अर्थात स्वयं रंजक होने से स्वर नाम दिया जाता है।

पं0 शारंगदेव की स्वर–परिभाषा सारगर्भित है और स्वर–सौन्दर्य का परिचय

भी देती है– श्रृत्यनन्तरभावी यः स्निग्धोऽनुरणनात्मकः।।24।।

स्वतो रंजयति श्रोतृचित्तं स स्वर उच्यते।

–संगीत रत्नाकर, प्रथम स्वरगताध्याय, 3 श्लो 24, 25

अर्थात 'श्रुतियों के बीच का अंतर जो स्निग्ध है। तथा अनुरणन सहित हो और सुनने वालों को प्रसन्न करे, स्वर कहलाता है।

'संगीत समय सार' में स्वर के 'रंजकत्व' गुण को प्रमुखता दी गई है–

राग रंजको ध्वनिः (ध्वनि) स्वरः।

–प्रथम अध्याय, पृष्ठ 10

'संगीत सार संग्रह' में भी स्वर को 'हृदयरंजक' कहा गया है–

इस प्रकार स्वर अनुरणनयुक्त स्निग्ध, मनोहर, सुंदर और रंजक माना गया है श्रुति और स्वर का सम्बन्ध मतंग मुनि ने पाँच सिद्धान्तों का उदाहरण देकर बताया है। ये हैं : तादात्म्य , विवर्तन, कारण, परिगमन और अभिव्यंजन। 'सौन्दर्यशास्त्र' के संदर्भ में भारतीय संगीत कला लेखक रामाश्रय शुक्ल के द्वितीय अध्याय में 'प्रतीक विधान' के अंतर्गत इनका विवेचन इस प्रकार किया गया है–

(1) तादात्म्य– आचार्य मतंग के अनुसार स्वर और श्रुति का तादात्म्य जाति और व्यक्ति की भाँति घटित होता है जिस प्रकार व्यक्तियों से जाति बनती है। उसी प्रकार श्रुतियों से स्वर निष्पन्न होते हैं।

(2) विवर्तन सिद्धान्त– जिस प्रकार मुख दर्पण में विवर्तित होता है, उसी प्रकार प्रत्येक स्वर श्रुतियों में विवर्तित होता है।

(3) कारण सिद्धान्त– स्वर और श्रुति में क्रमशः कार्य और कारण जैसा संयोग घटित होता है। स्वर ही श्रुतियों को प्रकट करते हैं।

(4) परिणमन सिद्धान्त– जिस प्रकार क्षीर (दूध) रूप में परिणत हो जाता है, उसी प्रकार

श्रुतियाँ स्वर रूप में परिणत होती हैं।

(5) <u>अभिव्यंजन सिद्धान्त</u>– श्रुतियों के माध्यम से स्वर उसी प्रकार अभिव्यक्त होते हैं जिस प्रकार प्रतीक के माध्यम से घट। संगीतकार अपने नादात्मक प्रभावों को स्वर के माध्यम से अभिव्यक्त करता है।

संगीत रचना में 'प्रतीक' का तात्पर्य श्रुति–मुक्त स्वरों से है, जिन्हें 'श्रावाणिक प्रतीक' कहते हैं।

<u>स्वरों का विकास</u>–वैदिक कालीन उदात्त, अनुदात्त, स्वरित स्वरों के बाद सप्तक की रचना, श्रुतियों की परिकल्पना व सप्त स्वरों की सुनिश्चित श्रुतियों पर स्थापना आदि में संगीतज्ञों की प्रतिभा का सक्रिय योगदान रहा है। सौन्दर्य शास्त्र में 'प्रतिभा' का महत्व सर्वमान्य है।

''नवनयोन्मेशशालिनी'' क्षमता ही प्रतिभा है। विविधता और नवीनता सौन्दर्य के विशेष लक्षण हैं। सात शुद्ध स्वरों से युक्त संगीत के सौन्दर्य में और अधिक विविधता, वैचित्र्य और नवीनता लाने के लिये विकृत स्वरों का भी आविर्भाव हुआ, यह हमारे संगीतज्ञों की सूक्ष्म सौन्दर्य–चेतना व प्रतिभा का ही परिणाम है।

षड्ज, ऋषभ, गंधार, मध्यम, पंचम, धैवत, और निषाद– ये सम स्वर हैं जिनकी गेय संज्ञायें हैं– सा रे ग म प ध नी। इनमें से षड्ज पंचम अचल स्वर हैं तथा अन्य स्वरों के दो दो रूप हैं।– शुद्ध और विकृत। श्रुतियों पर जिन सात स्वरों की स्थापना पहले हुई वे शुद्ध स्वर हैं तथा जिन पॉच स्वरों की स्थापना बाद में हुई, उन्हें विकृत स्वर कहा गया। रे ग म ध नी ये पॉच स्वर शुद्ध व विकृत दोनो तरह के होते हैं। इनमें रे ग ध नि – ये चार स्वर शुद्ध और कोमल विकृत होते हैं ये विकृत रूप में अपने शुद्ध स्थान से नीचे स्थित होते हैं। मध्यम शुद्ध रूप के अतिरिक्त तीव्र विकृत होता है। यह विकृत रूप में शुद्ध स्थान से ऊपर स्थित होता है। इस प्रकार शुद्ध और विकृत मिलाकर बारह स्वर हो जाने से रागों की रचना का क्षेत्र विस्तृत हो गया है। और विविध राग जनक स्वरावलियों की रचना संभव हुई। अतः

यह कहा जा सकता है कि संगीत क्षेत्र में वैचित्र्य, विविधता व नवीनता के आविर्भाव हेतु ही स्वरों का क्रमिक विकास व विस्तार हुआ है।

स्वर के उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि स्वर प्रकाशमान, अनुरणन युक्त, स्पष्ट, स्निग्ध और रंजक ध्वनि है। ये स्वर राग संगीत का स्त्रोत हैं। राग हमारे संगीत की प्रमुख निधि हैं, अतः हमारे संगीत के सौन्दर्यतत्व पर आधारित है। सुंदर वस्तु स्वतः ही आनन्ददायी होती है। स्वर के समस्त गुण सांगीतिक सौन्दर्य के ही गुण हैं।

सप्तक

एक स्थान में मूल स्वर सात होने के कारण उसे सप्तक नाम दिया गया। सप्तक अनेक हो सकते थे किन्तु मानव कंठ की क्षमता, सहजता व सीमा को ध्यान में रखते हुये साथ ही संगीतोपयोगिता अर्थात स्वर सौन्दर्य के अभिप्राय से संगीत के क्षेत्र में तीन सप्तकों को मान्यता दी गई। ये है– मंद्र सप्तक, मध्य व तार सप्तक। मध्य से नीचा मन्द्र और मध्य से ऊँचा तार सप्तक होता है। सामान्यतः तीनों सप्तकों में राग का विस्तार किया जाता है। कुछ रागों की प्रकृति व भाव--सौन्दर्य विशिष्ट सप्तकों में अधिक निखार प्राप्त करता है। यथाः राग मियॉ मल्हार मंद्र व मध्य सप्तकों में अधिक मनोहर लगता है और राग बसंत मध्य और तार सप्तक में। कुछ रागों का रूप ही भव्यता के लिये तीनों सप्तकों का महत्व है।

ग्राम

मतंग मुनि ने ग्राम की व्याख्या इस प्रकार की है।

समूहवाचिनौ ग्रामौ स्वरश्रुत्यादिसंयुतौ।

यथा कुटुम्बिनः सर्वः एकीभूत्वा वसन्ति हि।

सर्वलोकेषु स ग्राभो यत्र नित्यं व्यवस्थितः।।

–वृहद्देशी, श्लोक 89–90, पृष्ठ17

'संगीत समय सार' में ग्राम की व्याख्या इस प्रकार की है–

स्वराणां मूर्च्छनातानजातिजात्यंशकात्मनाम्।

व्यवस्थितश्रुतीनां हि समूहो ग्राम इष्यते।।59।।

—प्रथमाधिकरणम्, पृष्ठ 15

उपर्युक्त व्याख्याओं एवं तद्विषयक मान्यताओं के आधार पर 'ग्राम' शब्द समूहवाची है, जिस प्रकार कुटुम्ब के लोग मिल जुल कर मर्यादा की रक्षा करते हुय एकत्र रहते हैं, उसी प्रकार संवादी स्वरों का वह समूह ग्राम है जिसमें स्वर व श्रुतियाँ आदि व्यवस्थित रूप से विद्यमान हों और जो मूर्च्छना, तान, जाति, वर्ण, क्रम,अलंकार इत्यादि का आश्रय हो। शास्त्रों में मुख्यतः दो ही ग्रामों का उल्लेख मिलता है–षड्जग्राम तथा मध्यमग्राम।

भरतमुनि के अनुसार–

षड्जग्रामे तु षड्जस्य संवादः पंचवस्य च।

संवादो मध्यम ग्रामे पंचमस्यर्षभस्य च।।

—नाट्यशास्त्र, भाग चतुर्थ, श्लोक 23

अर्थात षड्ज ग्राम में षड्ज–पंचम का संवाद है और मध्यम ग्राम में ऋषम–पंचम का संवाद है। ग्राम की उपर्युक्त विशेषताओं में निहित सौन्दर्य तत्वों का विवेचन निम्न है–

(1) संवाद तत्व ग्राम की प्रमुख विशेषता है। जिन दो स्वरों की ध्वनि एक साथ सुनने पर कर्णप्रिय व रंजक प्रतीत होती है, उन्हें एक दूसरे का संवादी कहते हैं। संवादी स्वरों के मध्य में 8 अथवा 12 श्रुतियों का अंतर होना आवश्यक है। यही संवाद तत्व है संवाद तत्व ही सौदर्यशास्त्रीय 'समता' 'समानुपात' आदि शब्दों का सांगीतिक पर्याय है।

(2) ग्राम की दूसरी विशेषता है कि इसके अन्तर्गत श्रुतियाँ व्यवस्थित रूप से हों। इसके अतिरिक्त श्रुतियों पर स्वरों की स्थापना भी एक व्यवस्थित रूप से विशिष्ट नियमानुसार की गई है। यथा–

चतुश्चतुश्चतुश्चैव षड्जमध्यमपंचमः।

द्वै द्वै निषाद गांधारो त्रिस्त्रीऋषम धैवतो।।

श्रुति स्वर व्यवस्था का यह नियम प्राचीन काल से आज तक मान्य रहा है।

'व्यवस्था' सौन्दर्य का एक महत्वपूर्ण लक्षण है। ग्राम में श्रुति व स्वरों की 'व्यवस्था' से सौन्दर्य का यह लक्षण अभिव्यक्त होता है।

(3) ग्राम की अन्य विशेषता है, जो मूर्च्छना, तान, वर्ण, क्रम, अलंकार आदि का आश्रय हो। मूर्च्छना–नई स्वरावली, नई जाति अथवा रागों की रचना से संबधित है। तान राग विस्तार से, वर्ण स्वरों के विविधतापूर्ण संयोजन से, क्रम सुनिश्चित स्वर धारा–प्रवाह से, अलंकार–स्वर श्रृंगार से संबधित है। इस प्रकार ग्राम अनेक सौन्दर्य तत्वों का आश्रय स्थान है।

(4) ग्राम की व्याख्या में कुटुम्ब का द्रष्टांत सौन्दर्यशास्त्रीय 'एकत्व' 'सुसंगठन' आदि का संकेत करता है। ग्राम के अंतर्गत श्रुति, स्वर, मूर्च्छना, तान, आदि सभी संगीत की 'मर्यादा' की रक्षा करें। अतः ग्राम के अन्तर्गत सौन्दर्य के सामान्य सिद्धान्त व लक्षण मौलिक रूप से निहित हैं।

मूर्च्छना

इसकी व्याख्या भरत ने इस प्रकार की है–

क्रम युक्ताः स्वराः सप्तमूर्च्छेनेत्याभि संज्ञिताः।

–नाट्यशास्त्र, भाग 4, अध्याय 28, श्लोक 32

अर्थात् क्रम युक्त होने पर सात स्वर 'मूर्च्छना' कहे जाते हैं। मतंग मुनि ने मूर्च्छना की व्युत्पति व लक्षण को इस प्रकार बताया है।

मूर्च्छना व्युत्पत्तिः मूर्च्छा मोहसमुच्छ्राययोः मूर्च्छते (1)

येन रागोहि मूर्च्छनेत्यभिसंज्ञिता। आरोहावरोहणक्रमेण स्वर सप्तकम्।

–वृहददेशी पृष्ठ 17

'मूर्च्छना' शब्द मूर्च्छ धातु से बना है, जिसका अर्थ 'मोह' और समुच्छाय (उत्सेध, उभार, चमकना, व्यक्त होना) है। मूर्च्छना शब्द में 'मूर्च्छ' धातु का अर्थ 'चमकना' या उभरना है। इस प्रकार मूर्च्छना में – सा रे ग म प ध नी ध प म ग रे सा'' अवस्था में 'षड्ज' मूर्च्छना का आरम्भिक एवं समापन स्वर होने के कारण उभरता है।

–भरत का संगीत सिद्धान्त, पृष्ठ 34– 35

मूर्च्छना के अर्थ निरूपण में आरम्भ के एवं समापन स्वर के उभरने की बात तो सही है किन्तु इसकी रचना में एक नई स्वर–व्यवस्था जो चमकती है उभरती है, वह मूर्च्छना की प्रमुख उपलब्धि है। इसी से मध्य सप्तक के अतिरिक्त सप्तकों का भी संकेत मिलता है।

ग्राम के सप्त स्वरों को क्रम से 'षड्ज' अर्थात् आरंभक स्वर मानकर आरोह, अवरोह करने से मूर्च्छना की रचना होती है। इस प्रकार षड्ज ग्राम और मध्यम ग्राम, इन दोनों ग्रामों से सात, सा अर्थात चौदह मूर्च्छनायें बन जाती है, स्वरों के श्रुत्यंतर मूलभूत ग्राम के अनुसार होने पर भी आरम्भिक स्वर बदलने से स्वरों का आपसी श्रुति संबंध बदल जाता है। इस प्रकार नये श्रुत्यंतर से युक्त एक नई स्वर–व्यवस्था, नई स्वरावली का सौन्दर्य 'उभरता' है।

मूर्च्छना निर्माण की यह प्रक्रिया वर्तमान 'स्वर संचालन' की प्रक्रिया से समझ में आ सकती है। उदाहरणार्थ– सा रे म प नी सां – यह सारंग लीजिये। इसके 'रि' को षड्ज मानकर यदि ही स्वरावली गाई बजाई जाये तो सारंग के स्थान पर मालकोंस का स्पष्ट आभास होगा– राग भैरवी की स्वरावली में कोमल 'रि' को षड्ज मानकर यदि वही स्वरावली गाई बाजयी जाये तो सारंग के स्थान पर मालकोंस का स्पष्ट आभास होगा– राग भैरवी की स्वरावली में यदि कोमल 'रि' को षड्ज मानकर कोमल 'रि' से कोमल 'रि' तक का सप्तक गाया जाय तो यमन राग की स्वरावली स्पष्ट रूप से सुनाई देगी।

–संगीत बोध, पृष्ठ 28

मूर्च्छना की क्रिया से यह तो स्पष्ट ही था कि मूर्च्छनायें आरम्भिक स्वर बदलने के कारण मूल सप्तक के अतिरिक्त अन्य सप्तकों को भी ग्रहण करती थीं। अतः कालांतर से उन्हें एक ही सप्तक में स्थिर करके विकृत स्वरों की परिकल्पना की गई। इस से एक ही ग्राम 'षड्ज ग्राम' का ही प्रभुत्व स्थापित हो गया। जो कि परिवर्तन हुआ, संगीतज्ञों ने विविध राग जनक स्वरावालियों को सुरक्षा प्रदान की।

मूर्च्छना की रचना प्रक्रिया व प्रयोजन पर विचार करें तो यह सिद्ध होता है कि संगीत के सौन्दर्य चिंतको ने अपनी सुंदर, परिष्कृत व सक्षम कल्पना प्रतिभा से संगीत जगत को एक अनुपम भेंट मूर्च्छना के रूप में दी। मूर्च्छना के द्वारा तीनों सप्तकों का संकेत मिला, नई नई स्वरावलियों की सुस्थापना हुई। जिनके आधार पर नये रागों की रचना संभव हो सकी। इस प्रकार मूर्च्छना से संगीत में विविधता, वैचि य और नवीनता, जो सौन्दर्य के सामान्य लक्षण हैं, का अर्विभाव हुआ। नई स्वर व्यवस्थाये चाहें मूल मूर्च्छनाओं से प्राप्त हुई हों, अथवा एक ही सप्तक में शुद्ध विकृत स्वरों के समन्वय से 'मूर्च्छना–सृष्टि' संगीतजगत् में सौन्दर्य के लक्ष्य से एक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक सुकृत्य है।

जाति

शास्त्र में जाति की परिभाषा इस प्रकार दी गई है।

श्रुति ग्रह स्वरादिसमूहाज्जायन्ते जातयः।

–वृहद्देशी 17

अर्थात श्रुति, ग्रह, स्वारादि समूहों से निर्मित रचना को 'जाति' कहते हैं। मतंग मुनि. ने 'जाति' के प्रभावी गुण पर इस प्रकार प्रकाश डाला है–

य स्माज्जायते रसप्रतीतिरारभ्यत इति जातयः।

–वृहद्देशी 17

अर्थात जिससे रस की प्रतीति होती है, वही 'जाति' है। मतंग मुनि ने द्रष्टान्त द्वारा 'जाति' का अभिप्राय समझाया है कि जिस प्रकार मनुष्यों में ब्राहमण–क्षत्रिय आदि जातियों के भिन्न–भिन्न संस्कार प्रकृति व गुण होते हैं। उसी प्रकार स्वरों की जातियों का भी रूप, स्वरूप, प्रकृति व चलन भिन्न–भिन्न होता है। उनका अपना–2 विशिष्ट सौन्दर्य होता है।

जातियां ही समस्त रागों की जननी है–

सफलस्य रागो देर्जन्महेतुत्वाज्जातयः।

–वृहद्देशी

राग

मतंग मुनि ने 'राग' की परिभाषा इस प्रकार दी—

स्वर वर्ण विशेषेण ध्वनि भेदेन वा पुनः

रज्यते येन यः कश्चित् स रागः संमतः एताम्।

—वृहद्देशी, श्लोक 280

अर्थात विशिष्ट स्वर वर्ण (गान क्रिया) से ध्वनि भेद (भिन्नता) के द्वारा जो जनरंजन में समर्थ है वह 'राग' है।

'रंजकत्व' गुण के कारण ही राग को 'राग' कहा जाता है। मंतग मुनि ने राग की व्युत्पत्ति इस प्रकार प्रस्तुत की है--

इत्येवं राग शब्दस्य व्युत्पत्तिराभिधीयते।

रंजनाज्जायते रागो व्युत्पत्तिः समुदाहतः।।

—वृहद्देशी, श्लोक 283

'संगीतदर्पण' में 'राग' की परिभाषा इस प्रकार दी है—

योऽयं ध्वनि विशेषवस्तु स्वर वर्ण विभूषितः।

रंजको जन चित्तानां स रागः कथितो बुधै।।

—पं0 दामोदर कृत, श्लोक 151, पृ0 24

अर्थात स्वर, वर्ण से विभूषित ध्वनि, जो जन चित्त रंजक है उसे विद्वज्जनों ने राग कहा है।

'संगीतराज' में राग की परिभाषा में उसके सौन्दर्य गुणों को कुछ अधिक स्पष्ट किया गया है।

राणा कुम्भा के अनुसार—

विचित्रवर्णालंकारो विशेषे (षो) यो ध्वनेरिह।

ग्रहादि स्वर संदर्भो रंजको राग उच्यते।

—पाद्यरत्न कोश, तृतीय परिक्षण, पृष्ठ—24

अर्थात जिस ध्वनि या स्वरावली में वर्ण, अलंकारों का वैचित्र्यपूर्ण प्रयोग हो जिसमें ग्रहादि स्वरों का संदर्भ हो तथा जो रंजक हो, वह 'राग' है।

पं0 व्यंकटमखी के अनुसार--- जिनमें मन का रंजन करने का गुण हो, वही 'राग' है।

रंजयन्ति मनासीति रागा।

–चतुर्दण्डि प्रकाशिका, राग प्रकरण, पृष्ठ 56

प्राचीन समय से आधुनिक समय तक 'राग' के मनोहारी चित्तरंजक गुण को सभी ने स्वीकार किया है। 'सुन्दर' वस्तु स्वयमेव आनन्दप्रद होती हैं। राग भी स्वर वर्ण से अलंकृत विशिष्ट और सुंदर स्वरावली है, अतः आनन्दप्रद है, रंजक है। संगीत में 'रंजक' उसे कहा जाता है– जो सुख अथवा आनन्द देने वाला है। और इस अर्थ में रंगने का अर्थ सन्निहित है ही।''–

–'राग लक्षण अथवा राग के आवश्यक तत्व', डा0 प्रेमलता शर्मा (निबन्ध संगीत) पृष्ठ 261

राग रंग में मन रंग जाता है। आनन्दमय हो जाता है। हमारे रागदारी संगीत में सौन्दर्य के अनन्त रहस्य निहित है इसीलिये एक राग अनेक बार सुने जाने पर भी मनोहर एवंम् नवीन प्रतीत होता है।

अतः विशिष्ट नियमों से व्यवस्थित, स्वरवर्ण से सुसज्जित रंजक स्वरलहरी ही 'राग' है। राग भारतीय संगीत की अनुपम निधि है जो भारतीय संगीतज्ञों की सुविकसित, परिष्कृत, सूक्ष्म सौन्दर्य भावना की प्रतीक है। राग का सौन्दर्य चिरंतन होता है। राग का स्वर वर्ण से विभूषित 'ध्वनि विशेषवस्तु' अंग उसके 'रूप सौदर्य से सम्बन्धित है और उसका रंजकत्व गुण उसके 'अंत सौन्दर्य' से संबंन्धित है। राग वह अद्वितीय कृति है जो अनुराग (प्रीति) का वातावरण सृजित कर देती है। राग का मूल अनुराग है और परिणाम भी अनुराग है यह 'प्रीति' तत्व सौन्दर्य का सर्व प्रमुख गुण है।

राग लक्षण

राग के रूप को वैशिष्ट्य प्रदान करने के लिये शास्त्रों में अनेक नियमों का

विवेचन किया है। जिनमें से प्रमुख राग लक्षण के माध्यम से प्रस्तुत किये गये। जाति, जो कि राग का प्राचीन रूप है, के दस लक्षण भरत मुनि ने इस प्रकार बताये।

ग्रंह, अंश, मन्द्र तार, न्यास, अपन्यास, अल्पत्व, बहुत्व, षाड़वत्व, और औढ़वत्व– ये दस 'जाति लक्षण' ही 'राग लक्षण' के रूप में शास्त्रकारों द्वारा स्वीकृत किये गये हैं। राग का प्रारम्भिक स्वर 'ग्रह स्वर' कहलाता है। राग में जिस स्वर की प्रधानता होती है उसे 'अंश स्वर' कहते हैं। इसके सन्दर्भ में पार्श्वदेव ने बताया–

सप्तस्वराणां मध्येऽपि स्वरे यस्मिन् सुरागता।

जीव इत्युक्तः अंशों वाची च कथ्यते।।

–संगीत रत्नाकर सार, अध्याय 3, श्लोक 6

अर्थात्– सात स्वरों में से जिस स्वर पर सर्वाधिक 'सुरागता' हो, अर्थात् राग का सौन्दर्य निर्भर हो, उसे जीव अंश अथवा वादी स्वर कहते हैं। राग में वादी स्वर का एक संवादी स्वर होता है जिसका महत्व वादी स्वर से कम किंतु अन्य स्वरों से अधिक होता है। राग में प्रयुक्त होने वाले अन्य स्वरों को अनुवादी स्वर कहते हैं। महत्व की दृष्टि से वादी संवादी, अनुवादी स्वरों का क्रमिक स्थान है। मंद्र, मध्य, तार जिन सप्तकों में राग का विस्तार अधिकत्व से हो, यह पक्ष 'मंद्र तार' लक्षण के अन्तर्गत निर्धारित होता है। 'न्यास' वह स्वर है, जिस पर गीत का समापन होता है तथा अपन्यास वह स्वर है जिस पर गीत के खंड का समापन होता है। राग के किन–किन स्वरों का प्रयोग अल्पता अथवा बहुलता के साथ होना चाहिये– यह 'अल्पत्व–बहुत्व' है। राग के 'आरोह–अवरोह' में कौन–2 से स्वर वर्जित होंगे इसका संकेत 'षाड्तत्व औडतत्व' से मिलता है।

उपर्युक्त राग के दस लक्षणों में 'ग्रह' तथा 'न्यास अपन्यास' के नियम आधुनिक समय में शिथिल से हो गये हैं। आज प्रत्येक राग को प्रायः मध्य षड्ज से ही प्रारम्भ किया जाता है। राग विशेष का आरंभिक 'स्वर विशेष' निश्चित नहीं हैं। इसी प्रकार राग का समापक स्वर भी निश्चित नहीं है। प्रत्येक राग का समापन अधिकाशतयः मध्य षड्ज पर ही

किया जाता है। दूसरे शब्दों में मध्यषड्ज को ही ग्रह और न्यास कह सकते हैं। आज 'न्यास' शब्द का अर्थ प्रायः 'ठहराव' के रूप में ग्रहण किया जाता है। 'अंश' अर्थात् वादी स्वर का पर्याप्त महत्व मान्य है। राग की रूप रचना के दृष्टिकोण से संवादी और अनुवादी स्वरों का भी महत्व है। मंद्र तार और मध्य तीनों सप्तकों का राग विस्तार के लिये महत्व है। राग में विशिष्ट स्वरों का अल्पत्व अथवा बहुत्व भी मान्य है। राग में अल्पत्व दो विधियों से दर्शाया जाता है।

(1) लंघन अल्पत्व (2) अनभ्यास अल्पत्व।

(1) लंघन अल्पत्व – राग बढ़त में जब किसी स्वर को छोड़ दिया जाता है। तो उसका लंघन अल्पत्व हो जाता है। राग शुद्ध कल्याण के आरोह में निषाद का लंघन अल्पत्व है।

(2) अन्भ्यास अल्पत्व– किसी राग पर ठहराव (अभ्यास) न करके अनभ्यास अल्पत्व निभाया जाता है। राग भीमपलासी में धैवत का अनभ्यास अल्पत्व है। राग में किसी स्वर का बहुत्व भी दो विधियों से दर्शाया जाता है।

(1) अलंघन बहुत्व (2) अभ्यास बहुत्व

(1) अलंघन बहुत्व– राग के विस्तार में जिस स्वर को छोड़ा न जाये तथा बारम्बार प्रयोग किया जाय। यथा राग यमन में मध्यम का अलंघन बहुत्व है।

(2) अभ्यास बहुत्व– राग में अभ्यास बहुत्व उस स्वर का होता है। जिस पर बार–2 ठहराव अथवा अभ्यास किया जाता है। जैसे – राग यमन में गंधार का अभ्यास बहुत्व है। राग में वादी स्वर का तो अभ्यास बहुत्व होता ही है। अन्य स्वर का भी अभ्यास बहुत्व हो सकता है। यथा राग केदार का वादी स्वर मध्यम है। मध्यम के अतिरिक्त पंचम का भी अभ्यास बहुत्व होता है। इसी प्रकार बागेश्वरी का वादी मध्यम है। उसमें धैवत का भी अभ्यास बहुत्व है।

षाड़वत्व तथा औडवत्व के साथ संपूर्णत्व भी जुड़ा हुआ है। राग के आरोह अवरोह सम्पूर्ण (सात स्वर युक्त), षाडव (छः स्वर युक्त) तथा औडव (पांच स्वर युक्त) हो सकते हैं। इनसे

राग की जाति का निर्धारण होता है। इनके समन्वय से राग की नौ जातियों का निर्माण हुआ है– संपूर्ण–संपूर्ण, संपूर्ण–षाड़व, सम्पूर्ण–औढ़व, षाड़व–षाड़व, षाड़व–संपूर्ण, षाड़व–औढ़व,औढ़व–संपूर्ण औढ़व–षाड़व, औढ़व–औढ़व राग के आरोहात्मक–अवरोहात्मक चलन को निर्धारित करने में 'षाड़वत्व–औड़वत्व' लक्षण का महत्व है।

अतः राग के 'आकार' को विशिष्ट सौन्दर्य प्रदान के लिये राग लक्षणों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

राग लक्षणों के अतिरिक्त राग के कुछ अन्य नियम भी मान्य हैं। राग के समग्र सौन्दर्य हेतु उनका भी महत्व है। यथा–

(1) राग में रंजकत्व का होना प्रमुख नियम है। राग शब्द की उत्पत्ति ही 'रंज्' धातु से हुई है जिसका अर्थ है– प्रसन्न करना। राग की मौलिक विशेषता है– 'रंजको जन चित्तानां'। रंजक शब्द को 'सुंदर' का ही सांगीतिक पर्याय कह सकते हैं। राग का मूल है– स्वर सौन्दर्य और लक्ष्य है हृदय को आनंदित करना।

(2) राग को थाट के अंतर्गत होना चाहिये। राग सौन्दर्य की स्थूल पहचान के लिये उन्हें कुछ सीमित थाटों में विभाजित किया जाता है। जनक का गुण है–'पूर्णत्व'। इसी दृष्टि से थाट को पूर्ण अर्थात् सात स्वरों से युक्त होना आवश्यक है।

(3) राग में कम से कम पांच स्वर अवश्य होने चाहिये। इससे कम स्वरों के समूह को 'तान' मात्र ही कहा गया है। इस नियम के एक दो अपवाद हो सकते हैं किंतु सामान्य नियम सही है। पांच से कम स्वरों के राग में विस्तार संकुचन तथा परिणामस्वरूप विविधता का अभाव होने के कारण राग में कम से कम पांच स्वरों का होना आवश्यक माना गया है।

(4) राग में आरोह, अवरोह दोनों का होना आवश्यक है। राग विस्तार में आरोहण (स्वरों का चढ़ाव) तथा अवरोहण (स्वरों का उतार) से 'संतुलन' स्थापित होता है। जिस प्रकार पर्वतों की क्रमिक ऊँचाइयाँ सुन्दर प्रतीत होती हैं उसी प्रकार गहरी होती हुई घाटियों का भी अपना सौन्दर्य है। इसी लक्षण से राग में आरोह–अवरोह का सौन्दर्य अन्योन्याश्रित है। अतः राग के

'रूप' तथा 'व्यक्तित्व' तथा उसमें 'संतुलन के लिये आरोह अवरोह का महत्व है।

(5) राग में षड्ज स्वर कभी वर्जित नहीं होता है। षड्ज को आधार स्वर अथवा 'स्वरित' कहा जाता है। 'स्वरित' की स्थापना के बाद ही अन्य स्वरों की स्थिति निर्धारित होती है। जिस प्रकार हरे पत्तों की भूमिका में पुष्पों का रंग, बनावट आदि स्पष्ट होती है। उसी तरह स्वरित की पृष्ठभूमि में अन्य स्वरों का विशिष्ट सौन्दर्य स्पष्ट होता है।

(6) राग में मध्यम और पंचम स्वर एक साथ वर्जित नहीं हो सकते। आधार स्वर 'सा' के साथ ये स्वर 'सुसंवाद' रखते हैं, क्योंकि ये एक विशेष 'आनुपातिक' अंतर पर स्थित हैं। षड्ज मध्यम और षड्ज पंचम के मध्य क्रमशः आठ और बारह श्रुतियों का अंतराल है। जिन रागों में शुद्ध मध्यम और पंचम वर्जित है और तीव्र मध्यम लगता है, जो कि षड्ज का संवादी नहीं है तो ऐसे रागों में संवाद तत्व की रक्षा हेतु शुद्ध निषाद अवश्य दिखाई देता है। जो तीव्र मध्यम के साथ संवाद करता है जैसे-- पूरिया, मारवा, सोहनी, हिंडोल आदि।जिस राग में तीव्र मध्यम का प्रयोग होता है, उसमें अकेला कोमल निषाद प्रयुक्त नहीं होता है, दोनों मध्यम और दोनों निषाद वाले राग हो सकते हैं।

—क्रमिक पुस्तक मालिका, भाग—5 पृष्ठ 32

(7) राग में वादी स्वर का होना निश्चित है। वादी स्वर राग रूप को विशिष्ट संदर्भ में सौन्दर्य से सम्पन्न बनाता है। राग के समग्र रूप पर वादी स्वर का प्रभाव होता है। जैसे—राग भूपाली और देशकार में स्वर साम्य है। भूपाली का वादी गंधार और देशकार का धैवत है। थाट की विभिन्नता के अतिरिक्त वादी स्वर की भिन्नता से भी इन रागों में भिन्नता आ जाती है। वादी स्वर राग का स्थूल रूप से समय निर्धारित करने में भी सहायक होता है। यथा—यदि वादी स्वर सप्तक के पूर्वांग (सा, रे ग म प) में से कोई स्वर है तो उसका गायन समय दोपहर के बारह बजे से, रात के बारह बजे के मध्य होगा। यदि राग का वादी स्वर सप्तक के उत्तरांग (म प ध नी सां) में से कोई स्वर है तो उसका गायन समय रात के बारह बजे से दिन के 12 बजे के मध्य होगा। ऐसा माना जाता है। वादी के ही संदर्भ में राग के संवादी

स्वर का निर्धारण होता है। वादी पूर्वांग में है तो संवादी उत्तरांग में होता है यदि वादी उत्तरांग में है तो संवादी पूर्वांग में होता है।

राग--श्रृंगार के तत्व

राग का विस्तार व श्रृंगार आलाप तान के माध्यम से होता है। आलाप तान की व्याख्या व उनके सौन्दर्य विधान का विवेचन संगीत ग्रंथों में किया गया है।

आलाप–

राग का विलम्बित गति में, चैनदारी के साथ, मुक्त रूप से विस्तार करने को आलाप कहते हैं। आलाप अनिबद्ध गान के अंतर्गत माना गया है–

'संगीत रत्नाकर' के भाग 2, अध्याय 2 राग विवेकाध्याय, श्लोक 23, 24 पृष्ठ 21,22 पर

'रागालाप' 'रूपक' तथा 'आलप्ति' का वर्णन किया गया है। जिसे आधुनिक 'आलाप' के समकक्ष मान सकते हैं। ''राग के दस लक्षण, ग्रह, अंश, न्यास आदि से युक्त आलाप को 'रागालाप कहा गया है। जिसमें स्थाई, अंतरा इत्यादि भाग बिना शब्द तथा ताल के अलग अलग भाग दिखाये जाते हैं, उस प्रकार को 'रूपक' कहते है''

–भातखण्डे संगीत शास्त्र, अध्याय 3, श्लोक 189

अनु0 सुरेशचन्द्र, पृष्ठ 143, 44 (सिंह भूपाल टीका)

आलप्ति के लिये भी राग के नियम व लक्षणों ग्रह, अंश आदि से युक्त होना स्वाभाविक ही था और इसमें विविधता होने से रूपकालाप की विशेषताओं का समन्वय भी संभाव्य था। अतः आलप्ति के अंतर्गत 'रागालाप' और 'रूपकालाप' का समन्वय होने से तथा राग के प्रकटीकरण की दृष्टि से इसे आधुनिक 'आलाप' का प्राचीन पर्याय कहें तो उचित ही होगा। आलप्ति राग सौन्दर्य की अभिव्यक्ति का समर्थ माध्यम है।

वर्णालंकारसंपन्ना गमक स्थायचित्रिता।

आलाप्तिच्यते तजौर्भरिभङ्गिम नोहरा।।

–संगीत रत्नाकर, प्रकीर्णकाध्याय, श्लोक 202

आलप्ति की रचना में वर्ण, अलंकार, गमक व स्थाय का प्रयोग इसके श्रृंगार व विविधतापूर्ण सौन्दर्य के लिये किया जाता है। अतः इनका भी विवरण यहां आवश्यक है।

वर्ण— गाने की विविध क्रियाओं को 'वर्ण' कहते हैं। इसकी परिभाषा इस प्रकार है—

गानक्रियोच्यते वर्णः स चतुर्धा निरूपितः।

स्थाय्यारोह्यवरोही च संचारीत्यथ लक्षणम्।।

—संगीत रत्नाकर, प्रथम स्वरागाध्याय 6, श्लोक1 पृष्ठ 151

अर्थात गाने की क्रिया को वर्ण कहते हैं। वर्ण चार होते हैं।

(1) **स्थायी**— आलाप में जब एक ही स्वर दो या अधिक बार लगातार प्रयुक्त हो तो उसे स्थायी वर्ण कहते हैं। जैसे— म म म, म प।

(2) **आरोही** — यदि स्वर चढ़ते हुये क्रम में प्रयुक्त हो तो उन्हें आरोही वर्ण कहते हैं जैसे ग म प ध नी।

(3) **अवरोही**— यदि स्वर उतरते हुये क्रम में प्रयुक्त हों तो उन्हें अवरोही वर्ण कहते हैं जैसे— प म ग रे सा।

(4) **संचारी** — जब तीनों वर्णों का मिश्रित प्रयोग आलाप में किया जाता है तो उसे संचारी वर्ण कहते हैं। जिस प्रकार भाषा के अक्षरों अर्थात वर्णमाला से ही शब्द बनते हैं। तथा विभिन्न भावों की अभिव्यक्ति करते हैं, उसी प्रकार संगीत में वर्णों से राग विस्तार के विविध रूप बनते हैं आलाप सौन्दर्य को विविधता प्रदान करने में वर्णों का योगदान महत्वपूर्ण है।

वर्णों का प्रयोग तीनों, सप्तकों में राग के रूप के अनुसार किया जाता है आलाप के अतिरिक्त तान हो अथवा बंदिश सभी के वर्णों के विविध प्रयोग से सौन्दर्य साकार होता है।

अलंकार—

विशिष्ट वर्ण—संदर्भ को अलंकार कहते हैं। अलंकार की परिभाषा इस प्रकार की गई—

विशिष्टं वर्ण संदर्भमलङकार प्रचक्षते।।3।।

–संगीत रत्नाकर, प्रथम स्वरगताध्याय 6, श्लोक 5 पृष्ठ 152

'अनूप संगीत विलास' में अलंकार की परिभाषा इस प्रकार है–

क्रमेण स्वरसंदर्भमलङकार प्रचक्षते।।

–स्वराध्याय पृष्ठ 24

अर्थात क्रमिक स्वर संयोजन से ही अलंकारों की रचना होती है।

"नाट्यशास्त्र में चार वर्ण प्रकारों को अलंकार का आश्रय कहा गया है

–अध्याय 29, श्लोक 14

अलंकारों का निर्माण 'वर्ण' के ही विविध रूपों में होता है। वर्ण ही अलंकार की भूमिका और आधार हैं। भरतकोष में अलंकार की परिभाषा के साथ–साथ इसे शक्तिवर्धक भी कहा गया है।

विशिष्टानां स्वराणां यः संदर्भो शक्तिवर्धनः।

वर्णाश्चित्र प्रयोगरतमलङकारं प्रचक्षते।।

–वृहददेशी पृष्ठ 33

मतंग ने अलंकारों को गायन और श्रोता दोनों के लिये सुखाबद्ध बताया है–

प्रसन्नाद्भादिभिरलंकृता वर्णाश्रया गीतिगतिृ श्रोतृणां सुहावहा भवतीति।

–वृहददेशी पृष्ठ 23

भरत ने अंलकारों का यथाविध व सही अनुपात में औचित्यपूर्ण प्रयोग का निदर्शन किया है–

गीतालङ्काराणां करण विधिरयं यथावदुपदिष्टः।

एभिरलङ्कर्तत्या गीतिवर्णाविरोधेन।

–नाट्यशास्त्र, अध्याय 29, भिन्न पाठ्यक्रम, श्लोक 72, पृष्ठ 131

'चतुर्दण्डिप्रकाशिका' में आठ अंलकारों का तालों के आधार पर विवेचन किया गया है। भरत ने 33,शारंगदेव ने 63 पार्श्व देव ने 13 तथा पं0 अहोबल ने 69 अलंकार कहे हैं।

अंलकारों की संख्या असीमित हो सकती है।

अलंकार का महत्व गीति के श्रृंगार के लिये कितना अधिक है इसका भरत मुनि ने उपमा देकर सुन्दर वर्णन किया है—

शशिना रहितेव निशा विजलैव नदी लता विपुष्पेव।

अविभूषितेव च स्त्री गीतिरलङ्कारहीना स्यात्।।45।।

—नाट्यशास्त्र, अयाय 29

अर्थात जिस प्रकार चंद्रमा बिना रात्रि, जल के बिना नदी, पुष्परहित लता तथा आभूषण बिना स्त्री शोभा नहीं देते। उसी प्रकार अंलकार बिना गीत भी शोभा नहीं देता है।

शोभा सौन्दर्य का महत्तवपूर्ण लक्षण है। अंलकार का सामान्य शब्दार्थ है आभूषण। आभूषण का प्रभाव होता है शोभा वृद्धि। अतः संगीत में राग की शोभा बढ़ाने के लिये विविध अलंकारों का प्रयोग किया जाता है।

अलंकार में वर्णों का प्रयोग एक नियमित क्रम से किया जाता है। यथा सा रे ग रे ग, रे ग म ग म, अथवा सा ग रे सा रे ग, रे म ग रे ग म आदि। अंलकार का प्रत्येक अंग अन्य अंगों से क्रम, संतुलन (वजन) में समान होता है। इस प्रकार क्रम संतुलन व समता—सौन्दर्य के सामान्य सिद्धान्त 'अलंकार' रचना में निहित होते हैं। इसके अतिरिक्त 'अलंकार' शब्द ही श्रृंगार व सौन्दर्य से संबधित है।

शारंगदेव ने कहा है— अलंकार निरूपण का प्रयोजन शक्ति लाभ, स्वर ज्ञान तथा वर्णांगों की विचित्रता का ज्ञान है।

—वर्णालंकार प्रकरण, श्लोक संख्या 64

अलंकार युक्त आलाप राग सौन्दर्य को नये नये रूप में साकार करती है। अंलकारों के प्रयोग से स्वर ज्ञान तो परिपुष्ट होता ही है। इसके अतिरिक्त विचित्रता के दर्शन भी इसके द्वारा होते हैं। 'विचित्र' 'सुंदर' का ही पर्याय है। अलंकार शक्ति लाभ करता है। अर्थात् रूचिकर होने के कारण हृदय को आनन्द प्रदान करता है।

निष्कर्षतः क्रम, संतुलन समता ये सौन्दर्य के सामान्य सिद्धान्त, शोभा, विचित्रता सौन्दर्य के लक्षण व रक्ति लाभ यानि रंजकता सौन्दर्य का गुण इन सभी सौन्दर्य तत्वों का विलक्षण समन्वय 'अलंकार' के अन्तर्गत होता है।

गमक–

'संगीत रत्नाकर' में 'गमक' की परिभाषा इस प्रकार दी है–

स्वरस्य कम्पो गमकः श्रोतृचित्त सुखावहः।

–प्रकीर्णकाध्याय, श्लोक 87

अर्थात् है– स्वरों का ऐसा कंपन जो श्रोता के हृदय को प्रसन्न करे, 'गमक' कहलाता है। 'गमक' को 'वाग' भी कहा गया है। –''बागो गमक उध्यते''

–श्लोक 97, प्रकीर्णकाध्याय

'वाग' वाणी को संबोधित करता है। संगीत की देवी मां सरस्वती को 'वागदेवी' भी कहते हैं। अतः वाग (गमक) के उच्चार में वाणी का स्वर चैतन्य से परिपूर्ण विशिष्ट गतिपूर्ण व संगीतात्मक प्रयोग अभिप्रेत है! 'गमक' शब्द गम् धातु से बना है जिससे गमन, गति अथवा जाने का संकेत मिलता है। पार्श्वदेव ने 'गमक' की व्युत्पत्ति व उसके स्वरूप का स्पष्टीकरण इस प्रकार किया है।

स्वश्रुति स्थानसंभूतां छायांश्रुत्यन्तराश्रयाम्।

स्वरो यद् गमयेद् गीते गमकोऽसैनिरूपिताः।।

–संगीत समय सार 2/72

अर्थात जो स्वर अपने श्रुति स्थान पर संभूत छवि को अन्य श्रुति की छाया तक पहुँचा दे, वह गमक कहलाता है। कुम्भ की परिभाषा 'गमक' के रूप और सौन्दर्य को संबोधित करती है।

श्रोतृचित्तस्य सुखदो गमकः स्वरकम्पनम्।

गमकः स्थाय वर्णाद्याः नानालंकृत्यलंकृता।।

–भरतकोष पृष्ठ 167

अर्थात स्वरों का ऐसा कंपन जो सुनने में सुखद हो, गमक कहलाता है। गमक स्थाय, वर्ण आदि अलंकरणों से अंलकृत होता है। श्री निवास ने भी 'गमक' को 'रक्ति' गुण से सम्पन्न बताया है।–

गमयन्ति हिते रक्तिं यस्मात्ते गमका मताः

–राग तत्व विबोध, गमक प्रकरण, श्लोक 69

'गमक' गायन का श्रृंगार करता है इसीलिये प्राचीन समय से ही गमक प्रयोग के प्रमाण मिलते हैं। 'संगीत रत्नाकर' में गमक का विस्तृत विवेचन किया गया है।

शारंगदेव ने गमक के 15 प्रकार बताये हैं–

(1) तिरिप– छोटे डमरू के समान रमणीय तथा द्रुत के चतुर्थांश वेग के साथ कम्प वाला।

(2) स्फुरित – द्रुत के तृतीय भाग के समान वेग युक्त स्वर का कंप।

(3) कम्पित– द्रुत के अर्थांश वेगयुक्त कम्प।

(4) लीन– द्रुत के परिमाण वाला कंप।

(5) आन्दोलन– 'लघु' के परिमाण के लय में या द्रुत मध्य अथवा विलम्बित लय के गान में उसी के परिमाण का स्वर कम्प।

(6) वलि– मंद्र आदि तीन स्थानों में ही निर्बाध (अर्थात फैला हुआ) और घन का निविड़ स्वर से युक्त।

(8) कुरूल– यह 'बलि' के समान है किंतु यह कोमल होता है।

(9) आहत– आगे में स्थित स्वर को शीघ्र एक बार स्पर्श पूर्वक निवृत हो जाय।

(10) उल्लसित – जो स्वर समूह में उत्तरोत्तर आरोहण करे।

(11) प्लवित – 'प्लुत परिमाण में कंपित हो।

(12) हुंफित– जिसके गर्भ में या मध्य में मनोहर 'हूँ' यह वर्ण रहे।

(13) मुद्रित–मुख को बंद करके स्वर का कंप।

(14) नामित– जिसमें स्वर समूह का नामक (झुकाव) और अवरोहरण रहता है।

(15) मिश्र– पूर्वात्क्त गमक समूह के लक्षणों के मिश्रण से उत्पन्न।

स्वरों के विशिष्ट ढंग से उच्चारण का लक्ष्य है:–

''श्रोत्तृचित्त सुखावद्यः''

–हिन्दुस्तानी संगीत शास्त्र, भाग–2 पृष्ठ 92

अर्थात् श्रोताओं को कर्णप्रिय प्रतीत हो और ह्दय को सुख व आनन्द प्रदान करने वाला हो। स्वर सौन्दर्य की विविधता 'गमक' के अंतर्गत लक्षित होती है, राग विस्तार में सौन्दर्य वर्धन के लिये कितनी सूक्ष्मता से हमारे संगीत विद्वानों ने अध्ययन किया है।– गमक इसका प्रमाण है। कंठ ध्वनि में तरलता, लचीलापन होने के कारण स्वर में अनेक प्रकार से घुमाव व उतार चढ़ाव आदि प्रस्तुत किये जा सकते हैं।

लय–ताल

जिस प्रकार संगीत के लिए स्वर आवश्यक है, उसी प्रकार 'लय' भी अत्यन्त आवश्यक है। इसके महत्व को स्वीकारते हुए विद्वानों ने ''श्रुति माता लयः पिता'' ऐसा कहॉ है। समय की समान गति को 'लय' कहते हैं। निसर्ग से प्राप्त गति का उपयोग लय–तत्व के रूप में गायन, वादन एवं नृत्य के लिए किया गया है। संगीत में यह गतिशीलता श्रव्य एवं दृश्य दोनों प्रकार से विद्यमान होती है।

लय शब्द 'ली' धातु से बना है। ली धातु के कई अर्थ बताए जाते हैं यथा इसका मुख्य अर्थ लीन होना, तादात्म्य प्राप्त करना है।

भारतीय संगीत ग्रंथों में लय की व्याख्या –

''क्रियानंतरं, विश्रांतिर्लयः, स त्रिविधा स्मृतः।

दृतो,मध्यो विलम्बश्चत, दृतः शीघ्रतमो मतः।।

द्विगुणद्विगुणौर्ज्ञेयौ तस्मान्मध्य विलम्बितौ।।''

–आचार्य ब्रहस्पति, ''नाट्यशास्त्र का 28वॉ अध्याय,'' हि0टी0 पृ0 292

अर्थात् ताल क्रिया के अनन्तर किया जाने वाला विश्राम 'लय' कहलाता है। शीघ्रतम लय 'द्रुत' उससे दुगुनी 'मध्य' तथा उससे दुगनी विलम्बित कहलाती है।

लय को गति के अनुसार या व्यवहारिक दृष्टि से अक्षरगत, गीतगत, छंदोगत, पदगत, वाक्यगत, शब्दगत, वाद्यगत, स्वरगत आदि दृष्टिकोण से देखा जा सकता है।

छंदगत लय और तालगत लय दोनों ही संगीत से संबंध रखती हैं। छंदोगत लय और तालगत लय ह्रस्व–दीर्घ तथा लघु–गुरू पर आधारित होती है। वैदिक काल में जब ताल की व्याख्या स्पष्ट नहीं थी तब छंदोगत लय का ही उपयोग किया जाता था। दोनों प्रकार की लय कालमान पर अवलंबित होती थी। दो क्रियाओं के मध्य यह कालमान कम, मध्यम या दीर्घ हो सकता है। इसी कालमान के आधार पर मुख्य तीन प्रकार की लय मानी गई है– दृत, मध्य व विलम्बित। फिर अतिदृत, अतिविलम्बित भी हो सकती है। लय का सम या विषम रूप भी चलन में है– जो लयकारी कहलाता है।

लय और लयकारी दोनों में विशेष अन्तर न होते हुए भी दोनों भिन्न हैं। लय मात्रा के अंतर द्वारा निश्चित की जाती है तथा लयकारी में एक मात्राकाल में किसी उच्चारणों या वर्णो का कालमान मात्रा के आधार पर नापा जाता है। यह लय की भिन्न–2 क्रियाएं हैं।

'ताल' को संगीत का प्राण कहा जाता है। ताल संगीत भी लय धारणा को स्पष्ट करता है। संगीत के विद्वानों ने ताल विहीन संगीत को आरण्यक संगीत कहा है।

सर्वप्रथम हाथ से ताली देकर तथा भूमि पर पैर मारकर मानव ने लय धारणा का कार्य सिद्ध किया होगा। ताल की सार्थकता, गायन, वादन एवं नृत्य में कितनी अधिक है, उसका भरत ने अत्यन्त स्पष्ट शब्दों में उल्लेख किया है–

"यस्तु ताल न जानाति न स गाता न वादकः"।

गीत में ताल की महत्ता को– 'गीत ताल विकल्पनम्' कहकर तथा नाट्य में ताल की महत्ता को "नाट्य ताले प्रतिष्ठितम्" कहकर स्थापित किया है।

तल् धातु के मध्य में प्रत्यय लगाने से ताल शब्द रूप कहा जाता है।

अधिकतर ग्रंथो में 'तले भवस्तालः' के अनुसार शाब्दिक व्याख्या– ''स्थिरता स्थापित करना या प्रतिष्ठापित करना'' है।

ताल काल क्रिया मानम' अर्थात् काल को मापने का परिमाण ही इसकी संक्षिप्त व्याख्या हो सकती है। अतः मात्रा एवं क्रियाओं के विशिष्ट समूह से बने आवर्तकाल खंड को ताल कहते हैं।

ताल का काल क्रियाओं द्वारा ही स्पष्ट होता है। इसी क्रिया को प्राचीन व मध्यकाल में सशब्द व निशब्द क्रिया कहते थे, वर्तमान में हम इसे ताली व खाली कहते हैं।

ताल के दस प्राणों का उल्लेख प्राचीन से अब तक किया जाता रहा है। जिनका ताल की प्रस्तुति से सीधा संबंध है। काल, मार्ग, क्रिया, अंग, ग्रह, जाति, कला, लय, यति और प्रस्तार– इन नियमों के अन्तर्गत ताल का वादन करने से ही रस–उत्पत्ति, भाव सौन्दर्य, चलन, स्थायित्व तथा संरक्षण के योग्य सिद्ध होता है।

संगीत का ताल में समन्वय स्थापित करने से वह निबद्ध होकर रंजकत्व प्रदान करने वाला बनता है, गायन, वादन और नृत्य को ताल द्वारा ही गति प्राप्त होती है। संगीत में श्रंगारिक, आनन्दित, उत्तेजित आदि रस भावों की निष्पत्ति तालों द्वारा गति प्रदान करने से ही संभव होती है।

'पारस्परिक सम्बन्ध'

अपने भावों को प्रकट करने की प्रवृत्ति मानव में आदि काल से रही है। और इसी प्रवृत्ति के कारण 'कला' का जन्म हुआ। कलाकार की कृति उसकी भावनाओं का दर्पण होती है, कवि की काव्य सृष्टि में, चित्रकार के तस्वीर एवं रंगों के सामन्जस्य में, संगीतकार के स्वरों व लयों में ही क्रमशः शब्द, रंग और ध्वनि की स्वाभाविक अभिव्यंजना उद्भूत होती है। ललित कलाएं ही मानव को आध्यात्मिक पक्ष की ओर ले जाती हैं तथा जीवन पर गहरा प्रभाव डालती हैं।

कला का एक दूसरा पक्ष 'सौन्दर्य' है। जो सौन्दर्य चेतना को तुष्टि प्रदान करे

वही कला है। एक विचार हमारे लिए विचार तब तक न होगा जब तक उसे शब्दों में न ढाला जाए। जब संगीत सच्चा होगा, तब अन्तर्रात्मा का स्पर्श अवश्य होगा। चित्रात्मक चित्र वास्तव में चित्रात्मक तब होता है, जब वह रंगों का रूप धारण करने वाले रसो में रसाबोर हो जाता है। कलात्मक कला मूर्त होती है पर स्थूल नहीं। वह सदैव अपने ही परिवेश में सजी–सवंरी रहती है। कलाकार जब भावों की उथल–पुथल से मुक्त हो जाता है तब वह गीतात्मक–विम्ब से उसे साकार कर देता है। अभिव्यंजना की लालसा कलाओं के सृजन की सूत्रधारिणी है। वही कला का व चित्र का निर्माण करती है। अन्य कलाएं स्थिर रहकर आनन्द की सृष्टि करती हैं।

संगीत और काव्य दोनों ही कलाएं गतिशील हैं। कोई भी कलाकार भावों को व्यक्त करने से पूर्व अपने अन्दर में अपना चित्र अवश्य चित्रित करता है। कल्पना को आकार देना, कलाकार की साधना का चरम रूप है। कवि कल्पना को शब्द व अर्थ द्वारा, चित्रकार रंग व तूलिका द्वारा, संगीतज्ञ नाद एवं स्वर द्वारा उसे साकार रूप देता है।

संगीत और काव्य दोनो ही मानव जीवन की व्याख्या हैं। अन्तर केवल अभिव्यक्ति और माध्यम मात्र का ही है। दोनों की ही अभिव्यक्तियां अखण्ड हैं। संगीत एक श्रव्यात्मक कला है। तथा काव्य की काया शब्द और अर्थ से निर्मित है। शब्द के बिना काव्य का जन्म ही संभव नहीं। संगीत का प्राण नाद एवं स्वर है तो काव्य का शब्द। काव्य में संगीत–तत्व आवश्यक है उसी तरह कंठ संगीत में भी काव्य–तत्व सहायक है। अन्तर मात्र अभिव्यक्ति के माध्यम मात्र का ही है।

साहित्य एवं संगीत का सम्बन्ध प्राचीन काल से ही चला आ रहा है। संगीत के प्रकाण्ड विद्वानों का मानना है कि आदिम संगीतज्ञ नटराज के ताल–लय के समन्वित ताण्डव से काव्य व संगीत के तत्वों का एक साथ ही सूत्रपात हुआ। प्राचीन ग्रंथों में ऐसी धारणा पाई जाती है कि ''देशी पद्धति में संगीत का आदिम राग भैरव, भगवान शिव के मुख से उत्पन्न हुआ और साहित्य की वर्णमाला महादेव के पद्चाप से उद्भूत हुई।''

–नि0 की सं0 सा0, पृ0 सं0 147

यही कारण है कि प्राचीन काल में कवि स्वयं गायक भी होते थे।

संगीत तत्व की यही मूल प्रतिष्ठा मध्यकाल के सन्त कवियों में भी दिखाई देती है। इन सन्त कवियों ने अपने पदों में, भजन व रचनाओं में गायन को ही दृष्टि में रखा है।

काव्य के अन्तर्गत कविता जब तक गेय रूप में प्रस्तुत नहीं की जाती तब तक वह अपना पूर्ण प्रभाव नहीं डाल पाती। परन्तु संगीत में इतनी अधिक क्षमता है कि उसमें यदि शब्दों का प्रयोग न भी किया जाए, तो भी मधुर ध्वनि या नादमय संगीत या राग को व्यक्त करने पर श्रोताओं को इसका ज्ञान न होने पर भी आनन्दानुभूति कराने में यह कला सक्षम है। संगीत में शाब्दि प्रयोग की अपनी एक सीमा है। शास्त्रीय संगीत में आलाप में 'नोमतोम', रागदारी बन्दिशों में शब्द–योजना तथा उपशास्त्रीय संगीत में दादरा, कजरी, चैती, ग़ज़ल, ठुमरी इत्यादि में शब्द–प्रयोग किए जाते हैं। अर्थात् शब्द–प्रयोग का सीमित स्थान है। भावों के द्वारा ही विभिन्न रूपों को दर्शाया जाता है।

संगीत भी जब तक कवित्व से या शब्द से युक्त नहीं होता, तब तक पूर्णतया प्रवाभोत्वादक नहीं होता। सांगीतिक नाद की रंजकता के साथ ही संगीत की उत्कृष्टता प्रतिपादित होती है, और यह शब्द प्रयोग से ही सम्भव है। यदि संगीत में से काव्य–तत्व (शब्द–प्रयोग) निकाल दिए जाएं तो संगीत मात्र आलाप गायन के अतिरिक्त और कुछ नहीं रहेगा। अतः काव्य एवं संगीत के अलग–2 क्षेत्र होते हुए भी दोनों एक दूसरे के पूरक हैं।

संगीत का आधार नाद व काव्य का भाषा है। जो नाद का ही विकसित रूप है। कवि सार्थक शब्दों की सहायता से तथा उपयुक्त वातावरण का सहारा लेकर ही उपयुक्त व अभीष्ट रूप व रस की सृष्टि करता है। काव्य में आलम्बन, उद्दीपन इत्यादि के द्वारा अभिव्यक्ति में सुविधा रहती हैं, किन्तु संगीतज्ञ के लिए न तो अर्थपूर्ण शब्दों का सहारा ही सुलभ है और न ही वातावरण की सृष्टि का अवसर। उसे तो केवल स्वरों की ध्वनि से ही वातावरण, रस और अर्थ की भी अवतारणा करनी पड़ती है। स्वरों तथा ध्वनि की उच्चारण प्रक्रिया एवं स्वरों के कम्पन से ही संगीतज्ञ कोमलतम भावनाओं के सूक्ष्मतम भेद प्रदर्शित

करता है।

पाश्चात्य विद्वानों ने भी कविता का उल्लेख करते समय उसकी संगीतात्मकता का उल्लेख करना आवश्यक समझा। संगीत और काव्य का सम्बन्ध अभिन्न है। एक के बिना दूसरे का सृजन तो हो सकता है, परन्तु साहित्य माधुरी व संगीत लहरी के मिलन से जिस दिव्यता का संचार होता है, उसे केवल सहृदय ही समझ सकते हैं। इसीलिए दोनों का योग कम्पन का संयोग होता है। इसी से विश्व का प्राचीनतम साहित्य कविता व पद में लिखा मिलता है। 'कालोई' ने –'कविता को संगीतमय विचार कहा है।' पाश्चात्य विद्वानों ने भाषा सौन्दर्य, निरूपण कल्पना, छन्द आदि के साथ संगीत को भी कला के लक्षणों में महत्वपूर्ण स्थान दिया है। कविता में किसी न किसी रूप में संगीत–तत्व विद्यमान रहता है। ध्वनि व लय का उपयोग कविता व संगीत में समान रूप से होता है। संगीत जिन भावनाओं की सूक्ष्म व निराकार अभिव्यक्ति करता है, उसी को कविता साकार रूप देती है।

'तुलसी' और 'सूर' के पद अपनी मार्मिक अभिव्यक्ति और कलात्मक शब्द–योजना के कारण ही प्रसिद्ध हैं। ऐसे में जो काव्य द्वारा आनन्द की अनुभूति होती है, उसमें कविता के साथ संगीत का भी हाथ है। क्योंकि कविता जब तक गाई नहीं जाती, तब तक वह अपना प्रभाव नहीं डालती। ताल और स्वर के सांचे में ढलकर कविता के शब्द जब आगे बढ़ने लगते हैं, तब एक–एक स्वर एक–एक शब्द को मार्मिकता प्रदान करने लगते हैं।

जिस प्रकार संगीत एक ऐसी रागात्मक अनुभूति जिसमें चित्त रंजन की क्षमता होती है। उसी प्रकार कविता भी जीवन की रागात्मक अनुभूति एवं अन्तर्दर्शन की ऐसी कलात्मक अभिव्यक्ति है, जो केवल जन मानस के साथ हमारे रागात्मक सम्बन्ध को सुरक्षित ही नहीं रखती बल्कि अपने संवेगात्मक कोमल स्पर्श से हृदय वीणा को झंकृत करने की अपूर्व क्षमता रखती है।

काव्य की अभिव्यक्ति का माध्यम शब्द है और संगीत का नाद और स्वर दोनों। नाद वह ध्वनि है जो शब्दार्थ से रहित होकर भी सहजता, कोमलता, सुकुमारता, मानव

हृदय के विभिन्न भावों की सबल किंतु तरल सूक्ष्म अभिव्यक्ति में समर्थ हैं। इसे ही मूर्त आधार कहते हैं। अर्थात संगीत का मूर्त आधार सूक्ष्म है। इसी से संगीतात्मक अनुभूति काव्यात्मक अनुभूति से सूक्ष्मतर होती है।

परन्तु काव्य का क्षेत्र भी बहुत विस्तृत है। संगीत केवल श्रंगार, करूण, वीर व शान्त रस की अभिव्यंजना करता है, पर काव्य में सभी भाव रसों की सफल अभिवयंजना होती है। काव्य का मानव पर वह भी केवल सहृदय पर प्रभाव पड़ता है परन्तु संगीत का प्रभाव जड़–चेतन पर भी पड़ता है। संगीत के बिना काव्य और काव्य के बिना संगीत अधूरा है।

साहित्य में जिस प्रकार स्वर और व्यंजन के मिश्रण से निश्चित आकृति वाला ध्वन्यात्मक वर्ण मिलकर अर्थ प्रकाशक पद की सृष्टि करता है, उसी प्रकार संगीत के स, रे, ग, म, प, ध और नि इन सात वर्णो के तारतम्य अथवा पारस्पर्य से राग–विशेष के पद की सृष्टि होती है।

संगीत एवं काव्य दोनों में बिना प्रयास के सहज भाव की सत्ता ही सब कुछ है, जो कि ध्वनि मात्र में ही है। यद्यपि काव्य एवं संगीत दोनों के ही अलग–अलग आयाम हैं, विस्तार की अपनी–2 दिशाएं है, परन्तु अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि दोनों ही एक सीमा रेखा पर आकर क्षितिज के समान एक दूसरे में मिल जाती हैं।

संगीत एवं काव्य के पारस्परिक संबंधों पर कुछ आशीर्वाद स्वरूप वाक्य–विन्यास प्राप्त हुए हैं उनकी अभिव्यक्ति आवश्यक है, ''प्राचीन युग में जब आनन्द व विषाद की अभिव्यक्ति मचल रही थी, तब कविता अन्जाने ही आंखों से उमड़कर बही होगी। आंखों से उमड़कर चुपचाप बह चलने वाली कविता का आनन्द से अद्‌भुत भाव के साथ गीत की वेदी के सम्मुख गठबन्धन हो गया। संगीत के स्वरों के विस्तार के लिए आधार प्राप्त हुआ व कविता के शब्द संगीत के नादात्मक सौन्दर्य से अपना श्रंगार कर झूम उठे।''

–'डा0 उमा मिश्र'

अभिव्यक्ति का संगीतात्मक रूप स्वाभाविक है। स्वरों का अन्तराल पशु–पक्षी के सुखात्मक एवं दुखात्मक अनुभूति में विद्यमान रहता है। "संगीत की विशेषता इस बात में है कि उसका प्रभाव व्यापक है। वह अनादिकाल से मनुष्य पर पड़ता चला आ रहा है। जंगली से लेकर सभ्य मनुष्य तक इसके प्रभाव से वशीभूत हो सकते हैं। मनुष्य को जाने दो पशु–पक्षी तक उसका अनुशासन मानते हैं।"

–'डा0 श्याम सुन्दर दास'

"स्वरों के अन्तराल युक्त ध्वनि से संगीत उपजा। वाणी में जैसे–2 शक्ति आती गई भाषा भी संगीत से जुड़ती गई। भाषा कुछ पनपी, इधर नादात्मक अभिव्यक्ति का भी विकास हुआ। अतः संगीत और कविता के अंकुर फूटने लगे।"

–'जॉन्सन'

द्वितीय अध्याय

मध्यकालीन–संगीत एवं तुलसी

मध्यकालीन शासन भारत वर्ष में सन 1200 से सन् 1700 तक चला। इस अवधि में खिलजी शासन, लोदी शासन और मुगल काल को सत्तासीन होने का अवसर मिला। शासन–प्रशासन के अतिरिक्त कला–संगीत के क्षेत्र में भी इस काल में उत्तरोत्तर प्रगति हुई। मध्यकाल को संगीत का स्वर्ण युग भी इसी कारण से कहा गया कि इस कालावधि में भारतीय संगीत अपनी चरमावस्था में था। अमीर खुसरो और चन्दवरदाई जैसे साधनाप्रिय कलाकारों के कारण संगीत प्रगति कर रहा था। सितार का आविष्कार और कव्वाली गायन शैली का आविष्कार भी अमीर खुसरो की देन है। (उमेश जोशी –भारतीय संगीत का इतिहास, पृ0 273) मध्यकालीन शासन में किसी एक राज्य या प्रान्त में नहीं अपितु भारतवर्ष के लगभग समस्त प्रान्तों में संगीत के क्षेत्र में उपलब्धियों, प्रगति का दौर चल रहा था। पंजाब, उत्तर–प्रदेश, बंगाल, आसाम, उड़ीसा, बिहार, उज्जैन, राजस्थान, गुजरात, सिन्ध , कश्मीर और लद्दाख दक्षिण क्षेत्रों में संगीत के क्षेत्र में, नृत्य गायन में नवीन प्रयोग हो रहे थे। पंजाब में जयदेव की 'गीत गोविन्द' की धूम मची थी तो उत्तर प्रदेश में 'आल्हा–ऊदल गायन' मध्यकालीन युग की अपूर्व देन है। (उमेश जोशी– भारतीय संगीत का इतिहास, पृ0 277) इस युग में बंगाली नृत्यों 'बुलग्वा' और 'हीवा' का जन्म हुआ तो उड़ीसा में संगीतात्मकता लिए कोंणार्क सूर्य मंदिर का निर्माण हुआ। उज्जैन की संगीतज्ञा रूपमती की संगीत कला की ख्याति इस युग में इतनी दूर–दूर की कि कहा जाता है कि प्रसिद्ध गान–विशारद तानसेन भी उनसे सीखने गये थे। इसी काल में गुजरात में गरवा की उत्पत्ति हुई, जिसने कालांतर में संगीत क्षेत्र में गुजरात को विशेष पहचान प्रदान की। अन्य क्षेत्रों में संगीतमय उपलब्धियों के अतिरिक्त दक्षिण का क्षेत्र संगीत के क्षेत्र में विशेष रूप से आलोकित हो रहा था। मधुरवाणी दक्षिण की विख्यात संगीतज्ञा एवं कवयित्री थी। वह आशु कवि भी थी। इनके बारे में प्रसिद्ध है कि वे आधी घड़ी में 100 श्लोक बना सकती थीं। अर्थात एक मिनट में 8 श्लोक से भी

अधिक। *(उमेश जोशी–भारतीय संगीत का इतिहास, पृ0 295)* कहा जाता है कि वास्तव में यह काल दक्षिण भारत का विशेष गौरवास्पद काल रहा, इस काल को हम दक्षिण का संगीतमय काल कह सकते है।

महाकवि तुलसीदास भी इसी युग में अपनी साहित्य सर्जना, काव्य रचना करते आये हैं। शोधार्थी को इस स्वर्णकाल में जन्मे तुलसीदास के गीतिकाव्यों में संगीत तत्वों की खोज की जिज्ञासा ने तुलसीदास के भीतर छिपे संगीतज्ञ को पहचानने का कार्य किया। महाकवि तुलसीदास का समय भी अनेक विद्वानों की राय के बाद सन् 1533 से सन् 1623 का स्वीकारा गया है। तुलसीदास की जीवन कालावधि मुगलकाल के दौरान की रही है जो भारतीय इतिहास में सन् 1525 से सन् 1707 के मध्य में स्थापित रहा। इस कालावधि में भी हुमायूं, अकबर, जहॉगीर, शाहजहां जैसे कलाप्रेमी शासक हुए जिन्होंने कला के संरक्षण हेतु लगातार प्रयास किये। शोधार्थी द्वारा चयनित कवि तुलसीदास का कार्यक्षेत्र मध्यकाल के मुगल साम्राज्य में रहा है। अपने जीवन काल में तुलसीदास ने हुमायूं, अकबर और जहाँगीर का शासन देखा, इस दौरान संगीत की स्थिति ओर संगीतज्ञों का प्रभाव भी देखा। संगीतज्ञों के साथ से तुलसी को भी संगीत को जानने समझने का अवसर प्राप्त हुआ। इस दृष्टि से मुगल कालीन संगीत संगीतज्ञों की स्थिति का अध्ययन शोध विषय के लिए अधिक उपयुक्त सिद्ध होता है। इसी कारण से शोधार्थी ने मध्यकालीन संगीत की दशा–स्थिति को जानने समझने के लिए, तुलसीदास पर उसके प्रभाव की स्थिति को जानने के लिए मुगलकालीन संगीत की स्थिति का अध्ययन किया। इसके अनुसार ही इस काल खण्ड के संगीत, संगीतज्ञों की स्थिति तथा उसके प्रभाव को प्रस्तुत अध्याय में रेखांकित करने का प्रयास किया है।

संगीत की स्थिति

मध्य काल में मुगल साम्राज्य का प्रारम्भ सन 1525 से हुआ है। और महाकवि तुलसीदास की जन्मतिथि 1533 स्वीकारी गई है। मुगल साम्राज्य का अंत 1707 में हुआ और तुलसी दास के देहावसान की तिथि सन् 1623 स्वीकारी गई है विषय की दृष्टि से मुगल

काल खण्ड में संगीत की स्थिति का अध्ययन करना अधिक समीचीन लगता है। अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से मुगल काल में संगीत की स्थिति को निम्न चरणों में विभक्त किया गया है–

क–मुगल काल का प्रथम चरण (1525–1556)

ख–मुगल काल का द्वितीय चरण (1556–1707)

इन दोनों काल खण्डों में मुगल साम्राज्य की स्थितियां भी अलग–अलग रहीं जिनका प्रभाव तत्कालीन संगीत पर भी पड़ा। प्रथम चरण में मुगल साम्राज्य की स्थापना को डाकू और हुमायूं का संघर्ष जारी रहा। संघर्ष के इस दौरे में भी वे संगीत –कला के विकास हेतु प्रयासरत रहे। दूसरा चरण मुगल साम्राज्य के चरम तक जाकर अवसान तक आने का रहा। इसमें कला प्रेमी शासक भी हुए तो कला विरोधी भी। महाकवि तुलसीदास के जीवन काल में दोनों चरण गुजरे, जिसमें उन्होनें संगीत की प्रत्येक स्थिति को करीब से देखा और आत्मसात भी किया। उनकी काव्य रचनाओं की संगीतात्कता इस तथ्य को सिद्ध भी करती है।

अ–मुगल काल का प्रथम चरण–

मुगल साम्राज्य की स्थापना के समय तक संगीत का विकास हो चुका था। समस्त मुस्लिम राजाओं ने संगीत कलाकारों को प्रोत्साहित कर उन्हें राज्याश्रय दे रखा था। मुगल काल की स्थापना बाबर ने इब्राहीम लोदी को हरा कर की। उसके बारे में प्रमाण मिलते हैं कि वह स्वयं कविता लिखता था। और गाता भी था। वह अच्छे अच्छे संगीताकारों को अपने दरबार में रखता था। उसके दरबार में शाह कुली और गुलामशदी कलाकार थे, जिन्होनें नये नये रागों और धुनों की रचना की। बाबर को अपने युग का संगीत महारथी भी कहा गया। (*स्वतंत्र शर्मा–भारतीय संगीत–एक ऐतिहासिक विश्लेषण, पृ0 75*) इसी को पुष्ट करते हुए सुप्रसिद्ध इतिहासकार गमाल आस्वानी ने अपनी लोकप्रिय पुस्तक 'भारत के प्राचीन संगीत की खोज' में लिखा है– "बाबर जहॉ एक ओर वीर योद्धा था, वहाँ उसके साथ ही साथ वह संगीतज्ञ भी था। वह गाने में प्रवीण था और गायकों का सम्मान करता था। . ...बाबर के काल में नृत्य की भी उन्नति हुई; परन्तु बाबर को भारतीय नृत्य पसंद नहीं थे,

वे उसकी समझ में नहीं आते थे और इतना उसे अवकाश नहीं मिला कि वह भारतीय नृत्यों का निकट से अध्ययन करता। वैसे वह अरेबियन, तुर्की नृत्यों को बहुत पसंद करता था।" *(उमेश जोशी–भारतीय संगीत का इतिहास, पृ0 194)*

इसी काल खण्ड में ख्याल गायकी और कब्वाली का भी प्रचलन हुआ। 'जौनपुर के सुल्तान हुसैन शर्की ने ख्याल गायकी तथा अनेक नवीन रागों की रचना की जैसे–जौनपुरी, तोड़ी, सिन्धु, भैरवी, रसूल तोड़ी 12 प्रकार के श्याम, सिन्दूरी इत्यादि। *(स्वतंत्र शर्मा–भारतीय संगीत– एक ऐतिहासिक विश्लेषण, पृ0 76)* मुगल काल में चहुं ओर संगीत का प्रचलन और विकास का दौर चल रहा था। उत्तरी भारत में भक्ति आन्दोलन अपनी चरमावस्था पर था तो कर्नाटकी संगीत का प्रसिद्ध ग्रंथ 'स्वर मेल कलानिधि' भी दक्षिण के श्री रामामात्य द्वारा लिखा गया। भक्ति आन्दोलन के विकास में संगीत का प्रमुख योगदान रहा है। चैतन्य महाप्रभु ने भारतीय संगीत को महान शक्ति प्रदान की। उन्होंने अपनी भजन गायकी से संगीत का दायरा विस्तृत किया। विश्व इतिहासकार डामो अपनी पुस्तक **'Music and Men'** के पृष्ठ 35 पर लिखते हैं– "मुगल काल के प्रथम चरण में बल्कि उससे पहले से ही भारतीय संगीत विकसित हो रहा था। इस काल में हमें भारतीय संगीत के दोनों रूप साथ–साथ विकसित होते हुए मिलते हैं। एक ओर चैतन्य महाप्रभु अपने सांगीतिक कीर्तनों द्वारा भारत की सामान्य जनता को संगीत की ओर आकर्षित कर रहे थे, और दूसरी ओर ख्याल और कब्वालियों के द्वारा एक नवीन प्रकार का संगीत मुखरित हो रहा था। ....इस प्रकार संगीत के अन्दर, बीच के समय में जो गिरावट तथा लड़खड़ाहट आ गई थी वह इस काल में थमकर सुव्यवस्थित होने लगी। *(उमेश जोशी–भारतीय संगीत का इतिहास, पृ0 197)*

उत्तर भारत में चैतन्य महाप्रभु ने संगीत का विकास किया वहीं कर्नाटकी संगीत अपनी आभा को प्रस्फुटित कर रहा था। कव्वाली और ख्याल का जोर होने के बाद भी दक्षिण में भारतीय संगीत की प्राचीन परिपाटी कार्य करती रही। कर्नाटकी संगीत का

प्रसिद्ध ग्रन्थ सन् 1550 में 'स्वर मेल–कलानिधि' रामामात्य द्वारा लिखा गया। इस ग्रंथ ने दक्षिणी संगीत को विकास पथ पर आगे बढ़ाया। इस समय दक्षिण में अनेक भक्त हुए जिन्होंने गायन शैली को ईश्वरी उपासना का माध्यम बनाकर दक्षिणी संगीत का पर्याप्त विकास दिया।

बाबर काल में संगीत का विकास विविध रूपों में हुआ। इसी के साथ हुमायूं के सत्तासीन होने के बाद संगीत की दार्शनिक पृष्ठभूमि भी सुदृढ़ हुई। हुमायूं प्रगतिशील विचारक कहा गया क्योंकि उसके चरित्र पर सूफी विचारकों का पर्याप्त प्रभाव पड़ा। अनेक सूफी सन्तों की भांति वह भी गान को ईश्वरीय प्रार्थना का एक आवश्यक अंग समझता था। वह स्वयं भी संगीतज्ञों का आदर करता था। दार्शनिकतापूर्ण, आत्मा और परमात्मा के दिव्य रूप पर प्रकाश आरोपित करने वाले गीतों को सुनना अधिक पसंद करता था। प्रसिद्ध विद्वान अलकरोजी लिखते हैं– ''हुमायूँ के समय में सूफियों का बड़ा जोर रहा, यह मानव जीवन की सुन्दर बातें जनता के सामने प्रस्तुत करते थे। इनका विचारों के प्रस्तुतीकरण का ढंग बड़ा आकर्षणपूर्ण और बड़ा ही संगीतमय होता था। वह जो बात, जो सिद्धान्त कहते थे वह गानों की मीठी धुनों में उड़कर मानव हृदय पर नगीने की तरह जड़ जाती थी।'' *(उमेश जोशी– भारतीय संगीत का इतिहास, पृ0 198)* सूफी सन्तों के प्रभाव में और हुमायूं के संगीतज्ञों के प्रति आदर, भाव होने के कारण संगीत का दार्शनिक पक्ष भी मजबूत हुआ।

ब–मुगल काल का द्वितीय चरण–

अकबर को शासन बहुत छोटी उम्र में ही संभालना पड़ा। अकबर के शासन से ही मुगल काल का द्वितीय चरण प्रारम्भ हुआ। अकबर की उदारता और समाज सुधार की भावना से हिन्दुस्तानी संगीत को पर्याप्त विकास मिला। संगीत–कला को अकबर काल मे विशेष सम्मान प्राप्त हुआ। कलाकारों, संगीतज्ञों को दरबार में उचित स्थान भी मिलता था। उसके दरबार में नवरत्न भी थे जिनमें तानसेन सर्वश्रेष्ठ थे। 'अकबर दरबार में अन्य कलाकारों में रामदास, शुबहन खाँ, मियॉचॉद, वीरमण्डल खाँ, सरोद खाँ, मियाँ लाल,

चाँद खाँ, वीणा वादक, शहाब खाँ इत्यादि थे। अनेक मुस्लिम कलाकार संगीत में भी निपुण थे। उनके दरबार में दक्षिण के संगीत ग्रन्थकार भी थे, पुण्डरीक विट्ठल इसी वर्ग के पण्डित थे। *(स्वतंत्र शर्मा –भारतीय संगीत–एक ऐतिहासिक विश्लेषण, पृ0 83)* अकबर के काल को संगीत का स्वर्णयुग भी कहा जाता है। उसके दरबार में 36 संगीतज्ञ थे। इसी समय दरबार में मेल पद्धति की व्याख्या करने वाला एक ग्रंथ 'रागसागर' लिखा गया, इस ग्रन्थ में राग–रागनियों के ध्यान भी दिए हुए हैं। अकबर के शासन काल में संगीत को प्रगति की राह पर ले जा रहे थे। इस काल में राजा मानसिंह ने परम्परागत प्रबन्ध गान शैली के आधार पर ही एक नवीन शैली को विकसित किया। यही नवीन शैली ही आगे चलकर ध्रुपद कहलायी। इस शैली को मुगल बादशाहों ने मान्यता दी, इसी कारण से इस शैली को सामाजिक प्रतिष्ठा भी प्राप्त हुई। इस्लाम शाह के दो प्रधान गायकों रामदास और महापतर ने भी अकबर की नौकरी की। इस काल खण्ड में अनेक कलाकारों ने अपनी प्रतिभा के द्वारा संगीत का विकास किया। *कैप्टन विलर्ड अपने **Treaties of Hindustan** के पृष्ठ 107 पर लिखते हैं–* "नायकों में सबसे प्रसिद्ध दक्खिन निवासी गोपाल हुए, जिन्होंने अलाउद्दीन के शासन काल में समृद्धि पाई। दिल्ली के अमीर खुसरो, जौनपुर के सुल्तान हुसैन शर्की, ध्रुपद के प्रवर्तक ग्वालियर के राजा मानसिंह, बैजू और मोनू पाँडवी, बक्सू, और लोहंग उनके सम–सामयिक थे। ग्वालियर के राजा मानसिंह के समय में जुरजू, भगवास, ढोंढी और डालू का उल्लेख भी मिलता है।" *(उमेश जोशी–भारतीय संगीत का इतिहास, पृ0 201)*

मुगलकाल के द्वितीय चरण में राजदरबार कलाकारों को प्रश्रय देते थे। बैजू –बाबरा, कला, तानसेन, आदि इसका उदाहरण हैं। बैजू बाबरा प्रसिद्ध संगीतज्ञ माना गया पर उसके बारे में ऐतिहासिक तथ्य नहीं मिलते हैं। उससे सम्बन्धित घटनाएं किंवदन्तियों पर आधारित हैं। एक किंवदन्ती के आधार पर बैजू और तानसेन दोनों ही स्वामी हरिदास के शिष्य थे। तानसेन का अभिमान दूर करने को बैजू ने उनसे प्रतियोगिता की और तानसेन को परास्त किया। कहा जाता है कि राजा मानसिंह ने बैजू की मदद से ही ध्रुपद शैली का

परिष्कार और प्रचार किया। संगीत के महानग्रन्थ 'रागकल्पद्रुप' में तानसेन और बैजू के अनेक ध्रुपद संकलित है। बैजू बावरा के सम्बन्ध में 'फ्रांसीसी गासदि तानी ने लिखा है –''बैजू बावरा उत्तर भारत का एक प्रसिद्ध संगीतज्ञ है, जो छह या सात सौ पूर्व विद्यमान थे। उनका संगीतज्ञों और गवैयों में मान है और उन्होंने लोकप्रिय गीत लिखे हैं।''

(उमेश जोशी–भारतीय संगीत का इतिहास, पृ0 204)

इस काल खण्ड में भारतीय संगीत को विशेष स्थान दिलवाने में तानसेन का विशिष्ट योगदान है। तानसेन स्वामी हरिदास के शिष्य थे। तानसेन के अतिरिक्त 'स्वामी जी के शिष्यों के नाम 'नाद विनोद' में इस प्रकार पाए जाते हैं– 1–बैजू, 2– गोपाललाल, 3–मदनलाल, 4– रामदास, 5–दिवाकर पंडित, 6–सोमनाथ पंडित, 7–तन्ना मिश्र 8–राजासौन सेन। *(उमेश जोशी–भारतीय संस्कृति का इतिहास, पृ0 211)* इन्ही शिष्यों के द्वारा असंख्य नये ध्रुपद –धमार, त्रिवट तराने, राग मालाएँ, चतुरंग तथा नवीन रागों की रचनाएं कीं। तानसेन के तीन ग्रंथ हैं– 1–संगीत सार, 2–रागमाला, 3–गणेश स्रोत, तानसेन की गायन कला की प्रशंसा वर्तमान में भी समूचे देश में विख्यात है। उनके प्रचलित राग दरबारी कान्हड़ा, मियाँ की मल्हार, मेघ आदि विशेषतः प्रसिद्ध हैं। तानसेन के दीप राग की चर्चा तो सर्वत्र होती है। *'सुप्रसिद्ध विद्वान आरसन ली **A short acoount Indian of Music** ने नामक ग्रन्थ में लिखा है–* ''मुगल दरबार का तानसेन बड़ा चमत्कारी गायक था, उसने 'दीपक राग' गाकर अकबर बादशाह को आश्चर्य सागर में डुबो दिया था। इस राग के गाने पर अग्नि प्रज्जवलित हो उठती थी। इसी प्रकार वीणा वादन से मृगों को बुला लिया करता था। उसकी चमत्कारिक प्रतिभा पर हम सन्देह नहीं करते, क्योंकि भारतीय संगीत में वह अपूर्व शक्ति है कि जिसके सही प्रदर्शन पर यह सब चमत्कारिक कार्य प्रस्तुत किए जा सकते हैं। इसी प्रकार का चमत्कारिक प्रभाव हमें ग्रीक के संगीत में मिलता है लेकिन भारतीय संगीत में ग्रीक संगीत से पूर्व ही यह चमत्कारिक प्रभाव आविर्भूत हो चुका था।'' *(उमेश जोशी, भारतीय संगीत पृ0 213)* बैजू बावरा की यही रागात्मक शक्ति उनकी संगीत क्षमता और

भारतीय संगीत की तत्कालीन महत्ता को स्पष्ट करती है।

अकबर कला प्रेमी था, इस बारे में सभी इतिहासकार और विद्वान सहमत है। अकबर की परम्परा को उसके उत्तराधिकारियों ने भी समृद्ध किया और इस काल के संगीत को पुष्ट किया। जहाँगीर स्वयं संगीत का जानकार था और सितार सुनने का शौकीन था। नूरजहां से उसके विवाह के बाद उसके संगीत प्रेम में और बढ़ोत्तरी हुई क्योंकि नूरजहां स्वयं कविता लिखती और गाती थी। नूरजहां और जहांगीर के संगीत प्रेम के कारण जहांगीर दरबार में संगीत के महान आचार्य हुए। विलास खाँ, छत्तर खाँ, खुर्रम दाद,मक्खू, परवेज दाद और हमजान प्रसिद्ध गवैये थे। इसी काल खण्ड में भारतीय संगीत पद्धति पर 1625 ई0 में संगीत दर्पण' नामक ग्रन्थ का निर्माण पं0दामोदर ने किया था। जहांगीर के काल में भारतीय संगीत को भी समृद्ध होने का अवसर मिला, वह स्वयं हिन्दी गानों को पसंद करता और गजलों में भी भारतीयता, मानवता का ध्यान रखता था।

जहांगीर के शासन काल में ही तुलसीदास का देहावसान हुआ। इस कालखण्ड में अनेक संगीत ग्रन्थों का अरबी,–फारसी में अनुवाद भी कराया गया। शाहजहां ने भी भारतीय संगीत को विस्तार का पर्याप्त अवसर दिया। वह स्वयं श्रेष्ठ गायक माना जाता है। गायन के साथ–साथ वह सितार बजाने में भी प्रवीण था। ध्रुपद शैली का इस समय में बहुत प्रचार हुआ। संगीत राजदरबारों और उच्चवर्ग से निकल कर निम्न और मध्यम वर्ग तक पहुंच चुका था। इस काल में ऐसे भी संगीतज्ञ हुए जो संगीत के आचार्य माने गये परन्तु वे अशिक्षित थे। मुगल काल के द्वितीय चरण में हिन्दी में कई कवि ऐसे भी हुए जिन्होंने गीतिकाव्य को काव्य और संगीत से सँवारा। तुलसीदास की काव्य कृतियों के अतिरिक्त गीति काव्य परम्परा को पुष्ट करने वालों में कवि सुन्दर का ब्रजभाषा में लिखा 'सुन्दर श्रृंगार' पूर्णतः संगीतमय है। केशव, बिहारी ने भी अपनी प्रतिभा से संगीत को उत्कृष्ट सिद्ध किया। बिना राज्याश्रय के भी केशव की कविप्रिया, ; रसिक–प्रिया' ने भरपूर प्रसिद्धि पाई थी। फारसी के दरबारी भाषा होने के बाद भी हिन्दी का विकास इन्हीं कवि' संगीतज्ञों द्वारा होता रहा।

उत्तर भारत में संगीत के क्षेत्र में विकास के साथ–2 इस काल खण्ड में दक्षिण में भी संगीत को पर्याप्त विकास के अवसर प्राप्त हुए। वहाँ भी भक्ति का दौर चला और कीर्तन द्वारा संगीत का प्रचार हो रहा था। 'वीणा' का उपयोग आम जनता भी कर रही थी। उत्तर –दक्षिण की सशक्त संगीत परम्पराओं को देख कर प्रसिद्ध इतिहासकार डॉ0 इप्सन ने अपनी लोकप्रिय पुस्तक ***'Historical Research of Indian Music'*** *में पृ0 112 पर लिखा है* ''जब हम इस काल के भारतीय संगीत पर दृष्टि डालते हैं तो दो स्पष्ट धाराएं हमारे सामने आ जाती हैं। पहली धारा वह जो कि उत्तरी भारत में मुस्लिम संस्कृति की पृष्ठ पर बह रही थी और दूसरी धारा दक्षिण प्रान्त में अपने प्राचीन रूप को लिए हुए प्रवाहित हो रही थी। ....वास्तव में दक्षिण भारतीय संगीत अपनी उच्च परम्परा के गौरव को बड़ी शान से विकसित कर रहा था। दक्षिण भारत के लोग अपनी संस्कृति को बड़ा संभाल कर रख रहे थे, उनका चरित्र बड़ा उच्च कोटि का था। उनके अन्दर धार्मिक रूप गहरा था, इसलिए इस काल के दक्षिणी संगीत पर गहरी धार्मिकता चढ़ी हुई थी।'' *(उमेश जोशी, भारतीय संगीत पृ0 209)*

संगीतज्ञों की महान परम्परा, कलाकारों के राज्याश्रय ने संगीत को ऊँचाई प्रदान की, वहीं भक्त कवियों ने भी इस काल के संगीत को अपने योगदान से अमर कर दिया। इस काल में भक्ति आन्दोलन के चरमोत्कर्ष से निर्गुण संतभक्ति, प्रेममार्गी, सूफी–भक्ति, कृष्ण भक्ति तथा राम भक्ति की प्रेरणा भक्त कवियों को मिली। इस काल में भक्त कवियों ने अपनी वाणी और संगीत के द्वारा संगीत का स्वरूप सँवारा और भक्ति का वातावरण संगीतमय किया। इस काल में संत संगीतज्ञ स्वामी हरिदास की श्रेष्ठता तो सर्वविदित है। तानसेन और बैजू इन्हीं के शिष्य थे। इसके अतिरिक्त भक्ति आन्दोलन को संगीतमय बनाने में सूरदास, मीरा, कबीर, तुलसी, पं0 पुण्डरीक बिट्ठल आदि का विशेष योगदान रहा है।

तत्कालीन संगीतज्ञों का प्रभाव

मध्यकाल में संगीत अपनी स्वर्णिम अवस्था में था। संगीत का भक्तिपूर्ण स्वरूप भी सामने आया। इस युग में भक्त कवियों ने वाणी के साथ संगीत को निखारा और आध्यात्मिक एवं धार्मिक पृष्ठभूमि को सशक्त किया। इस समय शास्त्रीय संगीत का स्वरूप सँवरा तो वहीं भक्त कवियों ने अपने काव्य या पदों से भक्तिमय वातावरण का निर्माण किया। इस काल खण्ड में तुलसीदास के अतिरिक्त सूरदास, मीरा, कबीर, परमानन्ददास, कुंभनदास आदि के नाम आते हैं। तुलसीदास ने अपने काव्य को संगीतात्मकता से भी सजाया है, तुलसीदास महाकवि स्वीकारे गये हैं वहीं उनके काव्य में संगीत की झलक भी दिखाई पड़ती है तो सवाल उठता है कि क्या तुलसी के ऊपर किसी समकालीन संगीतज्ञ का प्रभाव था? या तुलसी के काव्य में संगीतात्मकता की सशक्त उपस्थिति एक संयोग मात्र है? यह जानने के लिए तुलसीदास के समाकालीन संगीतज्ञों के प्रभाव को समझने का प्रयास शोधार्थी द्वारा किया गया।

अकबर काल में भक्ति कवियों में सूरदास श्रेष्ठ संगीतज्ञ एवं कवि हुए हैं। सूरदास ने संगीत के तीनों पक्षों –गायन वादन और नर्तन को अपनाया और अपने युग में प्रचलित प्रायः सभी राग–रागिनियों को स्थान दिया। सूरदास के समय ध्रुपद और ख्याल का समान रूप से प्रचार था। सूरदास इन शैलियों से परिचित जान पड़ते हैं क्योंकि इनका उपयोग उन्होंने अपने काव्य में किया है। ख्याल गायन की दृष्टि से उनके पदों को सबसे अच्छा माना जाता है। इसके अतिरिक्त सूरदास ने अपने पदों में एक ताल, झपताल, चचरी ताल, ध्रुव ताल, धमार ताल प्रमुखता से प्रयोग किये हैं।' *(स्वतंत्र शर्मा, भारतीय संगीत एक एतिहासिक विश्लेषण , पृ0 87)* तालों के अलावा सूरदास द्वारा राग–रागनियों का प्रयोग भी किया गया है। सूरदास के प्रसिद्ध ग्रंथ सूर–सागर में 87 राग–रागनियों का प्रयोग मिलता है, जैसे आसावरी, सूहा, बिलावल, सारंग, कान्हरा, धनाश्री, मारू, रामकली, केदार, मल्हार आदि। इन रागों का प्रयोग सूरदास ने केवल काव्य रचना में ही नहीं किया है अपितु

वे इन रागों में गाते भी थे। सूरदास के काव्य संसार में रागों के प्रयोग को देख कर लगता है। कि सूरदास जन्म से ही संगीत के सुर–ताल के मर्मज्ञ थे। उन्होंने अपेन काव्य में छहों रागों, छत्तीस रागनी, इक इक नीको गावरी, कहकर अपने संगीत विषयक ज्ञान को प्रदर्शित किया है। सूरदास ने पदों में रागों के गाये जाने वाले समयानुसार ही उनको प्रयुक्त किया हैं इससे लगता है कि सूरदास को संगीत का ज्ञान भली भाँति था।

मीराबाई भी इसी काल में आई थी। इस समय पुरूष संगीतज्ञ तो आसानी से मिल रहे थे। परन्तु महिला संगीतज्ञों की उपस्थिति न के बराबर थी। मीराबाई गायन, वादन और नर्तन तीनों में निपुण थीं। कृष्ण प्रेम में पगी मीरा की दृष्टि में गुजरात और राजस्थान में लोकगीतों का स्वरूप समृद्ध था। उन्होंने इन्ही गीतों को शास्त्रीय रूप प्रदान कर लगभग साठ राग–रागनियों का प्रयोग किया। मीराबाई का राग माँड गुजरात, राजस्थान और ब्रज में अत्यधिक प्रचलित है।

कबीर, रैदास, मलूकदास, सूफी गायकों, बल्लाभाचार्य के पुष्टिमार्गीय भक्तों के अतिरिक्त पं0 पुण्डरीक विटठ्ल के संगीत के चार ग्रन्थ प्राप्त होते है। 1–सद्राग चन्द्रोदय 2–रागमाला 3–राग मंजरी, 4–नर्तन निर्णय' *(स्वतंत्र शर्मा, भारतीय संगीत एक एतिहासिक विश्लेषण , पृ0 91)* पं0 पुण्डरीक विट्ठल जिस क्षेत्र से आये थे वहाॅ कर्नाटक पद्धति ही प्रचलित थी। उनके चारों ग्रन्थों में दक्षिण की मुखारी मेल अथवा कनकांगी मेल का स्वरूप मिलता है। इसके बाबजूद भी उनके रागों में उत्तरी संगीत की झलक मिलती है।

तुलसी के समकालीन इन कवियों के संगीत ज्ञान के सापेक्ष तुलसी के काव्य का अध्ययन करने पर तत्कालीन संगीतज्ञों का प्रभाव तुलसी पर देखा जा सकता है। तुलसी का कवि रूप किसी प्रकार से उनके कवित्व को सामने लाने के लिए नहीं अपितु धार्मिक और सामाजिक दृष्टिकोण प्रकट करने का साधन मात्र है। ऐसा नहीं कि तुलसीदास ने अपने पूर्ववर्ती अथवा समकालीन संगीतज्ञों अथवा काव्य सर्जकों से कुछ नहीं सीखा। बहुत सी काव्य शैलियों को उन्होनें पूर्ववर्ती और समकालीन साहित्य एवं लोक साहित्य से लिया है।

तुलसी के समकालीन निर्गुण सन्तमत के प्रवर्तक कबीरदास जी माने गये हैं। कबीर और तुलसी भी समन्वयवादी थे। दोनों ही स्वामी रामानन्द द्वारा प्रवर्तित परम्परा के प्रतिभा सम्पन्न महात्मा हैं और उन्हीं के मत को लेकर चलने वाले हैं। तुलसी ने राम की सगुणोपासना को अपनाया और कबीर ने रामानन्द की भक्ति–पद्धति और रामनाम को प्रमुख आधार माना है। कबीर का उद्‌देश्य हिन्दू–मुस्लिम एकता की स्थापना और दोनों धर्मो की कट्‌टर पंथी नीति और आचरणों का खण्डन करना रहा है। कबीर निर्गुणोणसना ओर तुलसी सगुणों पासना की स्थापना करते आये हैं। ऐसे में कबीर का तुलसी पर प्रभाव पड़ना स्वीकार्य नहीं लगता।

तुलसीदास की विविध साहित्यिक पद्धतियों के अध्ययन के आधार पर तुलसी पर समकालीन संगीतज्ञों का प्रभाव जानने का प्रयास होगा। तुलसीदास की जिस प्रकार काव्य रचनाएं मिलती हैं उनके अध्ययन से ज्ञात होता है कि उन पर पूर्ववर्ती साहित्यिक पद्धतियों का प्रभाव हुआ है।

1–वीरकाव्य–पद्धति का प्रभाव–

वीरगाथा काल में वीर पुरूषों ओर राजाओं के गुणगान के लिए कवित्त, छप्पय, पद्धरी, तोमर आदि तीव्रगति गामी छन्दों का प्रयोग होता था। तुलसी ने भी राम के वीरतापूर्ण चरित्र को उजागर करने हेतु 'कवितावली; के सुन्दर और लंका काण्डों तथा रामचरितमानस के लंकाकाण्ड में इस प्रकार की शैली का प्रयोग किया है।

2–निर्गुण संतों की शैली–

इस प्रकार की शैली में प्रमुखता से दोहों का प्रयोग होता है जो उपदेश प्रधान होते हैं। तुलसी की 'वैराग्य संदीपनी' ; रामाज्ञाप्रश्न ; दोहावली आदि में यही शैली देखने को मिलती है। इसी शैली के आधार पर तुलसी पर कबीर का प्रभाव कहा जा सकता है।

3–प्रेमाख्यान प्रबन्ध काव्य शैली का प्रभाव–

इस शैली का प्रयोग जायसी, मंझन आदि कवियों ने किया है। तुलसी के रामचरित मानस तथा 'वैराग्य संदीपनी' में इसी शैली का प्रयोग हुआ है।

4–ललित शैली का प्रयोग–

कवित्त –सवैयों की ललित शैली का प्रयोग तुलसी के समकालीन गंग, ब्रह्म, नरहरि आदि कवि करते थे। तुलसी ने 'कवितावली' में इसी शैली का प्रयोग किया है। कुछ छन्द तो इतने सुन्दर हैं कि जिनके आधार पर उक्त कवियों का प्रभाव तुलसी पर कहा जा सकता है।

5–पद–पद्धति का प्रभाव–

इस पद्धति का प्रयोग कृष्णभक्ति काव्य में सूर–मीरा तथा अष्टछाप के अन्य कवियों द्वारा किया गया है। इसका प्रयोग कुशल संगीतज्ञ–कवियों द्वारा ही किया गया है। तुलसीदास द्वारा प्रयुक्त इस शैली की कुशलता से ऐसा प्रतीत होता है कि उन पर सूर मीरा का प्रभाव हुआ है। यद्यपि संगीत की दृष्टि से तुलसी के पद सूर और मीरा के पदों के समान नहीं हैं पर भावगाम्भीर्य और काव्य सौन्दर्य में श्रेष्ठ हैं। तुलसीदास ने 'गीतावली' 'विनयपत्रिका' 'कृष्णगीतावली' में इसी पद्धति को अपनाया है।

तुलसीदास ने अपने देशाटन के दौरान अनेक विद्वानों के साहित्य का अध्ययन किया, समकालीन विद्वानों की संगत की। उसी के प्रभाव स्वरूप उनके साहित्य में पूर्ववर्ती एवं समकालीन पद्धतियों का प्रभाव दिखाई देता है। अपने देशाटन के समय तुलसीदास अनेक व्यक्तियों के सम्पर्क में भी आये। कई लोगों को तुलसीदास ने प्रभावित किया और कई लोगों से तुलसीदास भी प्रवाहित हुए। अकबर के प्रमुख सेनाध्यक्ष रहीम भी तुलसी के अभिन्न मित्र थे। ऐसा भी कहा जाता है कि मानसिंह भी कभी कभी तुलसीास के दर्शनार्थ आया करते थे। अकबर और तुलसीास की भेंट को लेकर भी किंवदंतियाँ समाज में प्रचलित हैं। ऐसा भी सम्भव है कि मानसिंह अथवा अकबर की भेंट के दौरान सांगीतिक कार्यक्रम भी सम्पन्न हुआ हो और इन राजाओं के संगीतज्ञों से भी तुलसीदास की भेंट हुई हो। हालांकि इस बारे में किसी तरह का ठोस साक्ष्य उपस्थित नहीं है।

तुलसीदास जी कवियों के सम्पर्क में भी रहे। 'रामचन्द्रिका' के केशव और

'भक्तमाल के नाभादास जी भी तुलसी के सम्पर्क में रहे। भक्तों की मध्य तुलसी की बढ़ती ख्याति से प्रभावित होकर मीरा ने भी तुलसी को अपने भक्ति मार्ग में आ रही पारिवारिक समस्याओं को बताया था–

श्री तुलसी सब सुख विधान, दुःख हरन गुसाँई।
बारहिं बार प्रनाभ करूँ अब हरो शोक समुदाई।।
घर के स्वजन हमारे जेते, सबन उपधि बढ़ाई।
साधु संग अरू भजन करत मोहि देत कलेश महाई।।
मेरे मात पिता के सम हो हरिभक्तन सुखदाई।
हमको कहा उचित करिबो है सो लिखियो समुझाई।।
x x x x

मीरा के इस पत्र का तुलसीदास इस प्रकार उत्तर देते हैं–

जाके प्रिय न राम वैदेही।
तजिए ताहि कोटि बैरी सम यद्वपि परम सनेही।।
तज्यो पिता प्रहलाद, विभीषन बन्धु, भरत महतारी।
बलि गुरू तज्यो, कान्त ब्रज–बनिता, भये सब मंगलहारी।।
तुलसी सो सब भांति परम–हित, पूज्य प्रान नें प्यारा।
जासों होय सनेह राम–पद् एतो मतो हमारो।।
x x x x

(यज्ञदत्त, तुलसी–साहित्य और सिद्धान्त, पृ019)

जीवन में आये विभिन्न व्यक्तियों से तुलसीदास भी प्रभावित हुए और तुलसी ने भी प्रभावित किया। संगीतज्ञों, कवियों के सम्पर्क में आकर, देशाटन से विविध स्थानों पर सत्संग से तुलसी ने ज्ञान प्राप्त किया। इसी अवधि में संगीत का ज्ञान भी प्राप्त किया होगा। निष्कर्ष रूप में तुलसी के ऊपर पूर्ववर्ती एवं समकालीन संगीतज्ञों का प्रभाव तो कहा जा सकता है। पर साक्ष्य एवं रूप में उपलब्ध प्रमाण लगभग नगण्य हैं।

परन्तु ये निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि देश, काल का प्रभाव

निश्चित रूप से तुलसी पर हुआ, जो उन्हें साहित्य शिरोमणि के साथ सांगीतिक ज्ञान एवं अभिरुचि के कारण एक श्रेष्ठ वाग्गेयकार बना गया।

तुलसी की काव्य–दृष्टि एंव सांगीतिक रूचि–प्रवृत्ति

महाकवि युग –द्रष्टा और निर्माता होता है। जिस युग में वह जन्म लेता है, उस युग की प्रतिच्छवि उसके काव्य में लक्षित होती है। साथ ही उस युग को एक नई दिशा, नई प्रेरणा एवं नव–जीवन प्रदान करने की शक्ति भी उसकी समर्थ लेखनी में निहित होती है। तुलसीदास ऐसे ही महाकवि थे।

मध्ययुगीन भारतीय संस्कृति का उत्कर्षापकर्ष तुलसी के काव्य में विविध रूपों में परिलक्षित हुआ है। काव्य ललित कला है और ललित कला का एक भेद 'संगीत कला' भी है। तुलसी ने जीवन में इन कलाओं की अनिवार्यता सिद्ध करते हुए रामचरित मानस का आरम्भ ही अपनी काव्य दृष्श्रि को स्पष्ट करते हुए किया है।

''वर्णानामार्थ संघानां रसानां छंदसामपि।

मंगलानां च कर्तारौ वन्दे वाणी विनायकौ।।

वस्तुतः ''तुलसीदास दार्शनिक भक्त कवि हैं। शास्त्रीय दृष्टि से उन्होंने मुख्यतः धर्म दर्शन और भक्ति के सिद्धान्तों का ही प्रतिपादन किया है। 'रामचरित मानस' के निम्नांकित रूपक में उन्होंने समन्वयवादी दृष्टि से काव्य के प्रतिपाद्य विषय और कविता की परम्परागत विशेषताओं–रस, ध्वनि, वक्रोक्ति, गुण, अर्थ–वैचि य, भाव, भाषा, वृत्ति आदि का सांकेतिक उल्लेख किया है''। [1]

''सप्त प्रबन्ध सुभग सोपाना। ज्ञान नयन निरषत मन माना।।

रघुपति महिमा अगुन अबाधा। बन नव सोइ बर बारि अगाधा।।

राम सीअ जस सलिल सुधा सम। उपमा बीचि विलास मनोरम।।

पुरइनि सघन चारू चौपाई। जुगुति मंजु मनि सीप सुहाई।।

(1) 'तुलसी' संपादक–उदयभानु सिंह, पृ0 49

छंद सोरठा सुंदर दोहा। सोइ पराग मकरंद सुवासा।।

सुकृत पुंज मंजुल अलि माला। ज्ञान विराग विचार मराला।।

धुनि अवरेब कवित गुन जाती। मीन मनोहर ते बहु भांती।।

अरथ धरम कामादिक चारी। कहब ज्ञान विज्ञान बिचारी।।

नव रस जप तप जोग बिरागा। ते स जल चर चारू तड़ागा।।

सुकृति साधु नाम गुन गाना। ते विचित्र जल विहग समाना।।

संत सभा चहुंदिसि अंबराई। श्रद्धा रितु बसंत सम गाई।।

भगति निरूपन विविध विधाना। छमा दया दम लता विताना।।

सत जम नियम फूल फल ज्ञाना। हरिपद रति रस वेद बखाना।।[1]

तुलसी दास समन्वयवादी होते हुए भी रसवादी हैं। काष्य–सौन्दर्य के लिए उन्होंने विविध काव्यांगों की आवश्यकता स्वीकार की है। सरसता काव्य का सुंदरतम धर्म है अतएंव तुलसी ने रस को सर्वाधिक महत्व दिया है।

प्राचीन काव्य शास्त्र में काव्य के अनेक प्रयोजन बताए गए हैं– यश, अर्थ व्यवहारज्ञान, अमंगल–निवारण, उपदेश आदि। परन्तु तुलसी की काव्यदृष्टि के अनुसार काव्य के दो प्रयोजन हैं– रसानुभूति और मंगल। तुलसी ने एक ओर तो लोकमंगल को काव्य का प्रयोजन बताया है दूसरी ओर स्वान्तः सुखाय की बात कही है। प्रश्न यह उठता है कि तुलसी की काव्य दृष्टि क्या स्वातः सुखाय है? क्योंकि एक ओर वे कहते हैं–

"स्वांतः सुखाय तुलसी रघुनाथ गाथा भाषा निबन्ध मति मंजुल मातनोति'

तो दूसरी ओर यह भी कहते हैं। कि–

"कीरति भनिति भूति भलि सोई। सुरसरि सम सब कहँ हित होई।।"

जो सर्वजन हिताय की बात कहता हो, समन्वयवादी दृष्टिकोण रखता हो

---

(1) 'रामचरित मानस' –) गोस्वामी तुलसीदास

उसकी बातों में विरोधाभास कैसे संभव है। अतः यही कहना होगा कि बहुजन–हित में ही तुलसी का स्वांतः सुख है।

तुलसी की दृष्टि में 'काव्य का हेतु' ईश्वर–प्रदत्त प्रतिभा–शक्ति काव्य रचना के लिए सर्वाधिक मत्वपूर्ण तत्व है। प्रतिभा या निपुणता का अर्थ है– विविध कलाओं, विद्याओं, काव्य शास्त्र, लोकजीवन आदि का ज्ञान।

इसी तत्व के अन्तर्गत हम तुलसी की सांगीतिक रूचि प्रवृत्ति को भी उनकी आध्यात्मिक एंव दार्शनिक दृष्टि का सुन्दरतम एवं आवश्यक अंग कह सकते हैं, उनकी दृष्टि उस समय की प्रचलित काव्य–भाषाओं पर ही नहीं, उस समय की काव्य–शैलियों पर भी उनका प्रभुत्व दिखाई देता है। विषय के अनुकूल उनकी शैली भी बदलती जाती है। ''गीतावली और विनयपत्रिका' में सूरदास की गीत–पद्धति का अनुसरण किया गया है। उनमें भारतीय संगीत की भिन्न–2 राग–रागिनियों का उल्लेख किया गया है।

तुलसीदास का युग संगीत का स्वर्ण युग था। अतः उनके साहित्य में उनकी काव्य–दृष्टि के साथ–2 उनकी सांगीतिक रूचि प्रवृत्ति भी प्रखर होती दिखाई दी है। यही नहीं उनके काव्य में सभी कलाओं का समाहार है। तुलसी की काव्य दृष्टि समन्वयात्मक थी उनकी दृष्टि 'सर्वजन हिताय' थी। अतः उन्होंने मानस की रचना लोक भाषा में ही की। 'तुलसी का काव्य–प्रयोजन' मंगल विधान की ओर संकेत करता है। उनके हृदय भी लोक–मंगल की भावना से परिपूर्ण था–अपनी इसी भावना से प्रेरित होकर जगमंगल के मूल हेतु 'राम' को अपने काव्य का नायक चुना।' (1) तुलसी की काव्य दृष्टि में जो रसानुभूति हृदय को परिष्कृत कर मंगल भावना को उद्भूत कर सके, वही काव्य है।

वास्तविक अर्थ में तुलसी के काव्य जीवन –बोध के काव्य हैं। इस बोध को उनके युग ने संवारा है। और मानव जीवन की मूलभूत समस्याओं ने सहारा दिया है। तुलसी युग की पीड़ा से विकल थे। मन की पीड़ा और चेतना के दंश को उन्होंने सच्चे मनीषी की

(1) राम जनम जग मंगल हेतु–रामचरित मानस– अयोध्या का0 253/3।

भांति परख और इन्हें मानव–जीवन की शाश्वत पट–भूमि प्रदान की। बोध–ग्रहण की इस प्रक्रिया में उनका मनीषी रूप तो प्रखर हुआ ही साथ ही कवि रूप भी। कवि और मनीषी की समन्विति ने तुलसी के काव्य को नवीन दृष्टि प्रदान कर कई विषयों में निर्मित किया।

तुलसी की काव्य दृष्टि ने सत्य और सत्य के बोध को विषय–भूमि पर लाने की साधना की। यह साधना अपने मनीषी रूप को पूर्णतः कवि रूप में परिणित करने की थी। इसके लिए तुलसी ने राम, राम की भक्ति एवं राम की कथा के आधार लिए। उन्होंने स्वयं को इनमें इस प्रकार एकीकृत किया कि दोनों के पृथक अस्तित्व ही समाप्त हो गए। राम सत्य की निष्ठा और आस्था के प्रतीक बन गए।

विनय पत्रिका असीम मानवीय करूणा की अतल गहराइयों से उपजी कृति है। मानव जीवन की लक्ष्यहीनता और तदनुरूप उसकी कारूणिक परिणति से व्यक्ति होकर तुलसी राम की भक्ति के सहारे सही दिशा पाने का प्रयास करते हैं। अत्यधिक निष्ठा एवं भावना के अधिक उद्वेग के कारण भावक कवि तुलसी के विनय ही 'विनय पत्रिका' के वर्ण्य है।

राग और रस का काव्य गीतावली की अन्तः प्रेरणा अन्य काव्यों से भिन्न है यहाँ जीवन के कोमल संवेदनशील पक्षों को संवारा गया है भावात्मक स्थलों पर तुलसी विलक जाते है और एकाकार है परम मुक्त होकर रागात्मक संवेदनों को उभर देते है।

काव्य रचना के दो पक्ष होते हैं– एक आन्तरिक दूसरा वाह्य) आन्तरिक पक्ष का सम्बन्ध कवि के मन से होता है, वाह्य पक्ष का सम्बन्ध जगत् से होता है। अर्थात् आन्तरिक पक्ष– मानस रचना व बाह्य पक्ष–भौतिक रचना। जिस काव्य में वस्तु, चरित्र और वातावरण के माध्यम से रस–प्रतीति कराई जाती है वे प्रबन्ध काव्य हैं। इसमें पात्रों और घटनाओं के वर्णन का रूप–विधान होता है। काव्य का दूसरा रूप है निर्बन्ध अर्थात् स्वतंत्र। जब कवि आत्मानुभूति को सृष्टि के रागात्मक सम्बन्ध के परिप्रेक्ष्य में अभिव्यक्ति देता है। तब ऐसी रचना गीति काव्य कहलाती है। इसमें कवि अनुभूति के स्पर्श से रसानुभूति की ओर

प्रवृत्त होता है।

गीति–काव्य में संगीतात्मकता का महत्वपूर्ण स्थान है। तुलसी के गीति काव्यों में संगीत और कावय का मणिकांचन योग है। तुलसीदास का काव्य–शिखर– 'रामचरित मानस' है। परन्तु 'विनय पत्रिका' का भक्तिपरक आत्मनिवेदन कम महत्वपूर्ण नहीं है। श्रीकृष्ण गीतावली एवं गीतावली का रागात्मक आग्रह एवं स्थिति का कौतुहल पूर्ण स्पर्श, कवि तुलसी की व्यापक जीवन दृष्टि का परिचायक है।

तुलसी के गीतिकाव्यों में संगीतात्मकता एवं भावप्रवणता जो गीति काव्य के प्राण हैं, दोनों ही स्पष्ट दिखाई देते हैं। भाव के साथ अर्थ बोध स्पष्ट है तथा अर्थ–बोध होने पर ही भाव का आस्वादन होता है, किन्तु संगीतात्मकता के कारण भाव–बोध के अभाव में भी रसास्वादन होता है। संगीत स्वरों की अपेक्षा रखता है, शब्दों की नहीं। तुलसी के गीति काव्य में शब्द और स्वर समन्वित रूप से रस की प्रतीति कराने में सफल है।

यद्यपि ये भी स्पष्ट है कि तुलसी के पद भावाभिव्यंजना– प्रधान हैं। उनमें भाव का आवेग अत्यधिक है उनसे भाव की अखण्ड अनुभूति होती है, ये पद शब्द प्रधान अधिक हैं, और इनमें साहित्यिकता का विशेष आग्रह है परन्तु संगीत से रस की निष्पत्ति होती हैं अतः पदों के भाव रस–वर्षा करने में समर्थ हैं।

ये अवश्य है कि गीति काव्यों में साहित्यिक आग्रह के चित्र के वर्णन के कारण संगीत–विधान कुछ धूमिल हो जाता है। वर्णन–प्रवृत्ति में शब्द–विधान का आग्रह अधिक होता है। अतः शब्दों का आग्रह, संगीत के स्वर–वैभव के प्रतिकूल पड़ने के कारण संगीत की स्वाभाविक धारा का अतिक्रमण कर जाता है। यह अतिक्रमण सर्वथा दोष नहीं है। क्योंकि गीति काव्य के लिए संगीतात्मकता की आवश्यकता है, संगीत के सम्पूर्ण विधान का निर्वाह आवश्यक नहीं है।

तुलसी ने लगभग 21 रागों का अपने गीति–काव्यों में उल्लेख कर अपनी सांगीतिक रूचि का परिचय दिया है।

यद्यपि राग और काव्य के भाव का सम्बन्ध घनिष्ठ है। अनेक भाव हैं जो रागों में बांधे जा सकते हैं पर सब नहीं। पदों में भाव की अन्तर्धारा से राग की प्रकृति का पूर्णतः सामन्जस्य आवश्यक होना चाहिए। तुलसी ने चिन्ता, निर्वेद आदि भावनाओं की अभिव्यक्ति हेतु कान्हरा, विभास, भैरव, सांरग आदि रागों का उल्लेख किया है।

ऐसा अनुमान है कि तुलसी की काव्य रचना संगीत के लिए नहीं थी। पद रचना के बाद ही उसे संगीत बद्ध किया गया है।

तुलसी की काव्य दृष्टि एवं सांगीतिक रूचि का एक उदाहरण देना चाहूंगी कि तुलसी ने 'राग –मल्हार' का प्रयोग श्रीकृष्ण गीतावली में तीन बार भिन्न–2 अनुभूतियों को व्यक्त करने के लिए किया है–

क–ब्रज पर घन धमंड करि आए।

ख–जो पै अलि अंत इहै करिबो हो।

ग–कोउ सखि नई बात सुन आई।

संगीत में रस कल्पना काव्य से भिन्न है। काव्य का एक पद एक ही भाव की सृष्टि करता है, किन्तु संगीत में एक राग करूणा, उल्लास, निर्वेद आदि भावों की सृष्टि करने में सहायक है। अतः तुलसी की दृष्टि ने इन तीनों अलग–2 भावों में एक ही राग 'मल्हार' का उल्लेख कर इस बात को और अधिक स्पष्ट किया है।

रागों के समय–सिद्धान्त से भी तुलसी भली भांति परिचित थे। उन्होंने समय–विशेष के अनुरूप गाए जाने वाले रागों में संधि प्रकाश–रागों का भी प्रयोग किया है, इन रागों का समय प्रातः और सांय है। प्रकाश और अंधकार की संधि होने के कारण इन्हें सन्धि प्रकाश राग कहते हैं। शास्त्रीय दृष्टि से संधि प्रकाश रागों में कोमल रे व कोमल 'ध' का प्रयोग हाता है। प्रातः कालीन संधि प्रकाश रागों में शुद्ध मध्यम तथा सायंकालीन में तीव्र मध्यम ऐसे ध्वनि परक वातावरण का निर्माण करते हैं। जिसमें प्रातः कालीन प्रकृति की नैसर्गिक शोभा व्यंजित होती है। जैसे भैरव, ललित प्रातः कालीन संधि प्रकाश राग हैं। ललित,

भैरवी, रामकली आदि रागों में भगवत् स्मरण तथा प्रातःकाल की शोभा का सौन्दर्य दो गुना हो जाता है। सांयकालीन संधि प्रकाश रागों में करूणा, खिन्नता आदि का वर्णन –गायों को चराकर लौटने का चित्रण, भगवत–भजन 'राग गौरी' में निबद्ध है–

'राम कहतु चलु राम कहतु चलु राम कहत चलु भाई रे।' [1]

तुलसी ने पद–पद्धति का प्रयोग कर शास्त्रीय विधान की रक्षा करते हुए भावानुकूल राग चयन तथा शब्द योजना पर आधारित आन्तरिक लयात्मक सौन्दर्य की सृष्टि की है। इसीलिए उनकी कृतियों में कला को वह उत्कर्ष प्राप्त हुआ है, जिसे देखकर हरिऔधजी की लेखनी से यह सत्य उद्घाटित हुआ––

''कविता करके तुलसी ने लसे, कविता लसी पा तुलसी की कला''[2]

1–विनय पत्रिका–गोस्वामी तुलसीदास पद –189, पृ0 189, पृ0 212

2– 'तुलसी–सं0 उदयभानु सिंह–पृ0 234

तृतीय अध्याय

तुलसी का साहित्य एवं गीतिकाव्य

तुलसीदास को महाकवि के नाम से सम्मान दिया जाता है। महाकवि तुलसीदास के जीवन–चरित्र, उनके साहित्य पर विचार करने से पूर्व यह जानना और भी आवश्यक हो जाता है कि इस काल के अन्य कवियों की भांति तुलसीदास का कोई भी विश्वास प्रमाणिक जीवन–चरित उपलब्ध नहीं है। निश्चित होकर किसी भी बिन्दु पर कुछ भी कहना कठिन है पर वर्तमान में उपलब्ध साक्ष्यों के आधार पर तुलसीदास के जीवन और साहित्य पर विभिन्न विद्वानों ने विचार प्रकट किये हैं।

तुलसीदास पर लिखित मूलगोसाईं चरित, तुलसीप्रकाश, गौतमचन्द्रिका, गोसाईचरित्र, घटरामायन आदि रचनाओं तथा जनश्रुतियों के आधार पर उनके भिन्न भिन्न जन्म संवत् बतलाये गये हैं। तुलसी काव्य–मर्मज्ञ पंडित राममुलाम द्विवेदी उनका जन्म संवत् 1589 मानते हैं, परन्तु शिवसिंह सरोज के लेखक शिवसिंह सेंगर ने इसे संवत् 1583 लिखा है। यह संवत दोनों विद्वानों ने जनश्रुति के आधार पर निश्चित किया है। कोई प्रमाण प्रस्तुत नहीं किया। '(तुलसी–साहित्य और सिद्धान्त–यज्ञदत्त, पृ09) अपने आपको तुलसीदास का अवतार बताने वाले तुलसी साहब ने स्वरचित घटरामायन में जो वृत्त दिया है उसके अनुसार तुलसी का जन्म संवत् 1589 है। घटरामायन की प्रमाणिकता संदिग्ध हो सकती है पर जनश्रुति के आधार पर निर्धारित जन्म–संवत् सर्वथा उपेक्षणीय नहीं हो सकता है। विभिन्न विद्वानों के मतों और प्रमाणों के बाद तुलसी का जन्म संवत् 1589 स्वीकारना अधिक समीचीन है।

जन्म तिथि की भांति तुलसीदास के जन्म स्थान को लेकर विद्वानों में मतैक्य नहीं है। विविध विद्वानों द्वारा तुलसी के जन्म स्थान का निर्धारण किया गया, उसके अनुसार निम्न स्थान सामने आये हैं–

1–अवध में कहीं   2–अयोध्या   3–काशी

4–हाजीपुर (चित्रकूट)	5–हस्तिनापुर	6–राजापुर (बाँदा)
7–तारी	8–सोरों (एटा)	9–रामपुर

उक्त स्थानों में से राजापुर (बाँदा) तथा सोरों (एटा) के पक्ष में विद्वान एकमत होते दिखते हैं। इनमें भी विद्वानों ने मतैक्य से राजापुर (बाँदा) को ही तुलसीदास का जन्म स्थान स्वीकारा है।

तुलसीदास के जन्म स्थान, जन्मतिथि को लेकर ही विद्वानों में विभ्रम की स्थिति नहीं रही है अपितु उनके माता–पिता, बाल्यकाल, जाति–धर्म, मूलनाम, गुरू, जीवन, साहित्य को लेकर भी विद्वानों के मध्य अनेक धारणाएं जन्म लेती रहीं। उक्त सभी बिन्दुओं पर कतिपय साक्ष्यों और जनश्रुतियों के आधार पर विद्वानों में मतैक्य हो सका है। संक्षेप में तुलसीदास की जीवन रूपरेखा को निम्न प्रकार से समझा जा सकता है।–

1–तुलसीदास का जन्म संवत् 1589 स्वीकारा गया है।

2–जन्म स्थान को भी विद्वानों ने मतभेद के बाद राजापुर (बाँदा) स्वीकार किया है।

3–तुलसीदास के माता–पिता के बारे में अधिक जानकारी उपलब्ध नहीं है पर उन्हें ब्राह्मण कुल का स्वीकारा गया है।

4–तुलसीदास का बाल्यकाल कष्ट में बीता।

5–परम कृपालु, रामभक्त प्रकांड पंडित के श्रीमुख से तुलसीदास ने सूकर खेत में रामकथा सुनकर उन्हें अपना गुरू बनाया।

6–विवाहित जीवन में पत्नी की उपेक्षा से वैराग्य की ओर उन्मुख हुए। लगभग 35–36 वर्ष की अवस्था में गृहस्थाश्रम का त्याग किया।

7–काशी में निवास के दौरान वे किसी मठ के गोसाईं बने। बाद में वहाँ से विरक्ति हुई और सदा के लिए संन्यासी बन गये।

8–तुलसी का वैराग्य साहित्य साधना की ओर मुड़ गया। 'वैराग्य संदीपनी' की रचना के बाद उन्होनें रामाज्ञाप्रश्न, रामलला नहछू, जानकीमंगल, रामचरितमानस आदि ग्रंथों की रचना की।

9—वृद्धावस्था में वे भयंकर शारीरिक रोगों से पीड़ित हो गये थे और संवत् 1680 में काशी में अस्सी घाट पर तुलसीदास का स्वर्गवास हो गया।

तुलसीदास का व्यक्तित्व, उनकी साहित्य साधना निजी अनुभवों और परिस्थितियों से निर्मित हुआ था, परन्तु वह उनकी निजता से ऊपर उठ गया। उनके व्यक्तित्व में महाकवि, समाज—सुधारक और भक्त के गुण थे। तुलसीदास की यथार्थ महत्ता इसी बात में है कि उनके गुणों का समूल सदुपयोग हो और उनके काव्य से समाज को हिन्दी साहित्य को दिशा देने का प्रयास हो।

(1) साहित्य

तुलसीदास के जन्म संवत् और जन्म स्थान की भांति उनके साहित्य को लेकर भी विद्वानों में भ्रम की स्थिति रही है। विद्वानों ने अपने—अपने मत और उपलब्ध प्रमाणों के आधार पर तुलसी के साहित्य रचना संसार को सामने रखा है। वेणीमाधव दास ने 'मूल गोसाईं चरित' में निम्न ग्रंथों का उल्लेख किया है—

1—रामगीतावली, 2—कृष्ण गीतावली	सवत् 1628
3—रामचरित मानस	1631
4—विनयपत्रिका, 5—रामलला नहछू 6—पार्वती मंगल	1639
7—जानकी मंगल	
8—दोहावली	1640
9—सतसई	1642
10—बाहुक 11—वैराग्य संदीपनी	
12—रामाज्ञा, 13—बरवै	1669

(तुलसी—साहित्य और सिद्धान्त, यज्ञदत्त—पृ041)

शिवसिंह सेंगर ने अपने देखे अथवा अपने पुस्तकालय में उपलब्ध तुलसी—कृत ग्रन्थों की निम्न सूची दी है—

1—चौपाई—रामायण	7 काण्ड
2—कवितावली	7 काण्ड
3—गीतावली	7 काण्ड
4—छन्दावली	7 काण्ड
5—बरवै रामायण	7 काण्ड
6—दोहावली	7 काण्ड
7—कुंडलियाँ	7 काण्ड

इसके अलावा 'शिवसिंह सरोज ने दस और ग्रन्थों के नाम भी गिनाये हैं— रामसतसई, संकटमोचन, हनुमद् बाहुक, रामशलाका, छन्दावली, छप्पय रामायण, कडखा रामायण, रोला रामायण, झूलना रामायण, और कुण्डलिया रामायण।'

(हिन्दी साहित्य का इतिहास, डॉ0 नगेन्द्र, पृ0188)

सर जार्ज ग्रियर्सन ने 'इंडियन एंटीकरी (सन 1893) नोट्स ऑन तुलसीदास' में गोस्वामी जी के 21 ग्रन्थों का उल्लेख किया है किन्तु केवल 12 ग्रन्थों को तुलसीकृत माना है। इसी तरह मिश्र बंधुओं ने अपने नवरत्न में तुलसीदास की ग्रन्थ संख्या 25 निर्धारित की है। नागरी प्रचारिण सभा की खोज रिपोर्टों के अनुसार तुलसीकृत ग्रन्थों की संख्या 37 है पर मिश्र बंधुओं और नागरी प्रचारिणी सभा ने प्रमाणिक ग्रन्थों की संख्या 12 ही मानी है। नागरी प्रचारिणी सभा के समर्थन के पूर्व मिश्र बंधुओं के प्रमाणिक 12 ग्रंथों को ही प्राचीन टीकाकारों ने भी समर्थन दिया है। सभा की खोज रिपोर्टों के बाद उसी आधार पर संवत् 1980 में इन 12 ग्रन्थों को दो खण्डों में प्रकाशित किया गया। इसमें प्रथम खण्ड में केवल मानस है और दूसरे खण्ड में शेष 11 ग्रन्थ हैं। इनकी सूची इस प्रकार से है।

1—रामलला नहछू	2—वैराग्य संदीपनी	3—दोहावली
4—कवितावली	5—बरवै रामायण	6—पार्वती—मंगल
7—जानकी मंगल	8—रामाज्ञा प्रश्न	9—गीतावली
10—श्रीकृष्ण गीतावली	11—विनयपत्रिका	

सभा द्वारा प्रकाशित–प्रमाणिक 12 ग्रन्थों को आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भी प्रमाणिक माना है। छन्द शैली की दृष्टि से तुलसीदास के साहित्य को प्रबन्ध, मुक्तक और निबन्ध–तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। तुलसीदास के प्रमाणित 12 ग्रंथों में प्रबंध काव्य के रूप में रामचरित मानव को स्वीकार किया गया है। रामलला नहछू, जानकी मंगल और पार्वती मंगल निबंध काव्य रूप में स्वीकारे गये हैं। इसके अतिरिक्त शेष सभी ग्रन्थों को मुक्तक रूप में स्थान प्राप्त हुआ है। मुक्तक काव्य रूप के अन्तर्गत ही कृष्णगीतावली, गीतावली, विनय पत्रिका को गीतिकाव्य के रूप में मान्यता प्राप्त है। तुलसी ग्रन्थावली को निम्न चार्ट के द्वारा आसानी से समझा जा सकता है–
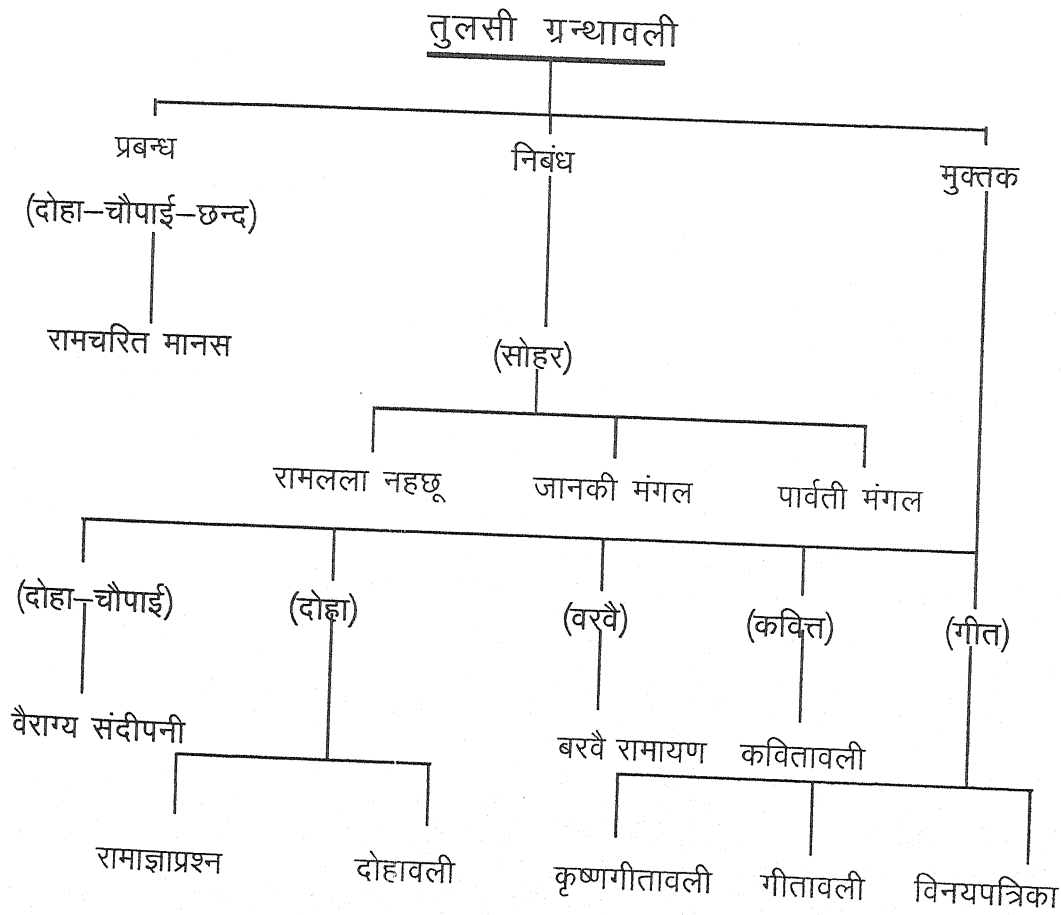
(तुलसी मुक्तावली– डॉ0 उदयभानुसिंह पृ0 18)

तुलसीदास के प्रमाणिक 12 ग्रन्थों का प्रबन्ध, मुक्तक एवं निबन्ध शीर्षक के अन्तर्गत संक्षिप्त रूप से विवेचन परिचयात्मक विवरण अग्रलिखित है।

(1) प्रबन्ध काव्य

यह वह पद्य रचना है जिसके छन्द, कथा सूत्र की व्यवस्था से पिराये जाते हैं। इसमें छन्दों के क्रमों को बदला नहीं जा सकता है। इसमें एक कथानक होता है जो सुगठित रूप में किसी चरित्र की जीवनी अथवा किसी घटना को वर्णित करता है। कभी–2 इसमें कहीं–कहीं पूर्ण जीवन का व्यापक चित्रण भी मिलता है। प्रबन्ध काव्य को इसी कारण से दो रूपों में स्वीकार किया गया है। –महाकाव्य और खण्ड काव्य

(अ) महाकाव्य–

इसमें कवि की कलात्मक प्रतिभा के दर्शन होते हैं। एक प्रकार की रसभावना पाठकों को आनन्दित करती रहती है तो दूसरी ओर कोई उद्देश्य और स्वस्थ जीवन–दर्शन भी उसे प्रभावित करता है। दिनकर के कथन से महाकाव्य को समझा जा सकता है – "विश्व के महाकाव्य मनुष्यता की प्रगति के मार्ग में मील के पत्थरों के समान हैं। वे व्यंजित करते हैं कि मनुष्य किस युग में कहाँ तक प्रगति कर सका है।"

(डॉ० रामानन्द शर्मा, भारतीय काव्यशास्त्र, पृ० 281)

भारतीय विचारकों के मतों के अध्ययन के पश्चात महाकाव्य के दो प्रकार के तत्व स्वीकारे गये हैं– अतरंग तत्त्व एवं बहिरंग तत्व। इसमें अंतरंग तत्त्व को महाकाव्य की आत्मा माना गया है और यह अनिवार्य तत्व समझा जाता है। इन तत्त्वों को निम्न प्रकार से समझा जा सकता है–

अंतरंग तत्व–

1–इतिहास प्रसिद्ध या लोक प्रसिद्ध कथा

2–धीरोदात्त गुणों से सम्पन्न नायक

3–विविध रस–भावों की गम्भीर योजना

4–चतुर्वर्ग प्राप्ति रूप उद्देश्य एवं उच्च जीवन दर्शन

5–प्रकृति चित्रण तथा लोक जीवन का चित्रण

6—सर्गबद्धता, कार्यावस्थाओं एवं सन्धियों का परिपालन

7—प्रौढ़ अभिव्यक्ति—विधान

बहिरंग तत्त्व—

1—मंगलाचरण, सज्जनप्रशंसा और दुर्जन निन्दा

2—सर्गों की संख्या, नामकरण एवं सर्गान्त में आगामी कथा की सूचना

3—सर्ग में एक छन्द का प्रयोग एवं सर्गान्त में छन्द परिवर्तन,

4—महाकाव्य का नामकरण

5—प्रतिनायक के वंश एवं वैभव का वर्णन

6—रमणीय विषयों की स्थिति।

(डॉ0 रामानन्द शर्मा, भारतीय काव्य शास्त्र, पृ0 283)

पाश्चात्य जगत् की अपनी अवधारणाएं रहीं है। भारतीय और पाश्चात्य मतों के अवलोकन के बाद निष्कर्ष रूप में यह स्वीकारा गया कि महाकाव्य में कभी किसी तत्त्व की तीव्रता होगी, किसी महाकाव्य में अन्य किसी तत्त्व की। महाकाव्य के स्वरूप निर्धारण में इसी कारण से चार वर्गों को प्रमुखता दी गई है।

1— कथा प्रधान   2—चरित्र प्रधान

3— भाव प्रधान   4— अलंकृति प्रधान

(डॉ0 भगीरथ मिश्र, काव्य शास्त्र, पृ0 61)

(ब) खण्ड काव्य—

प्रबन्ध काव्य का लघु रूप खण्ड काव्य कहलाता है। संस्कृत काव्यशास्त्र में इसका विशद विवेचन नहीं मिलता है। इसके लक्षणों पर अधिक विस्तार नहीं किया गया किन्तु इसकी प्रमुख विशेषता यह है कि इसमें कथावस्तु सम्पूर्ण न होकर उसका एक अंश ही होता है।

समस्त लक्षणों तथा विद्वानों के मतों एवं मान्य खण्ड काव्यों के आधार पर खण्ड काव्य

का स्वरूप निम्न प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है–

1–खण्ड काव्य की कथा संक्षिप्त होती है।

2–कथा का लोक प्रसिद्ध होना आवश्यक नहीं। किसी ऐतिहासिक चरित्र अथवा किसी साधारण धटना को भी आधार बनाया जा सकता है।

3–इसमें न तो प्रासंगिक कथानकों के लिए स्थान होता है और न विभिन्न रुचिकर दृश्यों की योजना के लिए अवसर।

4–खण्ड काव्य का विभाजन सर्गों में हो सकता है पर इनकी क्रमबद्धता और नामकरण आवश्यक नहीं है।

5–परिमित आकार के कारण नायक के अतिरिक्त अन्य दो तीन पात्र सांकेतिक रूप में आते हैं।

6–रस विकास को ज्यादा महत्त्व न देकर कथा विकास पर कवि का ध्यान रहता है।

7–खण्ड काव्य में प्रायः आद्योपान्त एक ही छन्द का प्रयोग होता है।

प्रबन्ध – रामचरित मानस

रामचरित मानस की रचना तिथि साक्ष्यों के आधार पर संवत् 1631 स्वीकारी गई है। कवि ने स्वयं ही बालकाण्ड में इसका प्रमाण दिया है।

'संवत् सोरह सै इक्तीसा, करौ कथा हरि पद धर सीसा।'

रामचरित मानस पौराणिक शैली का महाकाव्य है। इसमें काव्योचित् रमणीयता और लोकमंगल की गरिमा विद्यमान है। मानस की कथा, कवि ने सात खण्डों –बालकाण्ड, अयोध्याकाण्ड, अरण्यकाण्ड, किष्किंधाकाण्ड, सुन्दरकाण्ड, लंकाकाण्ड, उत्तरकाण्ड – में विभक्त कर विस्तार से कही हैं। 'तुलसी दास ने रामचरित मानस की रचना प्रधान रूप से दोहा और चौपाई छन्द में की है परन्तु बीच–बीच में कवि ने सोरठा, तोमर, हरिगीतिका, चवपैया और त्रिभंगी, मात्रिक तथा अनुष्टुप रथोद्धता, स्रग्धरा, मालिती, तोटक, वेशस्थ,

भुजंग–प्रयात्, नगस्वरूपिणी, वसंत तिलका, इन्द्रवज्रा, शार्दूल विक्रीड़ित इत्यादि वार्णिक छन्दों का भी प्रयोग किया है।

(तुलसी–साहित्य और सिद्धान्त–यज्ञदत्त पृ055)

तुलसी ने विभिन्न स्रोतों से उपादान चुनकर रामचरित मानस की रचना की है। वह नाना पुराण निगमागमसंमत है। मुख्य कथा बाल्मीकि रामायण और अध्यात्मरामायण से ली गयी है। राम कथा को सांत्रोपांग वर्ष्य–विषय बनाने में कवि ने निम्न ग्रन्थों की सहायता ली है।

1–अध्यात्म रामायण : कथा के दृष्टिकोण हेतु

2–बाल्मीकि रामायण : कथा विस्तार हेतु

3–हनुमान्नाटक : लक्ष्मण--परशुराम संवाद हेतु

4–प्रसन्नराघव : पुष्पवाटिका वर्णन हेतु

5–श्रीमद्‌भागवत – सूक्तियों हेतु

इन ग्रन्थों के अतिरिक्त नीति और धर्म सम्बन्धी सूक्तियों हेतु कवि ने बहुत से संस्कृत ग्रन्थों का सहयोग लिया है।

गोस्वामी तुलसीदास ने मानस की रचना एक महाकाव्य के ढंग से की है। जीवन के लगभग सभी पहलुओं को इसमें समाहित किया गया है। मानस का वस्तु विन्यास पौराणिक है। उसमें स्तुतियों और गीताओं की भरमार है। मानस में चार संवादों के वक्ता–श्रोता हैं–याज्ञवल्क्य–भारद्वाज, शिव–पार्वती, काकभिशुंडि–गरुण और तुलसी–संतजन। इनके संवादों के माध्यम से रामकथा का प्रतिपादन किया गया है। मानस में सभी प्रकार के पात्र हैं– मानव–अमानव, नर–नारी, आदर्श–यथार्थ। इन पात्रों के माध्यम से कवि ने किसी न किसी आदर्श की स्थापना की है। पात्रों के गुणों–अवगुणों को निखार कर, परख कर नैतिक और सामाजिक सिद्धान्त स्थापित किये हैं।

डॉ0 रामकुमार वर्मा ने मानस के पात्रों की विशेषताओं को खोजकर मानस की

कुछ पंक्तियां चुनी हैं जिनमें उसके पात्रों का सम्पूर्ण चरित्र निहित है–

शिव–	एहि तन सतिहि भेंट मोहि नाहीं।	
	शिव संकल्पु कीन्ह मन माहीं।।	(भक्ति)
पार्वती–	जनम कोटि लगि रगरि हमारी।	
	बरौं संभु नतु रहौं कुआंरी।।	(पतिव्रत)
दशरथ–	रघुकुल रीति सदा चलि आई।	
	प्राण जाहु बरू बचनु न जाई।।	(प्रतिज्ञा)
जनक–	सुकृत जाई जौं पन परिहरऊँ।	
	कुंअरि कुँअरी डरहउ का करऊ।।	(व्रत)
कौशल्या–	जो केवल पितु आयसु ताता।	
	तौ जनि जाहु जान बडि माता।।	
	जौं पितु मातु कहेऊ बन जाना।	
	तौ कानन सत अवध समाना।।	(मातृ–भक्ति)
सुमित्रा–	जौ पै सीय राम वन जाहीं।	
	अवध तुम्हार काजु कछु नाहीं।।	(धर्मप्रेम)
सीता–	जहँ लगि नाथ पेह अरू नाते।	
	प्रिय बिनु तिहहिं तरनिहुं ते ताते।।	(पतिव्रत)
राम–	सेवक सदन स्वामि आगमनू।	
	मंगल मूल अमंगल दमनू।।	(गुरू–भक्ति)
	जो पितु मात बचन अनुरागी।	
	सुनु जननी सोई सुत बड़ भागी।।	(माता–पिता–आज्ञा)
	भरत प्रान प्रिय पावहिं राजू।	
	बिधि सब मोहि सनमुख आजू।।	(भ्रातृ–प्रेम)

जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी।

सो नृप अवसि प्रिय राजा दुखारी।। (राजा कर्त्तव्य)

लक्ष्मण— तोरौं छत्रक—दण्डजिमि, तब प्रताप बल नाथ।

जौ न करौं प्रभु—पद पद सपथ, करना धरौं धनु माथ।। (वीरता—भ्रात—प्रेम)

भरत— भरतहिं होई न राज —मदु

विधि हरिहर पद पाई। (मर्यादा)

हनुमान— सुनु कपि तोहि समान उपकारी।

नाहिं कोउ सुर नर मुनि तन धारी।। (स्वामी भक्ति)

रावण— निज भुज बल मैं वैर बढ़ावा।

देइहौं उतरू जो रिपु चढ़ि आवा।। (अभिमान और दृढ़ता)

(तुलसी—साहित्य और सिद्धान्त—यज्ञदत्त, पृ0 57)

मानस में चरित्रों के माध्यम से भी राम—कथा को विस्तार दिया गया है। परम्परानिष्ठ, धर्मप्राण और लालित्यप्रेमी भारतवर्ष का वांगमय विभिन्न कृतियों से सम्पन्न है। समस्त कृतियों में रामचरित मानस सबसे अनूठा है। यह हिन्दी भाषी जनता का धर्मशास्त्र है, भक्ति दर्शन है, इतिहास पुराण है और साहित्यिक दृष्टि से हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य है।

(2) मुक्तक—काव्य

मुक्तक काव्य को अनिबद्ध अथवा निर्बन्ध काव्य के नाम से भी जाना जाता है। इसके अन्तर्गत रचना के विभिन्न छन्दों में किसी प्रकार की विचारधारा, कथाधारा अथवा श्रृंखला न पायी जाये और प्रत्येक छन्द स्वतः पूर्ण और निरपेक्ष हो। ऐसे काव्य को सामान्यतया मुक्तक नाम से अभिव्यक्त किया जाता है। परिभाषित रूप में कहा जाये तो एक छन्द में पूर्ण अर्थ और चमत्कार प्रकट करने वाला अनिबद्ध काव्य मुक्तक कहलाता है।

(मुक्तकः श्लोकएवैक श्चमत्कारक्षमः सताम्।।39।। अग्निपुराण—अध्याय 337)

भारतीय काव्य शास्त्र में मुक्तक का सर्वप्रथम उल्लेख आचार्य भामह ने

अनिबद्ध नाम से किया है। संस्कृत काव्य–शास्त्र में मुक्तक के जो भेद किये हैं वे निम्न प्रकार से हैं–

1–मुक्तक– एक श्लोक में पूर्ण होने वाली रचना

2–युग्मक या सन्दानितक– दो छन्दों में पूर्ण होने वाली रचना

3–विशेषक– तीन छन्दों में पूर्ण होने वाली रचना

4–कलापक–चार छन्दों में पूर्ण होने वाली रचना

5–कुलक–पाँच या उससे अधिक छन्दों में पूर्ण होने वाली रचना

6–कोश–परस्पर असम्बद्ध छन्दों का संग्रह

7–प्रद्यट्टक– एक कविकृत छन्दों का समुच्चय

8–विकीर्णक–अनेक कवियों द्वारा रचित छन्दों का संग्रह

9–संघात–एक कवि द्वारा, एक ही विषय पर रचित छन्दों का संग्रह

उक्त वर्गीकरण को अवैज्ञानिक समझा गया क्योंकि मुक्तकों की रचना का आधार अलग–अलग रहा है। डॉ0 शम्भूनाथ सिंह ने हिन्दी में प्रचलित मुक्तकों को ग्यारह वर्गो में विभाजित किया है–

1–संख्याश्रित मुक्तक– सतसई, शतक, पच्चीसी आदि

2–वर्णमालाश्रित मुक्तक–बारहखड़ी, ककहरा, अखरावट आदि

3–छन्दाश्रित मुक्तक–चौपाई, दोहा, कवित्त, छप्पय आदि

4–रागाश्रित मुक्तक–गरबा, लावणी, कजरा, धमाल आदि

5–ऋतु एवं उत्सवमूलक–फाग, होली, बारहमासा, सोहर आदि

6–पूजा या धर्माश्रित–विनय, भजन, साखी, रमैनी आदि

7–लोकाश्रित मुक्तक–मुकरी, पहेली, कहावत, आदि

8–फारसी काव्यरूप–गजल, रुबाइयाँ आदि

9–अंग्रेजी काव्यरूप–द्विपदी, चतुष्पदी आदि

10–साहित्य शास्त्राश्रित– छन्द, ध्वनि, अलंकार, विषयक

11–अन्य फुटकर काव्यरूप– नख–शिख, दूत काव्य, अष्टयाम।

(भारतीय काव्य–शास्त्र, डॉ0 रामानन्द शर्मा, पृ0 294)

भले ही उक्त वर्गीकरण भी पूर्णतः वैज्ञानिक न हो पर हिन्दी में प्रचलित मुक्तक–काव्य को लेकर उसका उक्त वर्गीकरण स्वीकार्य हो सकता है।

तुलसीदास के साहित्य में मुक्तक काव्यान्तर्गत वैराग्य संदीपनी, रामाज्ञाप्रश्न, दोहावली बरवैरामायण, कवितावली, कृष्णगीतावली, गीतावली, विनयपत्रिका को स्वीकार किया जाता है। प्रस्तुत अध्याय में कृष्णगीतावली, गीतावली, विनयपत्रिका को गीतिकाव्य के शीर्षक के अन्तर्गत विवेचित किया गया हैं अतः शोधार्थी ने मुक्तक शीर्षक से इन तीनों कृतियों के अतिरिक्त उक्त अन्य कृतियों का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया है।

(1) वैराग्य संदीपनी–

वेणीमाधव दास के 'गोसाईचरित्र' के आधार पर वैराग्यसंदीपनी का रचनाकाल संवत् 1640 के पूर्व का ठहरता है। यह 62 पद्यों की लघु रचना है। इसमें 46 दोहे 14 चौपाइयाँ और 2 सोरठे हैं। इस ग्रन्थ में वंदना के अतिरिक्त ईश्वर, संत–स्वभाव, संत–महिमा और शांति–महिमा का वर्णन किया गया है। शान्त, रस, ज्ञान, भक्ति और वैराग्य का इस ग्रन्थ में खजाना है। इसकी कुछ पंक्तियाँ 'रामाज्ञाप्रश्न', रामचरितमानस' और दोहावली में भी पायी जाती हैं। शुद्ध कवित्व की दृष्टि से यह अत्यन्त साधारण कोटि की रचना है।

(2) रामाज्ञाप्रश्न–

इस ग्रन्थ की रचना तिथि वेणीमाधव दास ने संवत् 1619 दी है। कहा जाता है कि इसकी रचना तुलसी ने अपने मित्र गंगाराम ज्योतिषी के लिए प्रश्न–फल निकालने की दृष्टि से की थी। इस ग्रन्थ में सात सर्ग हैं और प्रत्येक सर्ग में सात सप्तक हैं और प्रत्येक सप्तक में सात दोहे है। कुल मिलाकर इस ग्रन्थ में छन्द संख्या 343 है। इस ग्रन्थ में भी रामकथा वर्णित हैं काव्योत्कर्ष नहीं के बराबर है और प्रबन्धात्मकता का भी अभाव है। इस

ग्रन्थ का उद्देश्य रसोदेक की अपेक्षा शुभ और अशुभ शकुनों का वर्णन करना है। इसके बहुत से दोहे दोहावली में भी मिलते हैं।

(3) दोहावली–

दोहावली का रचना काल वेणीमाधव दास ने संवत् 1640 माना है–

मिथिला ते कासी गए चालिस संवत लाग।

दोहावलि संग्रह किए सहित विमल अनुराग।।

दोहावली में कोई विशेष कथानक नहीं है। यह एक संग्रह ग्रन्थ है, इसमें 551 दोहे और 22 सोरठे संकलित हैं। इसके दो दोहे वैराग्यसंदीपनी में, 35 दोहे रामाज्ञाप्रश्न में और 85 दोहे रामचरित मानस में पाये जाते हैं। (*तुलसी मुक्तावली– डॉ0 उदयभानु सिंह पृ0 27*) इस ग्रन्थ में नीति, भक्ति, राम–महिमा, तात्कालिक परिस्थितियाँ, नाम, महात्म्य इत्यादि उक्तियां वर्णित हैं। काव्योत्कर्ष की दृष्टि से ग्रन्थ साधारण ही है।

(4) बरवैरामायण–

इस ग्रन्थ का रचनाकाल वेणीमाधव दास ने संवत 1669 दिया है। इसमें कवि द्वारा समय–समय पर लिखे गये पदों का संकलन है। ग्रन्थ में कुल 69 बरवे हैं। पुस्तक सात काण्डों में विभक्त है। प्रथम छह काण्डों में रामकथा के विभिन्न प्रसंगों से सम्बद्ध बरवै संगृहीत हैं। ऐसी जनश्रुति है कि रहीम ने कुछ बरवै लिखकर तुलसीदास को भेजे थे। उन्हें यह छन्द पसंद आया और उन्होनें बरवै रामायण की रचना की। इस ग्रंथ के छन्दों में कवि ने पहली बार रस और अलंकार निरूपण का प्रयास किया है। बालकाण्ड और उत्तरकाण्ड में ऐसे छन्दों का आधिक्य है।

(5) कवितावली–

यह एक मुक्तक --संग्रह है। इस युग में सवैया, घनाक्षरी, छप्पय और झूलना छन्द 'कवित्त' नाम से अभिहित होते थे। अतएव तुलसीदास ने समय–समय पर कवित्त शैली में जो कुछ लिखा वह सब इस ग्रन्थ में संकलित हुआ।

कवितावली का विभाजन भी रामायण की पद्धति पर सात काण्डों में किया गया है, जिनमें कुल 325 छन्दों को समाहित किया गया है।

1—बालकाण्ड— 22 छन्द,	2— अयोध्याकाण्ड — 28 छन्द
3—अरण्यकाण्ड— 1 छन्द	4—किष्किंधाकाण्ड— 1 छन्द
5—सुन्दरकाण्ड — 32 छन्द	6—लंकाकाण्ड — 58 छन्द
7—उत्तरकाण्ड— 183 छन्द	

कवितावली की कथा केवल रामकथा और रामभक्ति तक ही सीमित नहीं है। उत्तरकांड में कृष्णचरित—सम्बन्धी भ्रमरगीत—प्रसंग के कवित्त भी संनिविष्ट हैं। अनेक देवी—देवताओं की स्तुतियां भी हैं। कवितावली में सभी रसों की सुन्दर व्यंजना हुई है और यह कृति आद्योपांत सरस है। इसकी कवित्व—संपन्नता निर्विवाद है। कवितावली में शब्द का लालित्य है, भाषा की समर्थता है, अर्थ का सौन्दर्य है, भाव का उत्कर्ष है, विचार की उदात्तता है। इसे उत्तम काव्य—कृति कहा जा सकता है।

(3) निबन्ध—काव्य

हिन्दी काव्य के क्षेत्र में निबन्ध काव्य का विकास देखने को मिलता है। इसमें कथानक का विकास महत्व नहीं रखता है, विचारधारा अथवा भावधारा प्रधान होती है। कथानक विकास की अवस्था न होने से इसे प्रबन्ध काव्य नहीं कहा जा सकता है। ये या तो काव्य रूप में होते हैं अथवा अनेक छन्दों में क्रमशः विचार श्रृंखला को प्रकट करने वाले होते हैं। निबन्ध काव्यों की श्रेणी में प्रसाद की 'प्रलय की छाया', शेरसिंह का 'शस्त्र—समर्पण', निराला का 'शिवाजी को पत्र' आदि आते हैं। (काव्यशास्त्र— डॉ0 भगीरथ मिश्र, पृ0 63)

तुलसीदास के ग्रन्थों को वर्गीकृत कर उनके तीन ग्रन्थों—रामलला नहछू, जानकी मंगल, पार्वती मंगल— को निबन्ध काव्य की श्रेणी में रखा गया है। इन ग्रंथों का संक्षिप्त परिचायात्मक विवरण निम्नवत् है—

(1) रामलला नहछू—

इस ग्रन्थ की रचना वेणीमाधव दास की गोसाईं चरित के अनुसार संवत्

1640 से पूर्व का माना गया है। इसमें कथा नहीं है, एक ही वर्णन में ग्रन्थ समाप्त हो जाता है। इसकी रचना सोहर छन्द में हुई हैं। इस ग्रन्थ के प्रत्येक चरण के अंत में संगीतात्मक दृष्टि से निबद्ध 'हो' को छोड़ दिया जाये तो शेष अंश 'हसंगति' छन्द है। इसमें चित्रात्मकता, अर्थव्यंजना और भाषा–प्रवाह का लालित्य है–

मोचिनि वदन सकोचिनि हीरा मांगन हो।
पनहि लिहे कर सोभित सुंदर ऑगन हो।।
नैन विसाल नउनियाँ भौं चमकावइ हो।
देह गारी रनिवासहि प्रमुदित गावइ हो।।

(तुलसी मुक्तावली– डॉ0 उदयभानु सिंह, पृ0 19)

(2) जानकी मंगल–

वेणीमाधव दास के अनुसार इस ग्रन्थ की रचना तुलसी की मिथिला यात्रा के समय संवत् 1643 के आसपास हुई है। यह भी मंगल काव्य है और मांगलिक अवसर पर गाये जाने के लिए लिखा गया है। राम–सीता विवाह के साथ साथ तीनो भाइयों के विवाह की कथा को कवि ने 216 पदों के द्वारा प्रस्तुत किया है। इस ग्रन्थ में मुख्य छन्द हंसगति है, जिसे 'मंगल छन्द' कहा गया है और प्रति आठ मंगल छन्दों के बाद चार चरण वाले हरिगीतिका छन्द का प्रयोग किया गया है।

(3) पार्वती मंगल–

इसका रचनाकाल संवत् 1640 के आसपास का माना गया है। इसे भी मंगल काव्य स्वीकारा गया है क्योंकि इस ग्रन्थ में शिव और पार्वती के विवाह का वर्णन है। यह 164 पदों का ग्रन्थ है, जिसका आरम्भ मंगलाचरण से और समापन स्वस्ति वचन से है। इसमें भी जानकी मंगल की तरह ही हंसगति छन्द और हरिगीतिका का प्रयोग किया गया है। हिन्दी की मंगल काव्य परम्परा में तुलसी के इन मंगल काव्यों का महत्वपूर्ण स्थान है।

(2) गीति काव्य

गीतिकाव्य को मुक्तक अथवा अनिबद्ध काव्य के अन्तर्गत वर्गीकृत किया गया है। पद्य–काव्य के भीतर छन्द अनिवार्य होता है। इसमें भी कुछ संगीत के आधार पर गाये जा सकते हैं और कुछ केवल पढ़े जा सकते हैं। इस दृष्टि से अनिबद्ध काव्य के दो भेद होते हैं– पाठ्य और गेय। इस तरह के भेद प्राचीन काव्य शास्त्रों में देखने को नहीं मिलते हैं, इन्हें आधुनिक दृष्टि से ही वर्गीकृत किया गया है। गेय काव्य के भी दो भेद होते हैं– कलागीत और लोकगीत। गेय काव्य के इन भेदों के भी उपभेद स्वीकार किये गये हैं– भाव प्रधान (गीति) और वर्णन प्रधान (गान)। इन उपभेदों में भाव प्रधान गीति ही गीति काव्य कहलाते हैं और आधुनिक साहित्य में इस रूप ने विशेष विकास किया है। इस काव्य की कुछ विशेषताएं निम्नवत मानी जातीं हैं–

(1) गीतिकाव्य गाये जाने योग्य होना चाहिए।

(2) इसमें स्वानुभूति का प्रकाशन होना चाहिए।

(3) इसमें सुकुमार भावों की घनीभूत तीव्र अभिव्यक्ति होनी चाहिए।

(4) एक पद में एक ही भाव की विवृद्धि होनी चाहिए।

(काव्य शास्त्र– डॉ0 भगीरथ मिश्र, पृ0 64)

गीतिकाव्य हिन्दी में नवनिर्मित शब्द है जो लिरिक (Lyric) के पर्यायरूप में अधिकांशतः स्वीकृत है। इस शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग स्व0 श्री लोचन प्रसाद पाण्डेय द्वारा माना जाता है। डॉ0 ब्रजेश्वर वर्मा के अनुसार पाण्डेय जी ने इस शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग अपनी 'कविता–कुसुम–माला' की भूमिका में किया था।

(हिन्दी साहित्य कोश– प्र0 सं0 –डॉ0 धीरेन्द्र वर्मा, पृ0 260)

जयदेव और मैथिलकोकिल विद्यापति की पद परम्परा द्वारा सम्पोषित जिस गेय का विकास हुआ, वही गीतिकाव्य कहलाया। जैसा सर्वमान्य रहा है कि गीतिकाल अंग्रेजी के लिरिक (Lyric) शब्द के प्रभाववश सामने आया है। गीतिकाव्य का विकास भी 'लिरिक' की तरह ही

हुआ है। अंग्रेजी का लिरिक पहले वाद्ययंत्रों पर गाया जाने वाला काव्य था बाद में वाद्ययंत्र की दासता से मुक्त होकर निजी संगीतात्मकता, शब्द चयन की सुकुमारता, भाषा की ध्वन्यात्मकता आदि के अधीन हो गया। आज गीतिकाव्य के मूल्यांकन के उसके अपने मानदण्ड हैं, शास्त्रीय राग रागनियां नहीं।

डिक्शनरी ऑफ दि वर्ल्ड लिटरेचर के अनुसार – गीतिकाव्य का सामान्य प्रयोग (प्रायः) एक छोटी व्यक्तिपरक कविता है।' (lyric : a usually) short, personal poem : Dictionary of the word Literature- edited by Joseph T. Shipley- page 364) महादेवी वर्मा के अनुसार गीति साधारणतः व्यक्तिगत सीमा में तीव्र –दुखात्मक अनुभूति का वह शब्दमय रूप है जो अपनी ध्वन्यात्मकता में गेय हो सके।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के मतानुसार 'आधुनिक प्रगीत मुक्तक कवि के भावावेग के क्षणों की रचना होते हैं, इनमें शास्त्र–प्रसिद्ध व्यापार–योजना की आवश्यकता नहीं होती।'

(हिन्दी साहित्यः उद्‌भव और विकास, पृ0 542)

नन्ददुलारे वाजपेयी की परिभाषा के अनुसार गीतिकाल बाहय चित्रण से दूर केवल भाव–प्रतिभा है, इसमें वस्तु की अपेक्षा कवि–व्यक्तित्व की प्रधानता रहती है।

गीति काव्य को लेकर विद्वान समय–समय पर अपनी–2 परिभाषाओं, मान्यताओं को स्थापित करते रहे। संक्षेप में निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि– 'गीतिकाव्य वह काव्य है जिसकी आत्मा अन्तर्निहित संगीत से युक्त, अपने स्रष्टा की हृदयानुभूतियों का सहज विस्फोट हो और जिसका कलेवर अपनी रचना में किसी नियम का अनुगामी न होकर भी सुगठित एवं स्वस्थ हो कि भाव के आंकलन व विकास में स्वतः समर्थ बने रहकर रसानुभूति करा सके।' *(हिन्दी गीतिकाव्य –डॉ0 रामेश्वर प्रसाद द्विवेदी, पृ0 17)*

गीतिकाव्य की परिभाषा की तरह उसके तत्त्वों की भी वृहद चर्चा विद्वानों द्वारा की गई। डॉ0 सच्चिदानन्द तिवारी गीतिकाव्य में 1. संगीतात्मकता 2. अध्यान्तरिकता तथा भावना की सार्वभौमता 3. भावान्विति 4. लघुता 5. उच्चकोटि की गम्भीरता तथा 6.स्वाभाविकता

तत्त्वों को मान्यता दी है। (आधुनिक हिन्दी कविता में गीति तत्त्व – *डॉ0 सच्चिदानन्द तिवारी, पृ0 24)*

डॉ0 नगेन्द्र ने गीतिकाव्य के तत्त्वों में दो ही तत्त्व प्रमुख मानें हैं–

1–आत्मनिवेदन 2–मनोरंजन

(विचार और अनुभूति, डॉ0 नगेन्द्र, पृ0 121)

सर्वमान्य रूप से गीतिकाव्य में जिन तत्त्वों को समाहित माना गया है। वे हैं–

1–वैयक्तिकता 2–संगीतात्मकता

3–भावन्विति 4–संक्षिप्तता 5–लालित्य अभिव्यक्ति

(1) वैयक्तिकता–

वैयक्तिकता से तात्पर्य कवि के निजी दुःख–सुख से है। इसमें कवि स्वयं के सुख–दुख, हर्ष–विषाद आदि को चित्रित करता है। इसमें घटनाएं नहीं आतीं वरन् प्रभाव रूप में इनका चित्रण होता है। ये सुख–दुःख गीतिकाव्य की भूमिका कहे जाते हैं। गीतिकाव्य में कवि अपनी घनीभूत रागात्मक अनुभूति को वाणी देता है। अनावश्यक वर्णन के लिए यहां लेशमात्र भी स्थान नहीं होता है।

जो घनीभूत पीड़ा थी, मस्तक में स्मृति सी छाई,
दुर्दिन में आँसू बनकर, वह आज बरसने आई।।

(आँसू–जयशंकर प्रसाद)

दिन जल्दी जल्दी ढलता है।
बच्चे प्रत्याशा में होंगे
नीड़ों से झांक रहे होंगे
यह ध्यान परों में चिड़िया के भरता कितनी चंचलता है।
मुझसे मिलने कौन विकल
मैं होऊँ किसके हित चंचल

यह प्रश्न शिथिल करता तन को भरता डर में विहवलता है।

(निशा निमंत्रण–बच्चन)

डॉ0 भगीरथ मिश्र ने स्पष्ट किया है कि 'काव्य का प्रमुख कार्य हमारे आन्तरिक जीवन की अभिव्यक्ति है। बाहय जगत् का वर्णन और चित्रण भी कवि ऐसा ही करता है, जैसा कि उसका प्रभाव और प्रतिबिम्ब उसके मन पर पड़ रहा है।'

(काव्यशास्त्र– डॉ0 भगीरथ मिश्र, पृ0 34)

(2) संगीतात्मकता–

संगीत विश्वात्मा की अभिव्यक्ति का प्रथम साधन है। भाषा और साहित्य के जन्म और निर्माण के पूर्व ही संगीत अपनी ध्वन्यात्मकता में सजग था। संगीत और काव्य का नाता चिर–युगीन हे। गीतिकाव्य में भी एक ओर भाव सम्पदा का संयोजन होता है तो दूसरी ओर संगीत का समावेश भी। गीतिकाव्य में संगीतात्मकता दो प्रकार की हो सकती है– प्रथम जहाँ संगीत की अन्तर्योजना होती है; द्वितीय, जहाँ संगीत के शास्त्रीय पक्ष का विधान होता है। इसमें प्रथम प्रकार का संगीत ज्यादा प्रचलित है। इसमें कवि का नाद सौन्दर्य, ध्वन्यात्मकता ताल–लय, पद योजना आदि के माध्यम से संगीतात्मकता उत्पन्न की जाती है।

खग कुल कुल सा बोल रहा,
किसलय का अंचल डोल रहा,
लो यह लतिका भी भर लायी–
मधु मुकुल नवल रस गागरी।
बीती विभावरी जाग रही।

(3) भावान्विति–

भावावेश गीतिकाव्य का मूल तत्त्व है। गीति अपने भावात्मक रूप में स्वतः पूर्ण होता है। उसके साथ कल्पना और चिन्तन सहायक अंग रूप में कार्य करते हैं। कवि की

सफलता इसी में है कि उसकी अनुभूति कलात्मक होने पर भी सभी को अपनी अनुभूति जान पड़े।

गीतिकाव्य में एक ही भाव विचार अथवा परिस्थिति का चित्रण होता है। इससे सम्पूर्ण गीत में एक सूत्रता बनी रहती है और वह एक पूर्ण इकाई प्रतीत होता है।

रांगेय राधव का इस बारे में मत है कि 'भाव, विभाव, संचारी, व्याभिचारी, आदि के वर्णन की स्वतन्त्रता तथा गुंजायश से प्रबन्ध काव्य में तो रस की निष्पत्ति हो जाती है, परन्तु गीतिकाव्य में, एक ही गति में, एक ही भाव का वर्णन होता है, अतः वहाँ फैल फूटने के अवसर नहीं मिलता'

(आधुनिक हिन्दी काव्य में विषय और शैली–डॉ0 रांगेय राघव, पृ04 उद्धृत–हिन्दी गीतिकाव्य–डॉ0 रामेश्वर प्रसाद द्विवेदी, पृ0 25)

(4) संक्षिप्तता–

गीतिकाव्य में केवल एक ही संवेगात्मक अनुभूति का चित्रण होता है, यदि कोई अन्य अनुभूति होती भी है तो अति गौण स्थिति में। इसी से स्पष्ट होता है कि गीतिकाव्य में संक्षिप्तता हो, आकार सुगठित और सुसम्बद्ध हो। आचार्य सद्‌गुरुशरण अवस्थी का मानना है कि गीतों में गेयत्व की ही प्रधानता होनी चाहिए। उसमें संक्षिप्त करने की कला अपेक्षित नहीं। तथ्य के आकार का छोटा होना दूसरी बात है और बड़े तथ्य को छोटा करने का प्रयास करना दूसरी बात है। वर्तमान कवियों के बड़े लम्बे–लम्बे गीति देखे गये है, परन्तु गीति एक सीमा से बड़े नहीं हो सकते।'

(उद्धृत–हिन्दी गीतिकाव्य–डॉ0 रामेश्वर प्रसाद द्विवेदी, पृ0 27)

(5) लालित्य अभिव्यक्ति–

गीति काल में माधुर्य एवं लालित्य का विशेष महत्व है। कोमल पद योजना, सुकुमार कल्पना, सहज अलंकार विधान, चित्रात्मकता गीति काव्य के प्रमुख तत्त्व माने गये हैं। ये सारे के सारे तत्त्व सहज रूप में कवि द्वारा प्रयुक्त होते हैं, सायास नहीं। गीतिकाव्य

की प्रभावोत्पादकता इतनी तीव्र हो कि वह पाठक श्रोता के मन में कौतूहल जागृत करे, अनुगूँज का ऐसा भाव उत्पन्न करे कि यह अनूगूँज आत्मा को तृप्त कर दे और प्राणों के प्राण को भी प्रेरणा देती रहे।

रात को कज्जल–तिमिर में झिलमिलाती
प्रात की कंचन–किरन–सी कौन तुम हो?
श्याम–पट में स्नात–स्मित–शशि–मुख छिपाये,
जुगनुओं के दीप अंचल में छिपाये,
दामिनी–दुति–ज्योति मुक्ताहार पहने,
इन्द्रधनुषी कंचुकी तन पर सजाये
बूँद के घुँघरू बजाती पल निमिष चल
लोचनों में अश्रुधन–सी कौन तुम हो?

(प्राणगीत–नीरज)

तुलसीदास के प्रमाणिक 12 ग्रन्थों में से विनय पत्रिका, गीतावली और श्रीकृष्णगीतावली को गीतिकाव्य के अन्तर्गत माना गया है। साहित्य और काव्य का अन्तर्सम्बन्ध हमेशा से रहा है। शोधार्थी ने अपने शोधप्रबन्ध के द्वारा तुलसीदास के गीतिकाव्य माने गये ग्रन्थों –विनयपत्रिका, गीतावली और श्रीकृष्णगीतावली में गीतिकाव्य के तत्वों का अध्ययन करने का प्रयास किया है।

(1) विनयपत्रिका–

भारतीय काव्य–परम्परा में अधिकांशतः मनीषियों, विद्वानों में अपने व्यक्तित्व को उसी समाज में समाहित कर दिया। इसी कारण वे अपने विषय के बारे में बहुत कम बताते हैं। इसी कारण से तमाम सारे मनीषियों के बारे में अभी तक पूर्णतया ज्ञात नहीं हो सका है। तुलसीदास के बारे में भी बहुत कम ज्ञात है। तुलसीदास ने अपने ग्रन्थों में अपने बारे में जीवन सम्बन्धी उक्तियां भी रखीं हैं। ये उक्तियां उनके बारे में सम्पूर्ण चित्र प्रस्तुत नहीं

तुलसीदास विवाहोपरान्त पूरी आशक्ति और निष्ठा से गृहस्थ जीवन में लीन हो गये थे। सब कुछ भुलाकर वे अपनी पत्नी के प्रेम में पग कर गृहस्थी में रम गये थे। इसके संकेत उन्होंने विनय पत्रिका में दिए हैं–

लरिकाई बीती अचेत चित, चंचलता चौगुने चाय।

जोबन–जुर जुबती–कुपथ्य करि, भयो त्रिदौष भरि मदन बाय।।

(विनय पत्रिका, 83–2,सं0 डॉ0 राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी, पृ0 95)

आत्म प्रकाशन में तुलसी द्वारा अपने जीवन की झांकी विशद् रूप में प्रस्तुत की गई। अपनी परेशानी, दीनता, दरिद्रता आदि के साथ अपनी वृद्धावस्था की समस्या को भी विनय पत्रिका में तुलसी ने दर्शाया है। वृद्धावस्था में शारीरिक–मानसिक विश्रान्ति का चित्रण सबल रूप में यहाँ किया है–

थके नयन पद पानि सुमति बल, संग सकल बिछुरयो।

अब रघुनाथ! सरन आयोजन भव–भव बिकल डरयो।।

(डॉ0 राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी–संक्षिप्त विनय पत्रिका, 91–4, पृ0 102)

शारीरिक कष्टों का, वृद्धावस्था का, अन्त समय का चित्रण तुलसीदास विनय पत्रिका में करते दिखे हैं साथ ही किसी आधिभौतिक बाधा का भी वर्णन करते हैं। कुछ टीकाकारों की दृष्टि में इस आधिभौतिक बाधा का तात्पर्य शारीरिक कष्टों से है, जिसे काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह, अहंकार आदि स्वीकारा गया है।

गाँव बसत बामदेव, मैं कबहुँ न निहोरे।

अधिभौतिक बाधा भई, ते किंकर तोरे।।

बेगि बोलि बलि बरजिए, करतूति कठोरे।

तुलसी दल रुँहयौ चहैं, सठ साखि सिहोरे।।

(डॉ0 राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी–संक्षिप्त विनय पत्रिका 8–3–4, पृ0 16)

काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि को अपनी पीड़ा बताया है। कुछ इसी तरह

करतीं हैं। रामचरित मानस, कवितावली, हनुमान बाहुक, दोहावली, विनयपत्रिका में ऐसी उक्तियां मिलतीं हैं। सबसे अधिक आत्माभिव्यक्ति का प्रकाशन विनय पत्रिका में हुआ है। इस आत्माभिव्यक्ति में वे हृदय को और अपने जीवन को उन्मुक्त कर भगवान राम के सम्मुख रख देते हैं, किन्तु ऐसा करने में अपने आपको श्रेष्ठ न बताकर अपनी हीनता और दीनता के ही अतिश्योक्तिपूर्ण चित्र खींचे हैं, जिन्हें कदापि जीवनी की संज्ञा नहीं दी जा सकती है।

विनय पत्रिका में तुलसीदास ने भक्ति भाव में अपने आपको दीन–हीन बताया है जो उनका सत्य चरित्र तो नहीं कहा जा सकता क्योंकि विद्वानों की सम्मति में तुलसीदास का चरित्र आदर्शो से परिपूर्ण है। उनकी आत्माभिव्यक्ति में दीन–हीन का रूप भले ही अतिश्योक्तिपूर्ण हो पर विनय पत्रिका में कहीं–2 तुलसीदास ने अपने जीवन से सम्बन्धित तथ्यों को भी प्रकट किया है। अपने जन्म–परिवार के बारे में बताते हुए वे कहते हैं–

दियो सुकुल जनम, सरीर सुन्दर हेतु जो फल चारि को।
जो पाइ पंडित परमपद पावत मुरारि पुरारि को।

(विनयपत्रिका--135–1) सम्पा–डॉ0 राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी, पृ0148

उनके माता–पिता द्वारा उनका परित्याग कर दिया गया था। इस निष्ठुरता पर वे खेद और क्षोभ दर्शाते हैं–

तनु जन्यो कुटिल कीट ज्यों, तज्यो मातु पिताहु।
काहे को रोष, दोष काहि धों मेरे ही अभाग मो सों सकुचत हुइ सब छाँछूं।

(विनय पत्रिका–275–2, सं0 डॉ0 राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी, पृ0294)

इसके अलावा तुलसीदास ने स्वयं को अभागा बताया तो कभी अपनी घोर दरिद्रता, दुर्दशा का चित्र खींचा है।

'आलसी अभागे मोसे तैं कृपालु पाले–पोसे,
राजा मेरे राजाराम, अवध सहरू।

(विनय पत्रिका, 250–1, सं0 डॉ0 राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी, पृ0264)

तुलसी ने दीन–हीन–दास्य रूप में अपने चरित्र का चित्रण किया है। राम की भक्ति भावना में उन्हें अपने चरित्र में कमियां मात्र ही दिखाई देतीं रहीं और इन्हीं को वे चित्रित करते रहे। तुलसीदास ने किसी भी रूप में अपने आपको श्रेष्ठ सिद्ध करने का प्रयास नहीं किया है। तुलसीदास ने अपने को कपूत, कुसेवक, कुपंथी, नीच, खल, शठ, जड़, मूढ़, मंद बताकर अपनी निन्दा ही की है। विनय पत्रिका में ऐसे चित्रण यत्र–तत्र बिखरे पड़े हैं।

कायर कपूत–

'मोसे कूर कायर कुपूत कौड़ी आध के।
किये बहुमोल तैं करैया गीध–स्राध के।।' 179–4

कुंपथी, दुर्बुधि, छली–

रघुबरहिं कबहुँ मन लागिहै?
कुपथ, कुचाल, कुमति, कुमनोरथ, कुटिल कपट कब त्यागिहै।। 224–1

नीच–

करि कराल दुकाल दारून सब कुभाँति कुसाज।
नीच जल, मन ऊँच, जैसी कोढ़ में की खाज।। 219–1

जड़–

अब नाथहिं अनुरागु जागु जढ़, त्यागु दुरासा जीते।
बुझै न काम–अगिनि तुलसी कहुँबहु, विषय–भोग घी ते।। 198–4

एक स्थान पर तो वे स्वयं को पशु–पक्षियों से भी गया गुजरा बताने से भी पीछे नहीं रहते।

माधव जू! मो सम मन्द न कोऊ।
जद्यपि मीन पतंग हीनमति, मोहिं नहिं पूजै ओऊ।।
(डॉ0 राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी–संक्षिप्त विनय पत्रिका, 92–1, पृ0104)

तुलसीदास की यह आत्माभिव्यक्ति स्वयं को दास्य रूप में प्रस्तुत करने पर

ही उभरी है। भगवान से दया की याचिका करता तुलसी का चरित्र आदर्श को स्थापित करता है। तुलसी ने ऐसा आदर्श स्थापित किया जो उन्होंने स्वयं नहीं दर्शाया है। यद्यपि विनय पत्रिका में उनका जीवन चरित्र स्पष्ट नहीं है फिर भी गीतिकाव्य के आत्माभिव्यक्ति तत्त्व का पालन होता दृष्टिगत होता है। अपने बारे में कुछ भी न कह कर भी तुलसीदास ने अपने चरित्र को अनचाहे अपने पाठकों के समक्ष प्रस्तुत कर दिया है।

गीतिकाव्य के तत्त्वों में संगीतात्मकता को प्रमुखता दी गई है। कवि के शब्द, ताल–लय आदि के माध्यम से एक प्रकार की ध्वन्यात्मकता उत्पन्न होनी चाहिए। तुलसीदास ने विनय पत्रिका में सिद्धों, नाथों, सन्तों एवं भक्तों द्वारा प्रयुक्त शैली को अपनाकर उसके द्वारा पदों की रचना की है। सम्बोधन शैली में रचे गये पद विनय पत्रिका को स्थापित गीति काव्य सिद्ध करते हैं। गीतिकाव्य के रूप में स्वीकार विनय पत्रिका में तुलसीदास ने सन्तों का अनुसरण कर विविध रागों में पदों की रचना की है। संख्या की दृष्टि से यद्यपि पदों की संख्या सीमित है पर रागों का स्पष्ट प्रयोग तुलसीदास ने विनय पत्रिका में करके इसको गीतिकाव्य सिद्ध किया है तथा यह भी सिद्ध किया कि वे स्वयं त्रिगुण संगीतज्ञ थे और विविध रागों को जानकारी रखते थे। तुलसीदास ने संतों आदि का अनुसरण कर 23 रागों को ग्रहण किया जो इस प्रकार से हैं–

1–कल्याण	2– धनाश्री,	3– बिलावल,	4–बिलास
5–रामकली	6–सोरठ	7–गौरी	8–भैरव
9–आसावरी	10–केदारा	11–भैरवी	12–टोड़ी
13–कान्हरा	14–बसन्त	15–सारंग	16–जैतश्री
17–नट	18–ललित	19–सूहों बिलावल	20–दंडक
21–मलार	22–मारू	23–विभास।	

(डॉ0 गोपीनाथ तिवारी–विनय पत्रिका–पृ0150)

इन रागों मे दंडक राग का नाम संगीत शास्त्र में अप्राप्त है।

(वही, पृ0 150)

विनय पत्रिका में कुल 279 पद हैं। तुलसीदास ने इन पदों की रचना 23 रागों में कर विनय पत्रिका को संगीतात्मकता प्रदान की है। गोस्वामी तुलसीदास के द्वारा रागबद्ध किये पदों की संख्या प्रति राग अलग–अलग निम्नवत् है।

कल्याण– पद 208, 211, 214, 214–279 = 70 पद

धनाश्री राग– पद 4–5, 19–12, 25–29, 38–40, 85–105= 34 पद

बिलावल –पद सं0 1–3, 21, 32–35, 137,–154, 179–182 = 30 पद

विलास– पद सं0 107–134 = 28 पद

रामकली– पद सं0 6–9, 16–20, 46–61, 106 = 26 पद

सोरठ– पद सं0 162–178 = 17 पद

गौरी– पद सं0 31, 36, 45, 189–197 = 12 पद

भैरव – पद सं0 22, 65--73 = 10 पद

आसावरी– पद सं0 62, 183–188 = 7 पद

केदारा – पद सं0 41–44, 212–213 = 6 पद

भैरवी– पद सं0 198–203 = 6 पद

टोड़ी– पद सं0 78–82 = 5 पद

कान्हरा– पद सं0 24, 204–207 = 5 पद

बसन्त– पद सं0 13–14, 23, 64 = 4 पद

सारंग– पद सं0 30, 155–157 = 4 पद

जैतश्री– पद सं0 63, 83, 84 = 3 पद

नट– पद सं0 158–160 = 3 पद

ललित– पद सं0 75–77 = 3 पद

सूहों बिलावत– पद सं0 135, 136 = 2 पद

दंडक– पद सं0 37 = 1 पद

मलार–पद सं0 161 = 1पद

मारू–पद सं0 15 = 1 पद

विभास–पद सं0 74 = 1 पद

(डॉ0 गोपीनाथ तिवारी–विनय पत्रिका, पृ0 150)

संगीत शास्त्र में रागों का सम्बन्ध समय, रसों, और ऋतुओं से जोड़ा गया है। समय ऋतु आदि का भी तुलसीदास ने भली भांति पालन कर उसी के अनुसार अपनी विनय प्रदर्शित की है। इसका सर्वोत्कृष्ट उदाहरण राग केदारा के द्वारा इसे समझा जा सकता है–

कबहुंक अंब अवसर पाइ

मेरिऔ सुधि द्याइबी, कछु करुन कथा चलाइ।।1।।

दीन सब अंग हीन छीन मलीन अघी अघाइ।

नाम लै भरै उदर एक प्रभु दासी दास कहाइ।।2।।

बुझि है सो है कौन कहिबी नाम दसा जनाइ।

सुनत राम कृपालु के मेरी बिगरिऔ बनि जाइ।।3।।

जानकी! जग जननि जानकी किये बचन सहाइ।

तरै तुलसीदास भव तव नाथ गुन गन गाइ।।4।।

(डॉ0 गोपीनाथ तिवारी–विनय पत्रिका–41, पृ0166)

इस पद को देख कर स्पष्ट है कि तुलसीदास को रागों का ज्ञान भली भाँति था। राग केदारा के गाने का समय अर्द्ध–रात्रि का माना गया है। तुलसीदास को पता था कि माता जानकी इस समय भगवान राम के साथ अकेली होगीं। ऐसे में माँ अपने भक्त की बात को अच्छी तरह से कह सकेगीं और भगवान भी इस बात को ध्यानपूर्वक सुन सकेंगे। तुलसीदास स्वयं को भक्त के रूप में प्रस्तुत करते हैं और भगवान का नाम लेकर ही अपना जीवन व्यतीत करते हैं। कवि पापों से मलीन है, हेमन्त ऋतु भी कुहरे धुंध से मलीन रहती है। चूंकि केदारा का सम्बन्ध हेमन्त ऋतु से माना जाता है और तुलसीदास ने हेमन्त ऋतु

की व्यंजना शब्दों द्वारा सूचित की है।

तुलसीदास ने अपनी संगीत शास्त्र की जानकारी को अपने पदों में दर्शया है और विनय पत्रिका को गीतिकाव्य के रूप में स्थापित कर अपनी संगीत निपुणता को सिद्ध किया।

गीतिकाव्य के लिए भावानुकूलता अथवा भावान्विति का होना भी आवश्यक माना गया है। विनय पत्रिका में किसी प्रकार का कथानक नहीं है लेकिन आदि से अन्त तक भावबोध में किसी प्रकार की शिथिलता नहीं दिखाई पड़ी है। विनय पत्रिका में तुलसीदास अपनी दीनता हीनता की विनय भगवान राम के पास भेजते हैं। इसके लिए वे कभी हनुमान लक्ष्मण, भरत, शत्रुघन आदि से प्रार्थना करते भी दिखे हैं। विनय पत्रिका के पद यद्यपि स्फुट हैं किन्तु आदि से अन्त तक एक व्यवस्थित भाव धारा बहती दिखती है। विनय–पत्रिका के पदों की रचना यद्यपि एक समय, एक स्थान पर नहीं हुई है पर उनकी क्रमबद्धता कहीं विश्रृंखलित होती नहीं प्रतीत हुई है। पदों का सम्बन्ध काशी से, अयोध्या, चित्रकूट बद्रिका आश्रम और उसके मार्गो से दिखाया गया है। इन समस्त पदों के साथ देवी की स्तुतियां इस क्रम से विनय पत्रिका में चित्रित हैं कि भावबोध विनय पत्रिका के प्रारम्भ, मध्य और अन्त तक समृद्ध रूप से दिखाई देती है। आरम्भ में पंच देवताओं की स्तुति कर राम की भक्ति मांगी गई है। अन्य लोगों सहित माता जानकी की भी स्तुति की गई है। सभी का समर्थन तुलसीदास को मिल गया। राम ने मुस्कुरा कर अन्त में विनय पत्रिका स्वीकारी। इस प्रकार विनय पत्रिका आदि से अन्त तक श्रृंखलित रूप से भावान्विति का चित्रण प्रस्तुत करती है।

विनय पत्रिका भक्ति रस का असाधारण काव्य है। दार्शनिक और साहित्यिक दृष्टि से यह उत्कृष्ट कृति है। इसमें भक्तिरसमयता और संगीतात्मकता भी अनुपम रूप से विद्यमान है। विनय पत्रिका कवि के अन्तर्जगत का काव्य है यह कथानक शून्य है। भक्त तुलसीदास अपने आराध्य से अपनी आत्मशुद्धि और अपने उद्धार के लिए प्रार्थना करता है। शान्त रस में प्रवाहित भावनाएँ केवल अंत में संचारी भाव लेकर सामने आती हैं चूंकि कवि

तुलसीदास के सामने किसी प्रकार की कथा को प्रस्तुत करना ध्येय नहीं था, वह अपने आराध्य के सामने अपनी विनय को प्रस्तुत करता है। इसी कारण से विनय पत्रिका संक्षिप्तता की पूर्ति भी करती है।

गोस्वामी तुलसीदास भावुक कवि माने गये हैं। भावों के सागर में उनकी पैठ तीव्र और गहरी है। भावों के साथ वे अलंकारों का भी सुन्दर प्रयोग करते नजर आते हैं। विनय पत्रिका में अलंकार का लालित्य पग–पग पर दिखाई पड़ता है। अनुप्रास, उपमा, रूपक आदि अलंकार पूर्ण शोभा के साथ विनय पत्रिका में उपस्थित रहे हैं। अक्षर अनुप्रास के कुछ उदाहरण निम्नवत हैं–

अघ अनेक अवलोकि आपने,
अनघ नाम अनुमानि डरौं। (पद सं0 141)
छप्पनवें पद में भी इसी तरह का प्रयास है–
दनुजसूदन दयासिंधु दंभापहन दहन दुर्दोष दुष्पापहर्ता।
दुष्टतादमन दमभवन दुःखौधर दुर्ग दुर्वासनाना–सकर्ता।।1।।
भूरि भूषन भानुमंत, भगवंत्, भव भंजनाभयद भुवनेस भारी।
भावनातीत भववंद्य भव भक्तिहित भूमि उद्धरन भूधरनधारी।।2।।
(पद सं0 56)

(डॉ0 गोपी तिवारी– विनय पत्रिका, पृ0 131–132)

इन पदों में क्रमशः अ, द और भ वर्ण की पुनरावृत्ति से अक्षर अलंकार परिलक्षित होता है। इस तरह के अलंकार सम्पूर्ण विनय पत्रिका में दिखाई देते हैं। अक्षर अनुप्रास के साथ रूपक अलंकार का प्रयोग तुलसीदास ने सरल, सुन्दर रूप से किया है।

'काम–भुजंग डसत जब जाही। विषय नींव कटु लगत न ताही।' (पद 127)
'हरति एक अध असुर जालिका। तुलसिदास प्रभु कृपा कालिका।' (पद128)
'तुलसिदास भव व्याल ग्रसित तव सरन उरग रिपुगामी।' (पद 117)

(डॉ0 गोपीनाथ तिवारी, विनय पत्रिका, पृ0133)

उपमा अलंकार के कुछ उदाहरण–

पाथ माथे चढ़े तृन तुलसी ज्यों नीचो। (पद 72)

विष्णु पद कंज मकरन्द इव अम्बु वर बहसि। (पद 18)

तदपि न तजत स्वान अज खर ज्यों फिरत विषय अनुरागे।' (पद 117)

(वही पृ0 134)

यमक–

'हरति सब आरति आरती राम की।' (पद 48)

'जगदीस जीवन जीव को जो साज सब सबके सजै।' (पद 135)

'हरि परि हरि सोइ जतन करत मन मोर अभागी।' (पद 110)

(डॉ0 गोपीनाथ तिवारी, विनय पत्रिका, पृ0 135)

तुलसीदास अलंकारों के प्रयोग के साथ–2 छन्द योजना, शब्द चयन, उपमान आदि में लालित्य प्रस्तुत करते दिखे हैं। उपमानों को लेकर तुलसीदास ने अपनी लालित्यनिपुणता को दिखाया है। सागर, सरिता, मार्ग, शूल को बारम्बार उपमान रूप में प्रस्तुत किया है। इन शब्दों को भव उपमेय के रूप में प्रयुक्त करने के साथ नाम के भी अनेक उपमान प्रस्तुत किये हैं। तुलसीदास ने नाम को पाथेय, सखा, ग्राहक दानी हाथ, कल्पवृक्ष, मेघ, सुधा, सूर्य आदि भी बताया है। भक्त के हृदय के भवन के रूप में बताकर तुलसीदास ने उसमें सुख, ज्ञान, गुण आदि रखने की बात कही है–

'विज्ञान भवन गिरि सुता रवन।' (पद 13)

'ग्यान भवन तनु दिएहु नाथ सोउ पायन मैं प्रभु जाना।' (पद 114)

'देव सील समता भवन विषमता मति समन।' (पद 55)

(डॉ0 गोपीनाथ तिवारी, विनय पत्रिका, पृ0 138)

अलंकारों आदि के प्रयोग के साथ तुलसीदास ने भाषा शैली का भी सुन्दर प्रयोग किया है। मुहावरों का प्रयोग भी विनय पत्रिका में सर्वत्र परिलक्षित है– जागत बागत

(68), खोटो खरो (75), मुँहुं लाइकै (148), दाम कुदाम (151), साको जग्गत (152), न पायो पार (188), गाँठि बॉध्यो दाम (191), लोचन फेरो (272), नाच नचायो (276) आदि उदाहरणों की सुन्दरता विनय पत्रिका में सर्वत्र बिखरी पड़ी है।

(वही, पृ0 147)

मुहावरों के अतिरिक्त लोकोक्तियों का भी प्रयोग हुआ है–

कुँजरो नरो। (226)

भव बेगरि मंह परि हौ। (189)

सावन के अंधाहि सूझत रंग हरो। (226)

चाटत रहयौ स्वान पातर ज्यौं। (226)

(डॉ0 गोपीनाथ तिवारी विनय पत्रिका, पृ0 148)

इसके साथ ही साथ छन्दबद्धता में भी तुलसीदास ने विनय–पत्रिका में विविधता दर्शायी है। सोलह मात्रा वाले छन्द, चौपाई, पायकुलक, अलिला, पहरी हैं तो 28 मात्राओं वाले हरिगीतिका, दोवै,सार आदि का प्रयोग भी हुआ है। ध्रुव पद शैली में स्वरों को चढ़ाया है तो वार्णिक छंदों में भी इस बात को ध्यान में रखा है। सवैया का प्रयोग है तो विजया छन्द को भी स्थान मिला है। कुल मिला कर कहा जा सकता है कि पदों में छन्दों का समावेश हुआ है, भले ही वह समान छन्द हो अथवा असमान छन्द।

तुलसीदास की विनय पत्रिका गीतिकाव्य में स्थान पाने की अधिकारिणी रही है। गीतिकाव्य के समस्त तत्वों को आत्मसात कर स्वयं को उत्कृष्ट कृति सिद्ध करती विनय पत्रिका ने गीति काव्य परम्परा को पुष्ट और समृद्ध किया वहीं तुलसीदास की योग्यता और साहित्यकता के साथ उनकी संगीत निपुणता को भी सिद्ध किया है। शोधार्थी ने भी विनय पत्रिका में छन्दों का प्रयोग, रागों के अनुपम प्रयोग का भान कर इसे शोधकार्य हेतु चयनित किया। यह भी विनय पत्रिका के गीति तत्व की श्रेष्ठता है जो आज भी पाठकों को अपनी ओर आकर्षित कर रही है।

गीतावली

गीतावली नामकरण से गीत की ध्वनि स्वतः ही प्रस्फुटित होती है। इसमें गीति तत्व की प्रधानता को स्वीकारा जा सकता है। गीतावली में कवि अपने इष्टदेव की झांकी, अतिशय ललित एवं मार्मिक भावों की अभिव्यक्ति में तत्पर रहता है। कौशल्या, सुमित्रा के भावों की अभिव्यक्ति, दशरथ का मनस्ताप, लक्ष्मण, विभीषण, हनुमान के हृदयोद्गार, ग्राम वनिताओं द्वारा छवि दर्शन, जटायु का संकल्प, अयोध्या का वसन्तोत्सव आदि प्रसंग पाठकों के हृदय में पूर्णतः बसने में समर्थ हैं। इस दृष्टि से गीतावली को गीतिकाव्य की श्रेणी में स्वीकार किया गया है। गीतिकाव्य की विशेषताओं को गीतावली ने किस स्तर तक स्वयं में सहेजा है, यह शोधार्थी के लिए शोध का विषय है।

1–वैयक्तिकता

गीतावली कथात्मक गीतकाव्य के रूप में रचित है। इसमें पात्रों के प्रति कवि की भावना सहानुभूतिपूर्ण की रही हैं। वैयक्तिक्ता प्रधान गीतिकाव्यों की भांति गीतावली में कवि को आत्माभिव्यक्ति का पर्याप्त अवकाश प्राप्त नहीं हुआ है। पात्रों के द्वारा ही, उनकी आत्माभिव्यक्ति के द्वारा परिस्थितियों और पात्रों की मनोस्थिति के अनुसार कवि ने आत्माभिव्यक्ति की है। गीतावली चूंकि कथात्मक गीति–काव्य है, इस कारण से कथाप्रवाह के साथ–2 पात्रों की वैयक्तिक विशेषताओं का भी विकास होता रहा है। इसी विकास के साथ कवि ने पात्रों की आत्माभिव्यक्ति से स्वयं को जोड़ रखा है। ऐसी आत्माभिव्यक्ति वैयक्तिक अंश से की गई आत्माभिव्यक्ति से अधिक मर्मस्पर्शी होती है। तुलसीदास ने विविध पदों में वैयक्तिक भावों का स्पर्श करा कर उसे प्रभावकारी बना दिया है। पात्रों के द्वारा वर्णित प्रसंगों को यदि तुलसीदास द्वारा वर्णित समझा जाये तो भी किसी तरह का व्याघात उपस्थित नहीं होता है। इस समय भी ऐसा ही प्रतीत होता है जैसे स्वयं तुलसीदास वैयक्तिक रूप से अपने आराध्य से ऐसा वर्णन कर रहे हों। भरत के द्वारा की जा रही विनती के निम्न उदाहरण से यदि भरत पक्ष को हटा कर देखा जाये तो तुलसीदास की विनय ही प्रदर्शित होती है।

'जानत हौं सबही के मन की।

तदपि, कृपालु ! करौं विनती सोइ सादर सुनहु दीन–हित जनकी।।

ए सेवत संतत अनन्य अति, ज्यों चातकहि एक गति घनकी।

यह बिचारि गवनहु पुनीत पुर, हरसु दुसह आरति परिजन की।।'

(गीतावली : अयोध्या कांड–71, पृ0 217)

इन पंक्तियों के तुलसीदास की विनय ही प्रदर्शित हो रही है जो उनकी वैयक्तिक्ता को दर्शाता है।

आत्माभिव्यक्ति के रूप में तुलसी के दैन्य रूप का एक चित्रण निम्न उदाहरण से दिया जा सकता है। इस पद में विभीषण के स्थान पर तुलसी की पद योजना से भावा –भिव्यक्ति में किसी भी प्रकार का अन्तर नहीं होगा–

कहो, क्यों न विभषीन की बनै?

गयो छाड़ि छल सरन राम की, जो फल चारि चारयौ जनै।।1।।

मंगल मूल प्रनाम जासु जग, मूल अमंगल के खनै।

तेहि रघुनाथ हाथ माथे दियो, को ताकी महिमा भनै।।2।।

नाम–प्रताप पतित पावन किये, जे न अघाने अघ अनै।

कोउ उलटो, कोउ सूधो जपि भए राजहंस बायस–तनै।।3।।

हुतो ललात कृसगात खात खरि, मोद पाई कोदो–कनै।

सो तुलसी चातक भयो राम–स्याम सुन्दर घनै।।4।।

(गीतावली, सुन्दर काण्ड–40, पृ0291)

गीतावली में यत्र–तत्र इस प्रकार के उदाहरण बिखरे पड़े हैं। जिनमें गीति–काव्य हेतु वैयक्तिकता तत्व का समावेश पर्याप्त रूप में मिल जाता है। कवि ने अपने बाहर की वस्तु को जिस रूप में देखा है उसी रूप में वर्णन किया है। जिस रूप में अनुभव करता है उसे रूप में प्रस्तुत करता है।

'विनती भरत करत कर जोरे।

दीनबंधु! दीनता दीनकी कबहुं परै जनि भोरे।।1।।

तुम्हसे तुम्हरि नाथ मोको, मोसे जन तुमको बहुतेरे।

इहै जानि, पहचानि प्रीति, छमिए अघ–औगुन मेरे।।2।।

(गीतावली: अयोध्याकाण्ड–76, पृ0 220)

'आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार तुलसी के भक्त ह्रदय की वैयक्तिक्ता में तथा भक्ति के प्रवाह में मनुष्य मात्र के व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति है और पात्र–परिस्थिति के प्रसंगों में बँधी हुई अभिव्यक्ति आत्म–कथन का ही कोई रूप है।'

(गीतावली–विमर्श, डॉ0 रमेशचन्द्र मिश्र, पृ071)

गीतावली में भले ही प्रत्यक्ष रूप में तुलसीदास ने वैयक्तिक्ता प्रकट न की हो पर अप्रत्यक्ष रूप से पात्रों के माध्यम से वे आत्माभिव्यक्ति करते रहे हैं। गीतावली को गीति काव्य रूप में स्वीकार करने में वैयक्तिकता की कसौटी भले ही पूर्णतः सिद्ध न हो रही हो पर आत्माभिव्यक्ति का एक रूप प्रदर्शित तो करती ही है।

(2) संगीतात्मकता–

संगीत तत्व गीतों की आत्मा माना जाता है। राम विषयक गीतों के इस काव्य–गीतावली –में प्रसंगों में गीति तत्व, संगीतात्मकता विखरी हुई है। कवि ने गीतों में संगीत तत्वों का विशेष ध्यान रखा है। 'गेयता अथवा संगीतात्मकता के साधक, उपादान है– गीतों में माधुर्य गुण की प्रधानता, भावों की नैसर्गिक सुकुमारता, कर्णकटु वर्णो तथा दीर्घ समासों का तिरस्कार और कोमलकान्त पदावली की योजना। साथ शास्त्रीय दृष्टि से उपनागरिका वृत्रि की अतिशयता, भावों के अनुकूल शास्त्रीय रागों की योजना संगीतात्मक प्रभाव को बढाने में सहयोग देती है।' *(डॉ0 रमेश चन्द्र मिश्रा–गीतावली विमर्श, पृ0 71)* कवि ने गीतावली में रागों को विशेष रूप से ध्यान में रख कर गीतों की रचना की है। यथास्थान गीतों के शीर्ष पर अनुकूल रागों के नाम अंकित कर राग–योजना प्रदर्शित की है।

गीतावली के सात काण्डों–बाल, अयोध्या, अरण्य, किष्किन्धा, सुन्दर, लंका तथा उत्तर– में तुलसीदास ने कुल 21 प्रकार के रागों की योजना दर्शायी है। ये राग–आसावारी, जैतश्री, विलावल, केदारा, सोरठ, धनाश्री, कान्हरा, कल्याण, ललित, विभास, नट, टोड़ी, सारंग, सूहो, मलार, गौरी, मारू, भैरव, चंचरी, बसन्त और रामकली हैं। गीतावली का अध्ययन करने पर शोधार्थी को स्पष्ट हुआ कि इसके सातों काण्ड में पद संख्या की दृष्टि से लंका काण्ड सबसे बड़ा है, और किष्किन्धा काण्ड सबसे छोटा है। इन दोनों काण्डों में क्रमशः 110 तथा 2 पद हैं। पदों की संख्या के अनुसार भी तुलसीदास ने रागों का प्रयोग किया है। बालकाण्ड में तुलसी ने सर्वाधिक 7 रागों का प्रयोग किया है। इस काण्ड में तुलसी की राग योजना में आसावरी, जैतश्री, बिलावल, केदारा, सोरठ, धनाश्री, कान्हरा, कल्याण, ललित, विमास, नट, टोड़ी, सारंग, सूहो, मलार, गौरी और मारू रागों को शामिल किया। किष्किन्धा काण्ड में मात्र एक राग केदारा की योजना की गई है। इन गीतों की शब्द योजनाओं में लय प्रवाह को प्रधानता दी गई है।

बिलावल राग में भावों की उपयुक्तता के आधार पर मधुरता का प्रमाण निम्न उदाहरण से मिलता है–

सोहत सहज सुहाए नैन।
खंजन मीन कमल सकुचत तब जब उपमा चाहत कवि दैन।।1।।
सुन्दर सब अंगनि सिसु–भूषन राजत जनु सोभा आये लैन।
बड़ो लाभ, लालची लोभ बस रहि गयो लखि सुखमा बहु मैन।।2।।
भोर भूप लिये गोद–मोद भरे, निरखत बदन, सुनत कल बैन।
बालक रूप–अनूप–राम–छवि निवसति तुलसिदास–उर–ऐन।।3।।

(गीतावली: बालकाण्ड–35, पृ0 38)

इसमें कोमल वर्णो की योजना से राम की छवि की बिम्ब योजना, अपनी साकारता से सांगीतिक विशेषता प्रस्तुत करती है।

महाकवि तुलसीदास ने गीतावली में विविध मनोभावों की प्रस्तुति में विविध रागों की योजना की है। इसमें श्रृंगारमय, उल्लासमय, स्त्रीस्वभावोचित, उत्साहपूर्ण ओजस्वी, प्रवाहपूर्ण, घात–प्रतिघात युक्त, रुद्र भावों की योजना के अनुसार ही ललित, कान्हरा, घनाश्री, केदारा, मलार और सोरठ आदि रागों को स्थापित किया है। ओजस्वी, उत्साहपूर्ण भावों के लिए भैरव तथा मारू आदि रागों की योजना गीतावली में देखने को मिलती है।

गीतावली में प्रयुक्त इक्कीस रागों में से उदाहरणार्थ कुछ राग योजना निम्नवत् है–

ललित राग– भोर जानकी–जीवन जागे।

सूत मागध, प्रवीन, बेनु–बीना–धुनि, द्वारे, गायक सरसराग रागे।।1।।

स्यामल सलोने गात, आलसबस जँभात प्रिया प्रेमरस पागे।

उनीदें लोचन चारू, मुख–सुखमा सिंगार हेरि हारे मार भूरि भागे।।2।।

(गीतावली : उत्तरकाण्ड–2, पृ0 328)

राग कान्हरा– राजत राम काम सत–सुंदर

रिपु रन जीति अनुज संग सोभित, फेरत चाप–बिसिष वनरुह–कर।।1।।

राजिव नयन बिलोकि कृपा करि, किए अभय मुनि–नाग बिबुध–नर

तुलसिदास यह रूप अनूपम हिय–सरोज बसि दुसह बिपतिहर।।4।।

(गीतावली : लंकाकाण्ड–16, पृ0 318)

राग केदारा कहु, कबहुँ देखिहौं आली! आरज–सुवन।

सानुज सुभग–तनु जबतें विधुरे बन,

तबतें दव–सी लगी तीनिहू भुवन।।1।।

तुलसी त्रिजटा जानी सिय अति अकुलानी

मृदु–बानी कहयो ऐहैं दवन–दुवन।।2।।

तमीचर–तम–हारी सुरकंज –सुखकारी

रबिकुल–रबि अब चाहत उबन।।3।।

(गीतावली : सुंदरकाण्ड – 48, पृ0 298)

राग सोरठ– जबहि सिय–सुधि सब सुरनि सुनाई।

भए सुनि सजग, बिरहसरि पैरत थके थाह–सी पाई।।1।।

रटनि अकनि पहिचानि गीध फिरे करूनामय रघुराई।

तुलसी रामहि प्रिया बिसरि गई, सुमिरि सनेह–सगाई।।4।।

(गीतावली : अरण्यकाण्ड – 11, पृ0 240)

राग भैरव– देखि! द्वै पथिक गोरे–साँवरे सुभग हैं।

सुतिय सलोनी संग सोहत सुभग हैं।।1।।

मुनि बेष धरे, धनु सायक सुलग हैं।

तुलसी हिय लसत लोने लोने डग हैं।।4।।

(गीतावली : अयोध्याकाण्ड–27 पृ0 172)

गीतावली में विविध रागों की योजना प्रस्तुति में कवि ने भावों का, माधुर्य का विशेष ध्यान रखा है। गीतावली में प्रस्तुत 21 रागों में से कुछ रागों को लेकर विद्वानों में सहमति नहीं बन सकी है। गीतावली में वर्णित 21 रागों में से, कुछ विद्वानों का मानना है कि इसमें वर्णित 'चर्चरी' कोई राग नहीं हैं। यद्यपि 'गीताप्रेस से प्रकाशित गीतावली के 43 वें–44 वें चित्रकूट वर्णन वाले पद पर चर्चरी राग का नाम लिखा है। 'गीता–प्रेस' की प्रति में ही नहीं, काशी–नागरी–प्रचारिणी सभा, बैजनाथ जी तथा श्रीकांत शरण जी की गीतावली की प्रतियों के इन पदों में भी चर्चरी राग का उल्लेख है।

वचनदेव कुमार (निबंध संगीत, पृ0 526)

इससे टीकाकार ही नहीं आलोचक भी भ्रम की स्थिति में हैं। वस्तुतः चर्चरी होली गाने की एक पद्धति मात्र है या एक वर्णिक वृत्त, जिसमें अठारह वर्ण होते हैं या एक मात्रिक वृत्त,

जिसमें छब्बीस मात्राएं होती हैं। इसके प्रमाण के लिए काशी–नागरी–प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित 'शब्द–कोश' या 'छंद–शास्त्र' की पुस्तक देखी जा सकती है।'

वचनदेव कुमार(निबंध संगीत, पृ05 527)

इसी प्रकार 'सूहो विलावल राग का ही एक प्रकार है। अतः इसे भी स्वतंत्र राग मानना उपयुक्त नहीं। इस प्रकार चर्चरी और सूहो को हटा देने से 'गीतावली' में कुल उन्नीस राग ही प्रयुक्त हुए हैं।'

वचनदेव कुमार (निबंध संगीत, पृ0 527)

रागों को लेकर भले ही विवाद की स्थिति रही हो पर यह तो पदों की राग–योजना से ज्ञात होता है कि महाकवि तुलसीदास को रागों का, संगीत का ज्ञान था। इसी कारण उन्होंने समय विशेष के लिए प्रयुक्त होने वाले रागों को इसी अनुसार स्थान दिया है। महाकवि तुलसी अपने आराध्य राम के प्रति किसी भी क्षण को खाली नहीं छोड़ना चाहते थे। परिणामतः अपने ह्रदय की सारी विहवलता को उन्होंने उड़ेल दिया है। दिवस के प्रथम प्रहर वाले राग बिलावल, विभास, भैरव आदि से लेकर रात्रि के अंतिम प्रहर वाले रागों–बसंत,ललित आदि में गीतों का संयोजन किया है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि तुलसी की भावानुकूल राग–योजना, शब्द–योजना, माधुर्ययुक्त वर्ण–विधान उन्हें संगीतज्ञ सिद्ध करता है। इन्हीं गुणों के परिपाक से रची–बसी 'गीतावली' गीतिकाव्य में स्थान पाने की अधिकारिणी है। संगीतात्मकता और संगीतशास्त्र के नियम इनके ग्रंथ पर पूर्णतः खरे उतरते हैं।

3–भावान्विति–

'भाव' गीत का प्रमुख अंग माने जाते हैं। गीत–कवि के लिए संवेदनशील अथवा भावप्रणव होना अत्यावश्यक होता है। अपनी इसी विशेषता के कारण वह पात्रों पर स्वानुभूति एवं भावनाओं को अंकित कर पाता है। इस रूप में कवि तुलसी गीतावली में

निजत्व का प्रयोग पदों में 'तुलसी' नाम के प्रयोग द्वारा करते रहे हैं। भाव–व्यंजना का अभिव्यक्ति के साथ सम्बन्ध जोड़ कर उसका प्रभाव पाठक पर अंकित किया है।

मार्मिक स्थलों की अभिव्यंजना, रागात्मक प्रभावान्विति गीतावली के पदों में दिखती है। एक ही पद अथवा गीत में भाव प्रवणता इतनी सघन है कि पाठक अभिभूत हुए बिना नहीं रहता है–

रघुपति ! मोहि संग किन लीजै?

बार बार 'पुर जाहु' नाथ ! केहि कारन आयसु दीजै।।1।।

बंधु–बचन सुनि श्रवन नयन–राजीव नीर भरि आए।

x x x x

तुलसिदास प्रभु परम कृपा गहि बाँह भरत उर लाए।।5।।

(गीतावली: अयोध्याकाण्ड–74, पृ0219)

इसमें कवि ने स्वयं को भरत की परिस्थिति में ढाल कर उस अनुभूति को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया है। यह अभिव्यंजना उसी की वाणी से प्रस्फुटित हो सकती है जो भक्ति की तन्मयता में अपनी सुध, बुध तक खो बैठा हो। ऐसी स्थिति में गीत की वेदना, भावों की तरलता और मार्मिकता पद को भाव–व्यंजना से परिपूर्ण कर पाठक को भी भाव विभोर कर रहा है।

इसी तरह का एक अन्य भाव–प्रणय चित्रण का चरम उस समय भी मिलता है, जब लक्ष्मण मूर्च्छावस्था में है। राम वत्सल भाव से उन्हें अपने सीने से लगाये हैं। यहाँ भाव–विकास की चरमावस्था देखने को मिलती है–

राम लषन उर लाए हैं।

भरे नीर राजीव नयन, सब अंग परिपात तए हैं।।1।।

कहत ससोक बिलोकि बंधु–मुख बचन प्रीति गुथए हैं।

सेवक सखा भगति भायप गुन चाहत अब अथए हैं।।2।।

सुनि–प्रभु–बचन भालु, कपि–गन, सुर सोच सुखाइ गए हैं।

तुलसी आइ पवन सुत–विधि मानो फिरि निरमए नए हैं।।5।।

(गीतावली : लंकाकाण्ड–5, पृ0308)

गीतावली में एक संक्षिप्त गीत के द्वारा तुलसीदास ने मर्यादित दाम्पत्य प्रेम की व्यंजना, सुकुमार वर्णो में प्रस्तुत की है। राम सीता को सास–श्वसुर की सेवा में तत्पर रह कर अयोध्या में ही रहने को कहते हैं। यहाँ प्रयुक्त 'कामिनि' 'शब्द' किसी प्रकार से 'काम' सम्बन्धी अतिरंजित रति नहीं है वरन् उसमें पत्नी के प्रति पवित्र भावना ही व्यंजित होती है–

रहहु भवन हमरे कहे, कामिनि!

सादर सासु–चरन सेवहु नित, जो तुम्हरे अति हित गृह–स्वामिनि।।1।।

राजकुमारि! कठिन कंटक मग, क्यों चलिहौ मृदु पद गज गामिननि।

दुसह बात, बरषा, हिम आतप कैसे सहिहौ अगनित दिन जामिनि।।2।।

हौं पुनि पितु–आग्या प्रमान करि ऐहौं बेगि सुनहु दुति–दामिनि।

तुलसिदास प्रभु–विरह–बचन सुनि सहि न सकी, मुरछित भई भामिनि।।3।।

(गीतावली : अयोध्याकाण्ड–5, पृ0155)

इस पद में 'मुरछित भई भामिनि' से सम्पूर्ण परिस्थिति करुण होकर पाठकों के समक्ष सजीव हो उठती है। इसी प्रकार संयोग और वियोग की मर्यादित भावना भी गीत की सीमाओं में रहकर अपनी भावान्विति करने में, अभिव्यंजना करने में सफलता कवि को विविध पदों में मिली है। ऐसे भाव–चित्रणों में 'रति; 'काम' को अतिरंजित न दिखा कर उसे भव्य मर्यादा प्रदान कर भावों का चरम प्रस्तुत किया है–

संयोग–   भोर फूल बीनबे को गये फुलवाई हैं।

सीसनि टिपारे उपबीत, पीत पट कटि,

दोना बाम करनि सलोने भे सवाई हैं।।1।।

सखिन सहित तेहि औसर बिधि के सँजोग

x x x x

गिरिजाजू पूजिवेको जानकी जू आई हैं।।2।।

निरखि लषन–राम जाने ऋतुपति–काम

मोहि मानो मदन मोहिनी मूड़ नाई हैं।।3।।

x x x x

स्वामी, सीय, सखिन्ह, लषन तुलसी को तैसो

तैसो मन भयो जाकी जैसिये सगाई हैं।।4।।

(गीतावलीः बालकाण्ड–71, पृ0 105)

वियोग–

अतिहि अधिक दरसन की आरति।

राम–बियोग असोक विपटतर सीय निमेष कलपसम टारति।।1।।

बार–बार बर बारिजलोचन भरि भरि बरत बारि उर ढारति।

मनहु बिरह के सद्य घाय हिये लखि तकि–तकि धरि धीरज तारति।।2।।

तुलसिदास जद्यजि निसिबासर छिन–छिन प्रभुमूरतिहि निहारति।

मिटति न दुसह ताप तउ तनकी,यह बिचारि अंतर गति हारति।।3।।

(गीतावलीः सुन्दरकाण्ड–19, पृ0 270)

4–संक्षिप्तता–

गीतिकाव्य के गीतों में प्रभाव, भावों की मार्मिकता बढ़ाने के लिए संक्षिप्तता की आवश्यकता समझी जाती है। गीतावली के गीत भी संक्षिप्त है और पूर्ण भावान्विति के साथ पाठकों के समक्ष प्रस्तुत होते हैं। संक्षिप्त गीतों में कवि भावानुभूति की मार्मिकता पैदा करने में सफल रहा है। यद्यपि कहीं–2 गीत का विस्तार होने से, कथा विकास की दृष्टि से गीतों में वर्णनात्मकता भी आई है, भाव शैथिल्य भी हुआ है परन्तु कवि ने भावों की सघनता को समाप्त नहीं होने दिया है। इस तरह के पदों की संस्था अधिक नहीं है, दूसरे हमें यहाँ यह भी ध्यान रखना होगा कि गीतावली कथात्मक गीत–काव्य है, यहाँ कथा विकास हेतु गीतों का वर्णनात्मक हो जाना सम्भव होता है।

इन कुछ पदों को छोड़ दें तो सम्पूर्ण गीतावली में संक्षिप्त कलेवर में गीतों को प्रस्तुत कर राम के जीवन की झांकी को प्रस्तुत किया है जो मनोहारी भी है और संगीतम वातावरण भी उत्पन्न करती है। राम की शिशु लीला का मनोहारी चित्र तुलसीदास कुछ इस तरह प्रदर्शित करते हैं।

बिरहत अवध–बीथिन राम।
संग अनुज अनेक सिसु, नव–नील–नीरद–स्याम।।1।।
तरुन अरुन–सरोज–पद बनी कनकमय पदत्रान।
पीत–पट कटि तून बर, कर ललित लघु धनु–बान।।2।।
लोचनानि को लहत फल छबि निरखि पुर–नर–नारि।
बसत तुलसीदास उर अवधेस के सुत चारि।।3।।

(गीतावली: बालकाण्ड–41, पृ075)

तुलसीदास ने कथा विकास में एक–एक घटना के वर्णन हेतु पदों की रचना की है। छोटे–2 पदों के द्वारा उन्होंनें सरलतम रूप में दृश्यों को प्रस्तुत किया है। संक्षिप्तता की दृष्टि से देखने पर यह प्रयास सार्थक प्रतीत होता है। इसी तरह विभीषण का राम के पास आकर मिलने को तुलसीदास ने संक्षिप्त रूप में इस तरह चित्रित किया है–

रामहि करत प्रनाम निहारिकै।
उठे उमंगि आनन्द–प्रेम–परिपूरन विरद विचारिकै।।1।।
भयो बिदेह बिभीषन उत, इत प्रभु अपनपौ बिसारिकै।
भली भाँति भावते भरत–ज्यों–भेटंयौं भुजा पसारिकै।।2।।
x x x x
जो मूरति सपने न बिलोकत मुनि–महेस मन मारिकै।
तुलसी तेहि हौं लियो अंक भरि, कहत कछु न सँवारिकै।।5।।

(गीतावली : सुन्दरकाण्ड–36, पृ0287)

तुलसीदास ने यथासम्भव अपने पदों में संक्षिप्तता बनाये रखी है। संक्षिप्तता

के द्वारा वे भावों की मार्मिकता को प्रस्तुत करते रहे हैं। कथात्मक गीति–काव्य के बाद भी कथा विकास के नाम पर अनावश्यक वर्णन प्रस्तुत न कर तुलसीदास ने अपना लेखन कौशल ही दर्शाया है।

5–लालित्य अभिव्यक्ति–

किसी भी गेय काव्य में लालित्य का होना आवश्यक समझा जाता है। इससे काव्य के अंतरंग–पक्ष और बोधा पक्ष प्रभावी और उत्कर्ष प्राप्त करते हैं। इससे काव्य में सौन्दर्य–प्रतीति और बढ़ जाती है। गीतावली में तुलसीदास ने अलंकारों, रसों, भाषा शैली के द्वारा ललित्यपूर्ण पदों की योजना प्रदर्शित की है।

गीतावली तुलसीदास की भाव–प्रधान रचना है। तुलसीदास ने यद्यपि समास अलंकारों का प्रयोग नहीं किया है किन्तु अलंकारों के सहयोग से काव्यानुभूति को प्रखरता से प्रकट किया है। अलंकारों का स्वतः प्रयोग इस प्रकार से हुआ है कि शब्द और अर्थ दोनों का ही सम्यक सन्तुलन दृष्टिगत होता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार–"गोस्वामी तुलसीदास ने अलंकार प्रयोग में उत्कर्ष विधायक अलंकारों को ही महत्व दिया है। यह उत्कर्ष भावों की व्यंजना कराने में, वस्तुओं के रूप का अनुभव तीव्र कराने में, गुण का अनुभव तीव्र कराने में तथा क्रिया का अनुभव तीव्र कराने में सहायक सिद्ध हुआ है।"

(डॉ0 रमेश चन्द्र मिश्र– गीतावली–विमर्श, पृ0 79)

गीतावली में शब्दालंकार और अर्थालंकार दोनों की सम्यक् योजना हुई है। इसमें शब्द–संगठन प्रभावी होकर प्रदर्शित हुआ है। पाणित्य प्रदर्शन को द्योतिक करने वाले श्लेष और यमक की योजना गीतावली में अधिक नहीं मिलती पर अलंकारों का सौन्दर्यपरक चित्रण अवश्य मिलता है।

अनुप्रास–

(1) कौसिक सहित राम–लषन ललित नाम, लारिका ललाम लोने पठए बुलाइकै।
दिए दिव्य आसन सुपास सावकास अति, आछे आछे वीछे वीछे विछौना विछाइकै।।

(बालकाण्ड–81, पृ0117)

(2) सुकृत–सनेह–सील सुषमा–सुख सकेलि, *(अयोध्याकाण्ड–30, पृ० 175)*

(3) सरति–सरनि सरसीरुह–संकुल सदन सँवारि रमा जनु छाई।

(अयोध्याकाण्ड–46, पृ० 192)

(4) बार–बार बर बारि लोचन भरि भरि बरत बारि उर ढारति।

(सुन्दरकाण्ड–19, पृ0270)

(5) मलय मरूत मराल–मधुकर–मोर–पिक–समुदाई।

(उत्तरकाण्ड–33 पृ0374)

अनुप्रास योजना की दृष्टि से गीतावली अत्यन्त समृद्ध रचना है। शब्द–संहिति, नाद–संहिति, पद–संगठन, वर्ण–मैत्री आदि की दृष्टि से अनुप्रासों की योजना अत्यन्त प्रभावोत्पादक सिद्ध हुई है।

उपमा–

(1) कुँवर चढाई भौंहे, अब को विलोकि सोहैं,

जहँ तहँ भे अचेत, खेतके–से धोखे हैं।

(बालकाण्ड–95, पृ0133)

धनुषभंग के इस दृश्य में राजाओं द्वारा शेखी बधारने पर लक्ष्मण ने वक्र दृष्टि से देखा तो सारे राजा भयवश उसी प्रकार अचेत होने लगे जैसे खेत में लगे बिजूके को देखकर लोग भय से बेहोश हो जाते हैं।

(2) असन अजीरन को समुझि तिलक तज्यो,

बिपिन–गवनु भले भूखे को सुनाजु भो।

(अयोध्याकाण्ड–33, पृ0179)

इसमें राज्य सिंहासन को अनिष्ट भोजन मान कर त्यागना और वन गमन को भूखे के अनाज की भांति ग्रहण करने की बौद्धिक अनुकूलता की उपमाओं का सुन्दर उदाहरण है।

रूपक—

(1) आलबाल—अवध सुकाम तरू काम बेलि,

दुरि करि केकई बिपत्ति—बेलि बई है।

(अयोध्याकाण्ड—34, पृ0180)

इसमें राम और सीता रूपी कल्पवृक्ष और कल्पलता को त्यागकर कैकेयी के विपत्तिरूप बेल का आरोपण करने को रूपित किया गया है।

(2) तुलसि निरखि सिय प्रेमवस कहैं तिय,

लोचन—सिसुन्ह देहु अमिय घूटी।

(अयोध्याकाण्ड—21, पृ0167)

यह अतृप्त नयनों का ग्राम—वनिताओं के दर्शन में शिशु रूप सौन्दर्य की अमृत घुटी की कामना करने का रूपक है।

उत्प्रेक्षा—

(1) बालकेलि बातबस झलकि झलमलत

सोभा की दीयटि मानो रूप—दीप दियो है।

(बालकाण्ड—10, पृ0 39)

बाल क्रीड़ा में शिशु राम का वायु के झोकों से झिलमिलाते लगना उत्प्रेक्षा का उदाहरण कहा जायेगा।

अलंकारों के प्रयोग में तुलसीदास सदैव अग्रणी रहे है। गीतावली के विविध अलंकार इस तथ्य को प्रमाणित भी करते हैं। अलंकार विधान के अतिरिक्त रस—निरूपण में भी तुलसीदास गीतावली को सर्वोत्कृष्ट बना पाये हैं। वात्सल्य, श्रृंगार, करुण, वीर आदि रसों की अनुपम योजना तुलसीदास ने गीतावली में प्रस्तुत की है। वात्सल्य का वर्णन तुलसीदास ने बहुत ही सुन्दर रूप में किया है। बालकाण्ड में शिशु राम और उनके अनुजों की सखाओं सहित बाल केलि, शिशु राम का रूप वर्णन, माताओं का दुलार,

वन–गमन आदि के संश्लिष्ट उदाहरण देखे जा सकते हैं।

(1) छगन मगन अंगना खेलिहौ मिलि, ठुमक–ठुमक कब धैहो।

कल बल बचन तोतरे मंजुल कहि, 'माँ' मोहि बुलौहो।।

(बालकाण्ड–8, पृ0 37)

यहाँ माँ की उस मनःस्थिति का चित्रण है जो शिशु द्वारा 'माँ' कहने की ललक के साथ देखना चाहती है।

(2) माता लोरियां देकर शिशु को सुला रहीं हैं, शिशु तो सो नहीं रहा है और माता लोरियाँ देती भावना–नींद में तन्मय हैं। इसको कुछ इस प्रकार से चित्रित किया है–

ललन लोने लेरूआ, बलि मैया।

सुख सोइए नींद–बेरिया भई, चारु चरित चारयौ भैया।।

कहति मल्हाइ, लाइ उर छिन–छिन, छगन छबीले छोटे छैया।

मोद–कंद कुल कुमुद चन्द्र मेरे रामचन्द्र रघुरैया।। *(बालकाण्ड–20, पृ048)*

(3) संयोग के वर्णनों के अतिरिक्त वियोग वर्णनों को भी तुलसीदास ने भली–भाँति चित्रित किया है। पंचवटी के मार्ग पर राम द्वारा पेड़–पौधों, बेलों, खगों–मृगों से सीता की खबर पूछने की उन्मादपूर्ण दशा का उत्कर्ष कुछ इस प्रकार मिलता है–

चले बूझत बन--बेलि–बिटप, खग–मृग, अलि अवलि सुहाई।

प्रभु की दसा सो समौ कहिबे को कबि उर आह न आई।।

(अरण्यकाण्ड–111, पृ0240)

गीतावली भाव प्रधान काव्य रचना है। इसमें कथा विकास में मार्मिक स्थलों को चुन कर कवि ने भावों की निबन्धना की है। श्रृंगार रस के वर्णनों के साथ कहीं–कहीं वीरोत्साह के भी उदाहण भी मिले हैं। कार्य–तत्पर हनुमान के वीरोत्साह को तुलसीदास ने कुछ इस तरह प्रकट किया है--

जौ हौं अब अनुसासन पावौं।

तौ चन्द्रमहि निचोरि चैल–ज्यों, आनि सुधा सिर नावौं।।

कै पाताल दलौं व्यालावलि, अमृत–कुंड महि लावौं।

भेदि भुवन, करि भानु बाहिरो तुरत राहु दै तावौं।।

(लंकाकाण्ड– 8, पृ0310)

अलंकारों, रसों आदि का संश्लिष्ट वर्णन गीतावली में व्यापक रूप में हुआ है। इसके साथ प्रकृति चित्रण भी सुन्दरता से तुलसीदास ने किया है। प्रकृति को नैसर्गिक रूप में चित्रकूट वर्णन के समय, मानवीय विशेषताओं से युक्त वर्णन वन में मनमोहक रूप में हुआ है। प्रकृति वर्णन में तुलसीदास ने विविध रूपों की योजना गीतावली में प्रस्तुत की है। शब्दों, भाषा का माधुर्य भी तुलसी की कलम से गीतावली में परिलक्षित हुआ है। गीतावली की उक्त विशेषताएं उसे एक सफल गीतिकाव्य के रूप में स्थापित करती हैं।

श्रीकृष्ण गीतावली

श्रीकृष्णगीतावली के नाम से ही गीतों का प्रस्फुटन होता है जो श्रीकृष्ण के चरित्र का निरूपण करते हैं। तुलसीदास मूलतः भक्त कवि हैं और उनके आराध्य श्री राम रहे हैं। अपनी काव्य कृतियों की रचना उन्होंने भगवान राम को आधार बना कर ही की है। ऐसे में श्रीकृष्ण के प्रति अपनी भक्ति को दर्शा कर तुलसीदास ने अपनी सहृदयता का परिचय ही दिया है। श्रीकृष्ण गीतावली में श्रीकृष्ण के चरित्र का चित्रण किया गया है। यद्यपि यह सूरदास के चरित्र चित्रण की तरह अत्यधिक प्रभावकारी तो नहीं है पर श्रीकृष्ण कथा को विभिन्न आयामों में विभक्त कर सुन्दर व्यंजना के द्वारा प्रभावकारी बन पड़ा है। श्रीकृष्ण के बाल लीला, गोपी उपालम्भ, उलूखल–बंधन, गोवर्द्धन धारण, गोचारण, वंशीवादन, शोभा वर्णन, गोपी विरह और भक्त मर्यादा (रक्षण के प्रसंगों के द्वारा कथा की व्यजंना की है। गीतों के रसमय और माधुर्य होने के कारण इसे गीति–काव्य की श्रेणी में रखा गया है। श्रीकृष्ण गीतावली की गीतिकाव्य सम्बन्धी विशेषताओं को शोधार्थी द्वारा जानने का प्रयास निम्न बिन्दुओं के आधार पर किया है।

1—वैयक्तिकता—

गीति काव्यों की एक विशेषता वैयक्तिकता स्वीकारी गई है। तुलसीदास ने श्रीकृष्णगीतावली में गेय पदों के द्वारा श्रीकृष्ण के चरित्र को उभारा है। श्रीकृष्ण, गोपियों, यशोदा आदि के भावों को लेकर विषयानुसार पदों की रचना की गई है। कवि ने कहीं भी आत्माभिव्यक्ति के लिए अवकाश नहीं निकाला है। पात्रों की मनोस्थिति को कथा के अनुसार चित्रित किया है। चूंकि श्रीकृष्ण गीतावली गीतिकाव्य है, इसमें गेय पदों में मार्मिकता और रसमयता है, इसमें पात्रों का वैयक्तिक विकास स्वतः होता रहा है। इसी विकास के मध्य कवि ने मात्र कथा प्रवाह रखा है आत्माभिव्यक्ति के लिए स्थान नहीं निकाला है।

2—संगीतात्मकता—

संगीत को गीतों की आत्मा स्वीकारा जाता है। श्रीकृष्ण के चरित्र को केन्द्र में रख कर सृजित इस गीतिकाव्य में गीतों में संगीतात्मकता सर्वत्र बिखरी पड़ी है। पदों के गेय होने के कारण से कवि ने संगीतात्कता पर विशेष ध्यान रखा है। श्रीकृष्ण कथा को तुलसी ने 9 भागों में बाँट रखा है। 61 पदों में रचित इस गीतिकाव्य में पदों में सरसता और मनोहरता है। यह तुलसीदास द्वारा रागों के निरूपण से संभव हो सका है। इस छोटी सी गीति रचना में तुलसीदास ने दस रागों की योजना दर्शायी है। रागों में तुलसीदास ने आसावरी, कान्हरा, केदारा, गौरी धनाश्री, नट, बिलावल, मलार, ललित और सोरठ की व्यजंना से पदों को संगीतात्मकता प्रदान की है। पदों के अनुसार बाल लीला (20पद) में तुलसी ने सर्वाधिक छह प्रकार के रागों की योजना प्रदर्शित की है। शोभा वर्णन के मात्र तीन पद होने के बाद भी तुलसीदास ने यहाँ भी दो रागों—राग बिलावल और राग गौरी—की अभिव्यंजना प्रदर्शित की है।

तुलसीदास ने पदों की प्रस्तुति में रागों की योजना उसमें निहित भावों के अनुसार की है। उत्साह, श्रंगार आदि के पदों में ललित, कान्हरा, पदों की व्यंजना कर कवि ने इस गीतिकाव्य को संगीतात्मकता प्रदान की है। तुलसीदास ने रागों के गान काल के

अनुसार पदों की उसी राग में रचनाकर अपने संगीतज्ञ होने का प्रमाण ही दिया है।

श्रीकृष्ण गीतावली में तुलसीदास ने दस रागों की रचना की है। पूरे गीति काव्य में 61 पद है। जिनको इन दस रागों के अन्तर्गत समायोजित किया गया है। इसकी योजना को निम्नवत रूप में संक्षेप में प्रस्तुत किया गया है–

राग गौरी = पद सं0 9--13, 19, 23, 56–59 = 11 पद

राग केदारा = पद सं0 7, 8, 14, –17, 52–55 = 10 पद

राग विलावल = पद सं0 1, 21, 22, 24, 36–38 = 07 पद

राग आसावरी = पद सं0 3–6, 60, 61 = 06 पद

राग धनाश्री = पद सं0 26–31 = 06 पद

राग मलार = पद सं0 18, 32, 39–41 = 05 पद

राग कान्हरा = पद सं0 25, 50, 51 = 03 पद

राग सोरठ = पद सं0 33–35 = 03 पद

राग ललित = पद सं0 2 = 01 पद

राग नट = पद सं0 .20 = 01 पद

संगीतशास्त्र में रागों का सम्बन्ध समय, रसों, ऋतुओं से जोड़ा गया है। तुलसीदास ने उसी का अनुपालन करते हुए अपने पदों को रागबद्ध किया है। विषयानुसार पद में प्रदर्शित समय ऋतु के अनुसार रागों की योजना से गीति काव्य में समरसता और मधुरता बनी रही है।

श्रीकृष्ण के प्रातः काल भोजनादि करने का वर्णन करते समय प्रातः बेला में गाये जाने वाले राग ललित की व्यंजना तुलसीदास ने की है–

राग ललित–

छोटी मोटी मीसी रोटी चिकनी चुपरि कै तू

दै री मैया! ''लै कन्हैया'' सो कब? अबहिं तात।।'

'सिगरियै हौं ही खेहौं, बलदाऊ को न दैहौं।।

'सो क्यों? 'भट् तेरो कहा' कहि इत उत जात।।1।।

(श्रीकृष्ण गीतावली–2, पृ0 8)

इसी प्रकार वर्षा ऋतु के समय गाये जाने वाले राग मलार की योजना भी तुलसीदास ने उसी पद में की है। जहॉ वर्षा का चित्रण उनके द्वारा किया गया है।

राग मलार–

ब्रज पर घन घमंड करि आए।

अति अपमान विचारि आपनो कोपि सुरेश पठाए।।1।।

दमकति दुसह दसहुं दिसि दामिनि, मयो तम गगन गंभीर।

गरजत घोर बारिधर धावत प्रेरित प्रबल समीर।।2।।

(श्रीकृष्ण गीतावली–18, पृ0 22)

इसी प्रकार अन्य रागों की योजना में सृजित पद उदाहरणार्थ निम्नवत् हैं–

रागआसावरी–

तोहि स्याम की सपथ जसोदा! आइ देखु गृह मेरें।

जैसी हाल करी यहि ढोटा छोटे निट अनेरें।।1।।

गोरस हानि सहौं, न कहौं कछु, यहि ब्रजवास बसेरें।

दिन प्रति भाजन कौन वेसाहै? घर निधि काहू केरें।।2।।

(श्रीकृष्ण गीतावली–3, पृ0 9)

राग धनाश्री–

करी है हरि बालक की सी केलि।

हरष न रचत विषाद न बिगरत, डगरि चले हंसि सेलि।।1।।

बई बनाम बारि बृन्दावन प्रीति संजीवनि बेलि।

सींचि सनेह सुधा, खनि काढ़ी लोक बेद परहेति।।2।।

—श्री कृष्ण गीतावली—26, पृ031

राग कान्हरा—

हे हम समाचार सब पाए।

अब विसेष देखे तुम देखे,

हैं कूबरी हाँक से लाए।।1।।

मथुरा बड़ो नगर नागर जन,

जिन्ह जातहिं जदुनाथ पठाए।

समुझि रहनि, सुनि कहनि बिरह ब्रन,

अनख अमिय ओषध सरूहाए।।2।।

(श्रीकृष्ण गीतावली—50, पृ050)

श्री कृष्णगीतावली में रागों की योजना के द्वारा पदों का माधुर्य कवि द्वारा बनाये रखा गया है। समस्त रागों को उनकी योजना के साथ ही पदों के विषयानुरूप स्थान प्राप्त है। गीति काव्य की संगीतात्मकता की विशषेता को यह गीतिकाव्य पूरा करता है। इन्हीं गुणों के परिपाक से रची—बसी श्रीकृष्ण—गीतावली गीतिकाव्य में स्थान बनाकर संगीतात्मकता और संगीत शास्त्र के नियमों पर पूर्णतः सार्थक सिद्ध होती है।

3—भावान्विति—

भाव गीतों की प्रमुखता मानी गई है। कवि गीतों के माध्यम से भावप्रवणता को प्रकट करता है। इसी के द्वारा वह पत्रों के मनो भावों को पाठकों के समक्ष रखता है। श्रीकृष्णगीतावली के पदों में भावों का तुलसीदास ने विशेष ध्यान रखा है। भावों की सघनता विषयानुरूप प्रदर्शित हुई है।

माँ के द्वारा किसी बालक को समझाने का भाव तुलसीदास ने इस खूबसूरती से सँवारा हैं मानो सारा दृश्य उनकी आँखों के सामने ही चल रहा है।

छाँड़ों मेरे ललन! ललित लरिकाई।

ऐहैं सत! देखुवार कालि तेरे,

बबै ब्याह की बात चलाई।।1।।

डरिहैं सासु ससुर चोरी सुनि,

हँसिहैं नइ दुलहिया सुहाई।

डबरौं न्हाहु, गुहौं चुरिया बलि,

देखि भलो बर करिहिं बड़ाइ।।2।।

(श्रीकृष्ण गीतावली–13, पृ017)

इस पद में बच्चों को विभिन्न तरीकों से समझाने का, माताओं की भाव व्यजंना को कवि ने प्रदर्शित कर पद को भाव–प्रवणता प्रदान की है। इस गीति–काव्य के लगभग सभी पदों में भावों को प्रमुखता तुलसीदास द्वारा प्रदान की गई है। इसी तरह एक अन्य पद में द्रोपदी के रूप में भक्त की कठिनाई में पुकार पर भगवान द्वारा उसकी रक्षा करने को आने का भाव तुलसीदास ने प्रदर्शित किया है। बलशाली पतियों के बीच भी असुरक्षित द्रोपदी के पुकारने पर श्रीकृष्ण आ जाते हैं। यही भाव भक्त और आराध्य के मध्य दर्शाने की चेष्टा में तुलसीदास सफल भी रहे है–

अपनेनि को अपनो बिलोकि बल

सकल आस बिस्वास बिसारी।

हाथ उठाइ अनाथ नाथ सों

पाहि पाहि प्रभु! पाहि पुकारी।।4।।

तुलसी परखि प्रतीति प्रीति गति

आरतपाल कृपालु मुरारी।

बसन बेष राखी बिसेषि लखि

बिरूदावलि मूरति नर नारी।।5।।

(श्रीकृष्ण गीतावली–60, पृ060)

भावों की व्यंजना करने में तुलसीदास इस रचना में भी कहीं पीछे नहीं दिखते हैं। संयोग के पदों को भी उन्होने सुन्दरता से सँवारा है। श्रीकृष्ण का बाल स्वरूप सभी को आनंद देता है तो उनका मथुरा चला जाना सभी को दुःख देता है। ऐसे पदों में 'रति' 'काम' की अतिरंजिता न दिखा कर तुलसीदास ने भव्यता से सँवारा है। श्रीकृष्ण के रूप सौन्दर्य को वर्णित करते समय कवि ने अतिरंजना न दिखा कर मर्यादा प्रदान की है।

देखु सखी हरि बदन इंदु पर।

चिक्कन कुटिल अलक–अवली–छबि,

कहि न जाइ सोभा अनूप बर।।1।।

बाल भुअंगिनि निकर मनहुँ मिलि

रहीं घेरि रस जानि सुधाकर।

तजि न सकहिं, नहिं करहिं पान,कहु,

कारन कौन बिचारि डरहिं डर।।2।।

(श्रीकृष्ण गीतावली–21, पृ025)

इसी तरह कृष्णजी के मथुरा चले जाने पर गोपियों की बिरह वेदना में अतिश्योक्ति न होकर भाव प्रवणता दिखाई देती है।

बिछुरत श्री ब्रजराज आजु

इन नयनन की परतीति गई।

उड़ि न लगे हरि संग सहज तजि,

हवै न गए सखि स्याम मई।।1।।

रूप रसिक लालची कहावत,

सो करनी कछु तौ न भई।

साचेहूँ कूर कुटिल सित मेचक,

वृथा मीन छबि छीन लई।।2।।

(श्रीकृष्ण गीतावली–24, पृ028)

भावों की सघनता तुलसीदास ने एक दो पदों में नहीं लगभग समस्त पदों में दर्शायी है। भावों की अनुकूलता से समस्त पदों में मधुरता और सरसता आ गई है। यह श्रीकृष्ण गीतावली को सफल गीति रचना बनाती है।

4–<u>संक्षिप्तता</u>–

गीतिकाव्य का संक्षिप्त होना इस कारण भी आवश्यक समझा जाता है कि गीति काव्य का अभीष्ट गीतों में प्रभाव, भावों की मार्मिकता बढ़ाना होता है। इस दृष्टि से श्रीकृष्ण गीतावली तुलसी के तीनों गीति काव्यों में सबसे संक्षिप्त है। पूरे गीति काव्य को मात्र 61 पदों में तुलसीदास ने सँवारा है। श्रीकृष्ण कथा को सम्पूर्ण गीति काव्य में नौ भागों में बाँट कर कथा विस्तार किया है। चूंकि पूरी कथा का केन्द्र बिन्दु श्रीकृष्ण हैं और पूरी कथा को बाल लीला, गोपी–उपालम्भ, उलूखल बंधन, गोवर्द्धन धारण, गोचारण, यमुनातट पर वंशीवादन शोभा वर्णन, गोपी–विरह और भक्त–मर्यादा–रक्षण में विभक्त कर प्रस्तुत किया है।

तुलसीदास ने कथा का विस्तार किया है पर न तो पदों की संख्या को अधिक रखा है, और न ही पदों का विस्तार किया है। पदों की पक्तियां भी संक्षिप्त रखी गई हैं। नौ भागों में पूरी कथा का विस्तार करने में तुलसीदास ने सर्वाधिक पदों की रचना गोपी विरह में की है। कुल 36 पदों में विरह वर्णन को कवि ने सहेजा है, जिसमें 27 पद गोपी–उद्धव संवाद से संजे हैं। इसके बाद बाल लीला के 20 पदों को इस गीतिकाव्य में रखा गया है। सबसे कम मात्र 2 पदों को द्रोपदी–लाज–रक्षक संदर्भ में रखा गया है।

संक्षिप्त कलेवर में प्रस्तुत इस गीतिकाव्य में पदों में भी संक्षिप्तता है पर कहीं भी कथा प्रवाह क्षीण नहीं हुआ है। और न ही पदों की मधुरता, सरसता का लोप हुआ है।

कथा विकास के क्रम में छोटे–छोटे पदों के द्वारा दृश्यों की झाँकी प्रस्तुत कर तुलसीदास ने श्रीकृष्ण गीतावली में अपना लेखन कौशल प्रदर्शित किया है। श्रीकृष्ण गीतावली में सृजित सबसे छोटे पद में भी दृश्य योजना, भाव व्यंजना इस प्रकार की है कि पद की लघुता कथा विकास, दृश्य निर्माण में बाधक नहीं होती है–

लेते भरि भरि नीर कान्ह कमल नै न,

फरक अधर डर, निरखि लकुट कर, कहि न सकत कछु बैन।।1।।

दुसह, दाँवरी छोरि, थोरी खोरि, कहा कीन्हों,

चीन्हो सी सुभाउ तेरो आजु लगे माई मैंन।

तुलसिदास नंद ललन ललित लखि रिस क्यों रहति डर ऐन।।2।।

श्रीकृष्ण के उलूखल बंधन के इस दृश्य में पद की संक्षिप्तता से कथा विकास में किसी प्रकार की बाधा नहीं आती है। सखी द्वारा कन्हैया के बंधन खोलने का चित्रण तुलसीदास के कौशल से सजा है। इसमें संक्षिप्तता के साथ कथा विस्तार को पर्याप्त अवकाश प्राप्त हुआ है।

5–लालित्य अभिव्यक्ति–

किसी काव्य रचना में लालित्य के होने से काल के अन्तरंग पक्ष और बोध पक्ष को आसानी से उत्कर्ष प्राप्त होता है। तुलसीदास ने अपनी काव्य रचनाओं में भाषा, रस, अलंकार आदि के द्वारा ललित अभिव्यक्ति की है। गीतिकाव्यों की रचना में इस बात को ओर अधिक ध्यान में रखा गया है। अलंकारों, रसों का प्रयोग तुलसीदास ने कहीं भी इस प्रकार नहीं किया है कि यह प्रतीत होता हो कि पदों में लालित्य कला को जानबूझ कर आरोपित किया जा रहा है। कवि ने दृश्यों को विषयानुसार सँवारा है और उन्हीं के अनुसार लालित्य अभिव्यक्ति स्वतः ही पदों में परिलक्षित हुई है। तुलसीदास की यह रचना किसी राजा–महाराजा को रिझाने के लिए न होकर अपने आराध्य (राम) के अन्य रूप (कृष्ण) का चरित्र चित्रण ही करती है, फलतः काव्य में चमत्कारिक दृष्टि से लालित्य नहीं उभारा गया है। अलंकारों, रसों,

भाषा शैली का प्रयोग स्वतः और स्फूर्त रूप में हुआ है। उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा का विशेष प्रयोग तुलसीदास द्वारा किया गया है।

अनुप्रास–

1–बाल बोलि डहकि बिराबत, चरित लखि,

गोपी गंन महरि मुदित पुलकित गात। (पद–2, पृ08)

2–साखि सखा सब सुबल सुदामा, (पद–12, पृ16)

3–सत्य सनेह सील सोभा सुख सब गुन उपधि अपरि। (पद–27, पृ032)

उपमा–

1–किलकि सखा सब नचत मोर–ज्यों।

कूदत कपि कुरंद की नैया।। (पद–19, पृ023)

इस पद में कृष्ण और उनके सखाओं की क्रीड़ा को दिखाया गया हैं। गौ चराने वन में जाने पर बाल गोपालों का मोर की तरह नाचना तथा बंदर, हिरन की भांति कूद–कूद कर किलक कर खेलने का चित्रण किया गया है।

2–निपटही डाँटति निठुर ज्यों लकुट कर ते डारू। (पद–14, पृ018)

इसमें कृष्ण को मैया यशोदा छड़ी लेकर डाँटने का उपक्रम करतीं है तो यशोदा की समवयस्का गोपियॉ यशोदा को निष्ठुर कह कर छड़ी फेंकने को कहती हैं।

3–लेति भरि भरि नीर कान्ह कमल नैन। (पद–15, पृ019)

कृष्ण के उलूखल बंधन पश्चात उनकी आँखों में आये आँसुओं पर कृष्ण के नयनों को कमल की उपमा से गोपियां संवारतीं है।

उत्प्रेक्षा–

1–बाल भुअंगिनि निकर मनहुं मिलि

रहीं घोरि रस जानि सुधाकर। (पद–21, पृ0 25)

इस पद में कृष्ण के रूप सौन्दर्य वर्णन के अवसर पर उनके मुख पर बिखर

आई केशों की राशि से श्रीकृष्ण के मुख को चन्द्रमा रूप मानना उत्प्रेक्षा की उदाहरण है।

2—सुभग उर दधि बुंद सुंदर लखि अपनपौ वारू।

मनहुँ मरकत मृदु सिखर पर लसत बिसद तुषारू।। (पद—14, पृ018)

यहाँ श्रीकृष्ण के मुख पर दही की बूँद का ऐसा प्रतीत होना मरकत मणि के पर्वत शिखर पर उज्जवल हिमखण्ड सुशोभित होने के समान में वस्तुप्रेक्षा का उदाहरण कहा जा सकता है।

रूपक— जब ते ब्रज तजि गये कन्हाई।

तब ते बिरह रबि उदित एक रस सखि! बिहुरन वृष पाई।।1।।

तुलसीदास मनोरथ मन मृग मरत जहँ तहँ धाई।

राम स्याम सावन भादौं बिनु जिय की जरनि न जाई।।4।।(पद—29, पृ0 34)

यहाँ कृष्ण के विरह में सूर्य को विरह का पर्याय बताकर गोपियों के विरह रूपी सूर्य में तपना सांग रूपक अलंकार है।

अलंकारों के अतिरिक्त रसों, भाषा शैली का निरूपण श्रीकृष्ण गीतावली में लालित्य की उपस्थिति करता है। बाल लीला हो, सौन्दर्य वर्णन या गोपी—विरह सभी में रसों का सुन्दर परिपाक दृष्टव्य है श्रृंगार, वात्सल्य का भाव यहाँ सुन्दरता से व्यंजित है। बाल रूप कृष्ण में गोपियों के उपालम्भ के बाद श्रीकृष्ण का चातुर्यपूर्ण उत्तर मनभावन होता है—

1— अबहु उरहनो दै गई बहुरौ फिरि आई।

सुनु मैया! तेरी सौं करौं, याकी टेव लरन की।

सकुच बेंचि सी खाई।। (पद—8, पृ013)

2— ललित लालन निहारि, महरि मन बिचारि,

डारि दै घरबसी लकुटी बेगि कर तें।

कछु न कहि सकत, सुसुकत सकुचत,

डरहू को डर कान्ह, डरै तेरे डर तें।।1।। (पद17, पृ021)

यहाँ मुनि पत्नी यशोदा को समझाती है। यह समझाना भी कृष्ण के प्रति प्रेम को दर्शाता है।

संयोग पक्ष के अतिरिक्त तुलसीदास ने वियेग पक्ष को गोपी–विरह के वर्णन में उभारा है।

बिछुरत श्री ब्रजरात आजु

इन नयनन की परतीति गई।

उड़ि न लगे हरि संग सहज तजि,

हवै न गए सखि स्यामभई।।1।। (पद–24, पृ028)

<u>वीर रस</u>– वीरों की श्रेणियाँ अनेक प्रकार की स्वीकारी गईं हैं। श्रीकृष्ण के गोवध न पर्वत धारण कर ब्रज वासियों की रक्षा करने में और द्रोपदी लाज रक्षा में उनका धर्मवीर, दयावीर का भाव प्रकट हुआ है। तुलसीदास ने श्रीकृष्ण गीतावली में इन दोनों स्थलों पर इस रूप की वीर रस में स्थापना की है–

सुनि हंसि उठयो नंद का नाहरू, लियो कर कुधर उठाइ।

तुलसिदास मघवा अपनी सो करि गयो गर्व गँवाइ।। (पद 18, पृ022)

इसी प्रकार द्रोपदी लाज रक्षा के अवसर पर–

बसन बेष सखी बिसेषि लखि

बिरूदावलि मूरति नर नारी। (पद 60, पृ060)

तुलसी मूलतः भक्त कवि है। इसी कारण से वे अपनी भक्ति को त्याग नहीं पाते हैं और गीति काव्य के अंत में वे स्वयं श्रीकृष्ण से भक्ति पथ पर चलने का आशीष माँगते है–

जुग जुग जग साके केसव के

समन कलेस कुसाज सुसाजी।

तुलसी को न होइ सुनि कीरति

कृष्ण कृपालु भगति पथ राजी।। (पद–61, पृ062)

अलंकारों रसों का संशलिष्ट स्वरूप श्रीकृष्ण गीतावली में देखने को मिला है। इस गीति काव्य के अनेक पद इसी लालित्य अभिव्यक्ति के कारण स्वाभाविक रूप से पाठकों को मुग्ध करते हैं और जब इन्हीं गेय पदों को कोई गायक गाता है तो श्रोताओं के मध्य भक्ति–भाव धारा के साथ आनन्द का भी संचार हो उठता है। तुलसीदास की भावना सांस्कृतिक और विशुद्धतावादी रही है किन्तु भाषा के सम्बन्ध में उनका ऐसा विचार सम्भवतः नहं रहा है। श्रीकृष्णगीतावली में ब्रजभाषा के तत्सम शब्दों का बहुलता से प्रयोग हुआ है साथ ही साथ उर्दू फारसी शब्दों–बेकाम, दगा, सूरति, गरीब, बारिक, सही, राजी आदि–का भी प्रयोग देखने को मिला है। संक्षेप में कहें तो तुलसीदास ने भावनानुरूप पदावली का प्रयोग किया है। इस कारण काव्य में लालित्य और भाषा सौन्दर्य उपलब्ध रहा है। श्रीकृष्ण गीतावली निश्चय ही लालित्य अभिव्यक्ति के कारण रसमय और मधुरता का एहसास कराती है। यही सारी विशेषताएं श्रीकृष्ण गीतावली को सफल गीतिकाव्य सिद्ध करती है।

विनयपत्रिका, गीतावली, श्रीकृष्ण गीतावली की नीतिकाव्य सम्बन्धी विशेषताओं–वैयक्तिकता, संगीतात्मकता, भावान्विति, संक्षिप्तता और लालित्य अभिव्यक्ति के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि तीनों गीति काव्य इन विशेषताओं पर खरे उतरते हैं। यद्यपि श्रीकृष्ण गीतावली में कवि को वैयाक्तिकता का अवकाश प्राप्त नहीं हुआ है तथापि शेष विशेषताओं को यह रचना पूरा करती है। श्रीकृष्ण गीतावली में मात्र कृष्ण कथा का विकास करने की दृष्टि से ऐसा प्रतीत होता है कि कवि ने स्वयं ही वैयक्तिकता के लिए स्थान नहीं निकाला है। कुल मिला कर निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि तुलसीदास ने काव्य रचनाओं में प्रबन्ध, निबंध और मुक्तक की जिस योजना को अपनाया उसमें वे पूर्णतः सफल सिद्ध रहे हैं। मुक्तक काव्य के अन्तर्गत रचे गये तीनों गीति काव्यों –विनय पत्रिका, गीतावली, श्रीकृष्ण गीतावली– में वे कहीं भी प्रतिभा कौशल में पीछे नहीं दिखे हैं। गीति काव्य की प्रत्येक विशेषता में तीनों काव्यों का सफल सिद्ध होना तुलसीदास को समकालीन (मध्यकालीन) समस्त कवियों में श्रेष्ठ साबित करता है। यह गीति काव्यों की भी सफलता कही जा सकती है।

चतुर्थ अध्याय
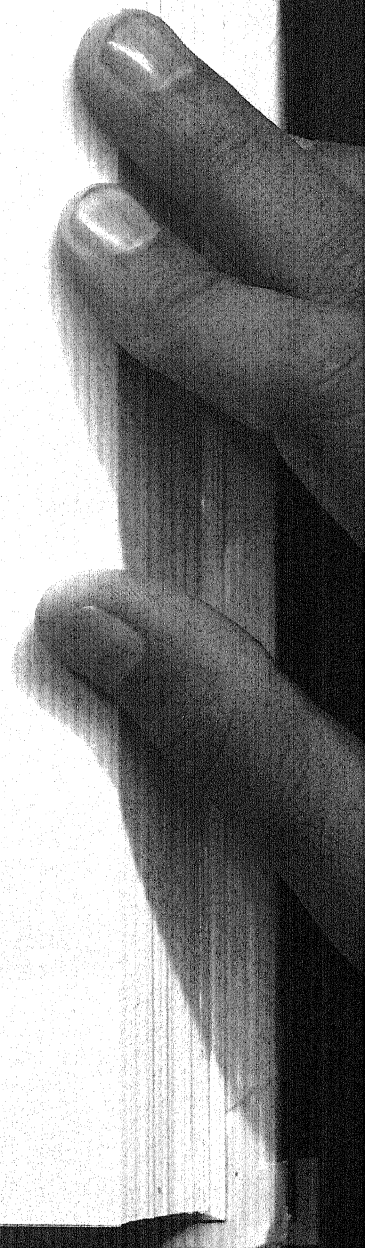
गीतिकाव्यों के अन्तर्गत दिए गए निम्न रागों की स्वरलिपियां

1—राग—बिलावल

2—राग—भैरव

3—राग—भैरवी

4—राग—विभास

5—राग—रामकली

6—राग—आसावरी

7—राग—तोड़ी

8—राग—सारंग

9—राग—धनाश्री

10—राग—मारू

11—राग—गौरी

12—राग—जैतश्री

13—राग—केदार

14—राग—कल्याण

15—राग—बिहाग

16—राग—सोरठ

17—राग—नट

18—राग—ललित

19—राग—बसन्त

20—राग—कान्हरा

21—राग—मल्हार

'श्री गणेश–स्तुति'
राग–बिलावल

विनय–पत्रिका
(पद सं0–1)

''गाइये गनपति जग बन्दन। संकर–सुवन, भवानी–नन्दन।1।
सिद्धि सदन गज़ बदन, विनायक। कृपा–सिंधु, सुन्दर सब लायक।2।
मोदक–प्रिय, मुद–मंगल–दाता। विद्या–वारिधि बुद्धि–विधाता।3।
मांगत तुलसिदास कर जोरे। बसहिं राम सिय मानस मोरे।4।'' (1)

स्वरलिपि

स्थायी–

'ताल–तीन ताल'

–	ध	सां	ध	प	–	प	प	म	ग	म	रे	सा	रे	सा	सा
S	गा	S	इ	ये	S	ग	न	प	ति	ज	ग	बं	S	द	न
ध़	ध़	सा	सा	ग	ग	प	प	धनि	ध	प	–	मग	मरे	सरे	स–
सं	S	क	र	सु	व	न	भ	वाS	S	नी	के	नंS	SS	दS	नS
3				X				2				0			

अन्तरा

प	प	प	–	नि	–	नि	–	सं	–	सं	सं	सं	रें	सं	–
सि	S	द्धि	स	द	न	ग	ज	व	द	न	वि	ना	S	य	क
सं	रे	गं	रे	सं	रें	सं	सं	सं	नि	ध	प	मग	मरे	सरे	स–
कृ	पा	S	सिं	S	धु	सुं	S	द	र	स	ब	लाS	SS	यS	कS
3				X				2				0			

'शेष पंक्तियां अन्तरे की तरह'

(1) विनय–पत्रिका गोस्वामी तुलसीदास, (टीकाकार)–डॉ0 राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी,पृ05

'राग–भैरव'

विनय–पत्रिका
(पद सं0–65)

राम–राम रटु, राम –राम रटु राम–राम जपु जीहा।
राम–नाम–नवनेह मेह को, मन! हठि होहि पपीहा।।1।।
सब साधन–फल कूप–सरित–सर–सागर सलिल निरासा।
राम–नाम–रति स्वमाति–सुधा सुभ–सीकर प्रेम पियासा।।2।।[1]

स्वरलिपि

स्थायी– 'ताल–कहरवा (दुगुन में)

म	–	म	म	प	–	प	–
रा	ऽ	म	रा	ऽ	म	र	टु
ग	म	प	–	ग	म	रे॒	सा
रा	ऽ	म	रा	ऽ	म	र	टु
नि़	–	सा	–	–	–	–	–
ज	पु	ऽ	जी	ऽ	हा	ऽ	ऽ
म	–	म	ग	–	म	म	ग
रा	ऽ	म	ना	ऽ	म	न	व
प	–	प	प	–	प	ध	–
ने	ऽ	ह	मे	ऽ	ह	को	ऽ
सं	नि	ध॒	प	म–	गम	रे॒–	स–
म	न	ह	ठि	होऽ	हिप	पीऽ	हाऽ
X				0			

(1) विनय–पत्रिका, टी0 डॉ0 राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी, पृ0–72

अन्तरा

ग	म	प	–	ध	ध	नि	नि
स	ब	सा	S	ध	न	फ	ल
सं	सं	सं	सं	नि	सं	सं	सं
कू	S	प	स	रि	त	स	र
रें	–	रें	रें	मं	गं	रें	–
सा	S	ग	र	स	लि	ल	नि
सं	–	सं	–	नि	ध	प	–
रा	S	सा	S	सा	S	S	S
प	प	ध	सां	नि	ध	प	–
रा	S	म	ना	S	म	र	ति
ग	म	प	–	ग	रे	सा	–
स्वा	S	ति	सु	धा	S	सु	भ
नि़	–	स	स	प	म	ग	रे
सी	S	क	र	प्रे	S	म	पि
सा	–	सा	–	–	–	–	–
या	S	सा	S	S	S	S	S
X				0			

'राग–भैरवी'

विनय–पत्रिका
(पद सं0–198)

मन पछितैहै अवसर बीते।

दुर्लभ देह पाइ हरिपद भजु, करम, वचन अरू रीते।।1।।

सहसबाहु दसबदन आदि नृप, बच न काल बली ते।

हम–हम करि धन–धाम संवारे, अंत चले उठि रीते।।2।।[1]

स्वरलिपि

स्थायी–

'ताल–तीन ताल'

												नी	स	ग	म
												म	न	प	छि
प	प	प	–	ग	म	प	म	ग	रे	स	–	नी	स	ध	नी
तै	ऽ	है	ऽ	अ	व	स	र	बी	ऽ	ते	ऽ	दु	र	ल	भ
स	रे	ग	–	रे	–	ग	म	ग	रे	स	–	स	प	प	प
दे	ऽ	ह	पा	ऽ	ई	ह	रि	प	द	भ	जु	क	र	म	व
म	प	ग	म	प	–	प	–	म	ग	प	–				
च	न	अ	रू	ही	ऽ	ते	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ				
X				2				0				3			

(1) विनय–पत्रिका गोस्वामी तुलसीदास, (टीकाकार)–डॉ0 राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी,पृ0225

अन्तरा

								ग	म	ध	नी	सं	सं	रें	सं
								स	ह	स	बा	ऽ	हु	द	स
नी	–	सं	सं	नी	सं	ध	प	ध	–	ध	–	प	ध	म	ग
ब	द	न	अ	ऽ	दि	नृ	प	ब	चें	ऽ	न	का	ऽ	ल	ब
प	–	प	–	ध	गं	रें	गं	सं	रें	सं	–	नी	–	सं	सं
ली	ऽ	ते	ऽ	ह	म	ह	म	क	रि	ध	न	धा	ऽ	म	सं
नीरें	संनी	ध	प	ध	–	ध	ध	प	ध	म	ग	प	–	प	–
वाऽ	ऽऽ	रे	ऽ	अं	ऽ	त	च	ले	ऽ	उ	ठि	री	ऽ	ते	ऽ
म	ग	प	–	ग	म	प	म	ग	रे	स	–	नी़	स	ग	म
ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	अ	व	स	र	बी	ऽ	ते	ऽ	म	न	प	छि
3				X				2				0			

'राग–विभास'

विनय–पत्रिका
(पद सं0–74)

जानकीस की कृपा जगावती सुजान–जीव,
जागि त्यागि मूढ़ताऽनुराग श्री हरे।
करि बिचार, तजि विकार, भजु उदार,
रामचन्द्र, भद्रसिन्धु, दीनबन्धु, बेद बदत रे।[1]

स्वरलिपि

स्थायी– 'ताल–एकताल

ध	ध	प	ग	ग	प	गप	धप	ग	–	रे	सा
जा	S	न	की	S	स	कीS	SS	कृ	पा	S	S
स	ध	–	ध	प	प	ध	सं	–	ध	–	प
ज	गा	S	व	ती	सु	जा	S	न	जी	S	व
ध	–	सं	सं	रें	–	सं	सं	गं	–	रें	सं
जा	S	S	गि	त्या	S	S	गि	मू	S	S	ढ़
ध	सं	ध	प	ग	ध	–	प	ग	रे	–	स
ता	S	S	नु	रा	S	S	ग	श्री	S	ह	रे
X		0		2		0		3		4	

(1) विनय–पत्रिका गोस्वामी तुलसीदास, (टीकाकार)–डॉ0 राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी, पृ0 84

अन्तरा

प	–	ग	रे	–	स	ध	ध	स	रे	रे	स
क	रि	वि	चा	ऽ	रि	त	जि	वि	का	ऽ	र
ग	प	ध	सं	–	सं	रें	–	गं	रें	–	सं
भ	जु	उ	दा	ऽ	र	रा	ऽ	म	चं	ऽ	द्र
ध	सं	ध	ग	ध	प	ध	सं	–	ध	–	प
भ	ऽ	द्र	सिं	ऽ	धु	दी	ऽ	न	बं	ऽ	धु
ध	ग	सां	ध	प	गप	धप	धग	ग	रे	स	–
बे	ऽ	द	ब	द	तऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽ	रे	ऽ	ऽ
X		0		2		0		3		4	

'राग–रामकली'

विनय–पत्रिका
(पद सं0–6)

जांचिये गिरिजापति, कासी। जासु भवन अनिमादिक दासी।।
औढर–दानिद्रवत पुनि थोरे। सकत न देखि दीन कर जोरे।।
सुख संपति मति सुगति सुहाई। सकल सुलभ संकर सेवकाई।।(1)

स्वरलिपि

स्थायी–

'ताल–तीनताल

												–	ग	–	म
												ऽ	जाँ	ऽ	चि
ध	–	–	–	–	ग	–	म	रे	–	स	–	नि	स	ग	म
ये	ऽ	गि	रि	जा	ऽ	प	ति	का	ऽ	सी	ऽ	जा	ऽ	सु	भ
प	–	प	–	पध	निसं	संरें	संनि	धनि	धप	मग	म–				
व	न	अ	नि	माऽ	ऽऽ	दऽ	कऽ	दाऽ	ऽऽ	ऽऽ	सीऽ				
X				2				0				3			

(1) विनय–पत्रिका गोस्वामी तुलसीदास, (टीकाकार)–डॉ0 राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी, पृ0 14

अन्तरा

								–	–म	–प	– –	ध॒	–	नी	–
								ऽ	ऽऔ	ऽढ	ऽर	दा	ऽ	नि	द्र
सं	–	सं	सं	नि	रें॒	सं	–	ध॒	–	ध॒	ध॒	नी	नी	सं	–
व	त	पु	नि	थो	ऽ	रे	ऽ	स	क	त	न	दे	ऽ	खि	दी
रें॒	सं	नी	सं	नी	ध॒	म॑	प	रें॒	–	गं	मं	रें॒	रें॒	सं	सं
ऽ	न	क	र	जो	ऽ	रे	ऽ	सु	ख	सं	ऽ	प	ति	म	ति
नि	–	सं	सं	नि	ध॒	प	–	नि़	स	ग	म	प	–	प	–
सु	ग	ति	सु	हा	ऽ	ई	ऽ	स	क	ल	सु	ल	भ	सं	ऽ
प	ध॒	नि	सं	पध॒	निसं	सरें॒	संनि	ध॒नि॒	ध॒प	मग	म–				
क	र	से	व	काऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ	ईऽ				
X				2				0				3			

'राग—आसावरी'

गीतावली (अयोध्या काण्ड)
(पद सं0—29)

सजनी! हैं कोउ राजकुमार
पंथ चलत मृदु पद–कमलनि दोउ सील–रूप आगार।।1।।
आगे राजिव नैन स्याम–तनु, सोभा अमित अपार।
डारौं वारि अंग–अंगनि पर, कोटि–कोटि सत मार।।2।।[1]

स्वरलिपि

स्थायी— 'ताल—तीनताल

				मध् सऽ	पम जऽ	गृरे नीऽ	गृस ऽऽ
— — ऽऽ	— रे ऽहै	—म ऽको	—म ऽऊ	पध् राऽ	मप ऽऽ	पसं जऽ	सं— कुऽ
ध् मा	— ऽ	प ऽ	— र	मध् सऽ	पम जऽ	गृरे नीऽ	गृस ऽऽ
ग् पं	— ऽ	रे थ	स च	रे ल	— त	स मृ	स दु
— ऽ	रेरे पद	—म ऽक	—म ऽम	प ल	प न	प दो	— ऊ
— ऽ	—म ऽसी	—प ऽल	— — ऽरू	ध् ऽ	— ऽ	नी प	— अ
सं गा X	— ऽ	— ऽ	— र	मध् सऽ 0	पम जऽ	गृरे नीऽ	गृस ऽऽ

---

(1) गीतावली, (अयोध्या काण्ड) तुलसीदास, प्रकाशक,—गीता प्रेस गोरखपुर, पृ0 173

अन्तरा

म	–	प	–	ध	–	नी	–
आ	ऽ	गे	ऽ	रा	ऽ	जि	व
सं	–	सं	सं	रें	नी	सं	–
नै	ऽ	न	स्या	ऽ	म	त	नु
नीध	–	ध	ध	सं	–	सं	–
सो	ऽ	भा	ऽ	अ	मि	त	अ
सं	गं	रें	सं	ध	नी	प	–
पा	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	र
प	–	गं	–	रें	–	सं	नि
डा	ऽ	रौ	ऽ	वा	ऽ	रि	अं
–	नि	सं	सं	निरें	संनि	ध	प
ऽ	ग	अं	ऽ	गऽ	निऽ	प	र
–	–म	–प	–	ध	–	नी	–
ऽ	कोऽ	टिऽ	को	ऽ	टि	स	त
सं	–	–	–	मध	पम	गरे	गस
मा	ऽ	ऽ	र	सऽ	जऽ	नीऽ	ऽऽ
X				0			

'राग–तोड़ी'

विनय पत्रिका
(पद सं0–78)

दीन को दयाल दानि दूसरों न कोऊ।
जासों दीनता कहौं हौ देखो दीन सोऊ।।1।।
सुर–पर–मुनि असर नाग साहब तौ घनेरे।
पै तो–लौ जौ लौं रावरे न नेकु नयन फेरे।।2।।[1]

स्वरलिपि

स्थायी– 'ताल–एकताल'

ध	–	म॑	ग	–	रे	ग	–	रे	सा	–	सा
दी	ऽ	न	को	ऽ	द	या	ऽ	लु	दा	ऽ	नी
ध	–	ध	ध	ग	ग	रे	–	ग	रे	सा	–
दू	ऽ	स	रो	ऽ	न	को	ऽ	ऽ	ऽ	ई	ऽ
ध	–	ध	म॑	–	ध	धनि	सं	नि	सं	–	सं
जा	ऽ	सों	दी	ऽ	न	ताऽ	क	हौं	ऽ	हौ	ऽ
नि	सं	नि	ध	–	म॑	सरे	ग	रे	स	–	स
दे	ऽ	खो	दी	ऽ	न	सोऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऊ	ऽ
x		0		2		0		3		4	

(1) विनय–पत्रिका गोस्वामी तुलसीदास, (टीकाकार)–डॉ0 राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी, पृ0 89

अन्तरा

ध	ध	ध	म॑	म॑	ध	धनि	सं	–	सं	–	सं
सु	र	न	र	मु	नि	अऽ	सु	र	ना	ऽ	ग
ध	ध	म॑	ध	नि	धनि	सां	–	नि	सं	–	सं
सु	र	न	र	मु	निऽ	अ	सु	र	ना	ऽ	ग
संरें	गं	गं	गं	गं	गं	रें	गं	रें	सं	–	सं
साऽ	ऽ	हि	ब	तौं	ऽ	ऽ	घ	ने	ऽ	रे	ऽ
नि	सं	नि	ध	–	ध	म॑	ध	म॑	ग	–	ग
तौ	ऽ	लौ	ऽ	जौं	ऽ	लौं	ऽ	रा	ऽ	व	रे
रे	–	रे	गम॑	प–	प	रे	–	ग	रे	–	स
ना	ऽ	ऽ	नेऽ	ऽऽ	कु	न	य	न	फे	ऽ	रे
x		0		2		0		3		4	

अन्तरे की प्रथम पंक्ति दोनों तरह से गा सकते हैं।

'राग–सारंग'

गीतावली (अयोध्या काण्ड)
(पद सं0–46)

आइ रहे जबतें दोउ भाई
तबतें चित्रकूट–कानन छबि दिन–दिन अधिक अधिक अधिकाई।।1।।
सीता–राम–लषन–पद अंकित अवनि सोहावनि बरनि न जाई।
मंदाकिनि मज्जत अवलोकत त्रिविध पाप, त्रयताप न साई।।[1]

स्वरलिपि

स्थायी–

'ताल–तीनताल

				पनि	सरें	सं	रें	नि	सं	नी	प	म	–	रे	स
				आऽ	ऽऽ	इ	र	हे	ऽ	ज	ब	ते	ऽ	दो	उ
^म^रे	–	स	–	–	–नी	–नी	–नी	स	स	स	–	रे	म	पनी	मप
भा	ऽ	ई	ऽ	ऽ	तब	ऽते	ऽऽ	चि	ऽ	त्र	कू	ऽ	ट	काऽ	ऽऽ
रे	म	रे	स	म	प	नी	–	सं	सं	सं	–	नी	नी	सं	सं
न	न	छ	बि	दि	न	दि	न	अ	धि	क	अ	धि	क	अ	धि
नी	नी	प	–												
का	ऽ	ई	ऽ												
X				2				0				3			

(1) गीतावली, (अयोध्या काण्ड) तुलसीदास, प्रकाशक,–गीता प्रेस गोरखपुर, पृ0 192

अन्तरा

				म	म	प	प	नी	प	नी	नी	सं	–	सं	सं
				सी	ऽ	ता	ऽ	रा	ऽ	म	ल	ष	न	प	द
(म)रें	नी	सं	–	नी	नी	नी	नी	सं	–	सं	सं	रें	मं	रें	सं
अं	ऽ	कि	त	अ	व	नि	सो	हा	ऽ	व	नि	ब	र	नि	न
नी	नी	सं	–	सं	–	सं	–	नी	प	प	प	रे	म	पनी	मप
जा	ऽ	ई	ऽ	मं	ऽ	दा	ऽ	कि	नि	म	ऽ	ज्ज	त	अऽ	वऽ
रे	म	रे	स	म	प	नी	–	सं	सं	सं	–	नी	नी	सं	सं
लो	ऽ	क	त	त्रि	वि	ध	पा	ऽ	प	त्र	य	ता	ऽ	प	न
नी	नी	प	–												
सा	ऽ	ई	ऽ												
X				2				0				3			

'राग–धनाश्री'

विनय पत्रिका
(पद सं0–93)

कृपा सो धौं कहाँ बिसारी राम।
जेहि करूना सुनि स्त्रवन दीन–दुख, धावत हौ तजि धाम।।1।।
नागराज निज बल विचारि हिय हारि चरन चित दीन्हों।
आरत गिरा सुनत खगपति तजि, चलत विलम्ब न कीन्हों।।2।।[1]

स्वरलिपि

स्थायी–

'ताल–कहरवा'

प	ग	रे	स	ग	म	प	–
कृ	पा	ऽ	ऽ	सो	ऽ	धौं	ऽ
नि	ध	–	प	–	मग	रे	स
बि	सा	ऽ	री	ऽ	राऽ	ऽ	म
म	ग	रे	स	निस	ग	म	प
जे	हि	क	रू	नाऽ	ऽ	सु	नि
प	नि	ध	प	नि	सं	नि	सं
श्र	व	न	दी	ऽ	न	दु	ख
रें	स	नि	सं	प	नि	ध	प
धा	ऽ	व	त	हौं	ऽ	त	जि
ग	म	प	–	मग	रे	रा	–
धा	ऽ	ऽ	ऽ	ऽऽ	ऽ	म	ऽ
X				0			

(1) विनय–पत्रिका गोस्वामी तुलसीदास, (टीकाकार)–डॉ0 राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी, पृ096

अन्तरा

ग	–	म	प	–	नि	सं	सं
ना	ऽ	ग	रा	ऽ	ज	नि	ज
प	नि	सं	सं	रें	सं	नि	सं
ब	ल	वि	चा	ऽ	रि	हि	य
गं	रें	सं	–	प	नि	सं	सं
हा		रि	च	र	न	चि	त
रें	सं	नि	सं	मं	गं	रें	सं
दी	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	न्हों	ऽ
निसं	नि	ध	प	म	ध	प	–
आऽ	ऽ	र	त	गि	रा	ऽ	सु
ध	नि	सं	सं	नि	ध	धप	मप
न	त	ख	ग	प	ति	तऽ	जिऽ
रें	सं	नि	सं	प	नि	ध	प
च	ल	त	बि	लं	ऽ	ब	ना
ग	म	प	–	मग	रे	स	–
की	ऽ	ऽ	ऽ	ऽऽ	ऽ	न्हों	ऽ
X				0			

'राग–मारू'

गीतावली (लंका काण्ड)
(पद सं0–8)

जौ हौं अब अनुसासन पावौं।
तौ चन्द्रमहि निचोरि चैल–ज्यों, आनि सुधा सिर नावौं।।1।।
कै पाताल दलौं ब्यालावलि अमृत कुंड महि लावौं।
भेदि भुवन, करि भानु बाहिरो तुरत राहु दै तावौं।।2।।[1]

स्वरलिपि

स्थायी– 'ताल–तीनताल

								पध़	सं	नी	ध़	नी	–	ध़	प
								जौऽ	ऽ	हौं	ऽ	अ	ब	अ	नु
नी	–	नी	नी	सं	--	रे	सं	मं	–	ग	मं	ग	रे	स	–
सा	ऽ	स	न	पा	ऽ	वौं	ऽ	तौ	ऽ	ऽ	च	ऽ	द्र	म	हि
ग	–	ग	म	रे	रे	स	–	म	प	ध़	सं	सं	नि	ध	प
नि	चो	ऽ	रि	चै	ल	ज्यों	ऽ	आ	ऽ	नि	सु	धा	ऽ	सि	र
म	ग	ग	म	रे	रे	रे									
ना	ऽ	ऽ	ऽ	वौं	ऽ	ऽ									
x				2				0				3			

(1) गीतावली, (लंका काण्ड) तुलसीदास, प्रकाशक,–गीता प्रेस गोरखपुर, पृ0 310

अन्तरा

								पम	गम	प	ध	–	ध	प	प
								कैंऽ	ऽऽ	पा	ऽ	ता	ऽ	ल	द
सं	–	सं	–	नी	रें	सं	–	सं	नी	ध	नी	–	नी	ध	प
लौं	ऽ	ब्या	ऽ	ला	ऽ	व	लि	अ	ऽ	मृ	त	कुं	ऽ	ड	म
नी	सं	गं	मं	गं	रें	सं	सं	सं	नी	ध	नी	–	नी	ध	प
हि	ऽ	ला	ऽ	ऽ	ऽ	वौ	ऽ	भे	ऽ	दि	भु	व	न	क	रि
ग	–	ग	म	रे	रे	स	–	म	प	ध	सं	सं	नि	ध	प
भा	ऽ	नु	बा	ऽ	हि	रो	ऽ	तु	र	त	रा	ऽ	हु	दै	ऽ
म	ग	ग	म	रे	रे	स	–								
ता	ऽ	ऽ	ऽ	वौं	ऽ	ऽ	ऽ								
X				2				0				3			

'राग–गौरी'

विनय पत्रिका
(पद सं0–36)

मंगल मूरति मारूत नन्दन। सकल–अमंगल–मूल–निकन्दन।।1।।

पवन तनय संतन–हितकारी। ह्रदय विराजत अवध बिहारी।।2।।

मातु–पिता गुरू गनपति सारद। सिवा समेत, संभु सुक नारद।।3।।

चरन बंदि बिनवौं सब काहू। देहु रामपद–नेह–निबाहू।।4।।

बंदउं राम लखन बैदेही। जे तुलसी के परम सनेही।।5।।[1]

स्वरलिपि

स्थायी–

'ताल–एकताल'

म॑	म॑	ग	रे॒	नि़	–	सा	ध़॒	नि़	–	नि़	रे॒	रे॒	–	स	स
मं	ऽ	ग	ल	मू	ऽ	र	ति	मा	ऽ	रू	त	नं	ऽ	द	न
स	स	प	प	म॑	--	प	ध॒	म॑	ग	रे॒	म॑	ग	रे॒	स	–
स	क	ल	अ	मं	ऽ	ग	ल	मू	ऽ	ल	नि	कं	ऽ	द	न
0				3				X				2			

(1) विनय–पत्रिका गोस्वामी तुलसीदास, (टीकाकार)–डॉ0 राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी, पृ0 46

अन्तरा

म॑ म॑ म॑ ग	म॑ – ध॒ म॑ध॒	नि – सं सं	सं – सं –
प व न त	न य सं ऽऽ	त न हि त	का ऽ री ऽ
नि नि नि नि	नि नि सं रें॒	नि नि सं सं	नि ध॒ प –
हृ द य वि	रा ऽ ज त	अ व ध बि	हा ऽ री ऽ
प म॑ प ध	म॑ – म॑ ग	रे ग म॑ ग	रे – स स
मा ऽ तु पि	ता ऽ गु रू	ग न प ति	सा ऽ र द
स – प प	म॑ – प ध॒	म॑ – ग म॑	ग रे स –
सि वा ऽ स	मे ऽ त सं	ऽ भु सु क	ना ऽ र द
0	3	X	2

'राग–जैतश्री'

गीतावली (सुन्दर काण्ड)
(पद सं0–17)

सुनहु राम विश्राम धाम हरि! जनक सुता अति बिपति जैसे सहति।
'हे सौमित्रि–बंधु करूनानिधि! मन महँ रटति, प्रगट नहिं कहति।।1।।
निजपद–जलज बिलोकि सो करत नयमनि बारि रहत न एक छन।
मनहु नील नीरज–संभव रबि–बियोग दोउ स्त्रवत सुधाकन।।2।।[1]

स्वरलिपि

स्थायी– 'ताल–कहरवा'

नी़	स	ग	म॑	प	म॑	ध॒	प
सु	न	हु	रा	ऽ	म	वि	ऽ
म॑	ग	म॑	ग	रे॒	–	स	–
श्रा	ऽ	म	धा	ऽ	म	ह	रि
म॑	ग	म॑	ग	रे॒	–	स	–
ज	न	क	सु	ता	ऽ	अ	ति
नी़	स	ग	म॑	प	–	ध॒	प
वि	प	ति	जै	से	स	ह	ति
–	–ग	–म	पनि	सं	नी	ध॒	प
ऽ	ऽहे	ऽसौ	ऽऽ	मि	त्र	बं	धु
म॑	ध॒	प	म॑	म॑	ग	म॑	ग
क	रू	णा	ऽ	ऽ	ऽ	नि	धि
ग	म॑	प	म॑	ध॒	प	म॑	प
म	न	म	हि	र	ट	त	प्र
म॑	ग	म॑	ग	रे॒	–	स	–
ग	ट	न	हि	क	ऽ	ह	ति
X				0			

(1) गीतावली, (सुन्दर काण्ड) तुलसीदास, प्रकाशक,–गीता प्रेस गोरखपुर, पृ0 268

अन्तरा

प	ध	प	सं	सं	सं	सं	–
नि	ज	प	द	ज	ल	ज	बि
रें	–	सं	गं	रें	रें	सं	–
लो	S	कि	सो	S	क	र	त
सं	सं	रें	नि	–	नि	ध	प
न	य	न	नि	बा	S	रि	र
प	म	ग	म	ग	रे	स	–
ह	त	न	ए	S	क	छ	न
प	ग	प	सं	सं	रें	सं	–
म	न	डु	नी	S	ल	नी	S
सं	सं	नी	ध	नी	नी	ध	प
र	ज	स	सि	सं	भ	S	व
प	पम	ग	प	ग	रे	स	स
र	बिS	बि	यो	S	ग	दो	उ
स	सं	नी	धप	म	ग	रे	स
स्त्र	व	त	सुS	धा	S	क	न
X				0			

'राग–केदार'

विनय पत्रिका
(पद सं0–212)

रघुपति विपति–दवन।

परम कृपालु प्रनत–प्रतिपालक पतति–पवन।।1।।

कूर कुटिल कुलहीन दीन अति मलिन जवन

सुमिरत नाम राम पठये सब अपने भवन।।2।।[1]

'ध्रुवपद' स्वरलिपि

स्थायी– **'ताल–चारताल'**

ध	ध	प	प	प	म॑	प	ध	प	म	रे	स
र	घु	प	ऽ	ति	वि	प	ति	द	व	ऽ	न
प	प	म	रे	प	म	रे	–	स	नी़	स	–
प	र	म	ऽ	कृ	पा	ऽ	लु	प्र	न	त	ऽ
म॑	प	ध	नी	सं	नी	ध	प	म	म	रे	स
प्र	ति	पा	ऽ	ल	क	प	ति	त	प	व	न
X		0		2		0		3		4	

(1) विनय–पत्रिका गोस्वामी तुलसीदास, (टीकाकार)–डॉ0 राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी, पृ0 235

अन्तरा

प	–	प	सं	–	सं	ध	नी	रें	सं	–	सं
कू	S	र	कु	टि	ल	कु	ल	S	ही	S	न
सं	–	नी	ध	–	प	म	–	ध	प	–	प
दी	S	न	अ	ति	म	ली	S	न	ज	व	न
म	प	ध	–	नी	सं	रें	सं	नी	ध	–	प
सु	मि	S	र	S	त	ना	S	म	रा	S	म
सं	–	नी	ध	–	प	म	–	रे	स	–	स
प	ठ	ए	स	S	ब	अ	प	ने	भ	व	न
X		0		2		0		3		4	

'राग–कल्याण'

गीतावली (बालकाण्ड)
(पद सं0–54)

मुनि के संग बिराजत बीर।

काकपच्छ धर, कर कोदंड–सर, सुभग पीतपट कटि तूनीर।।1।।

बदन इंदु, अंभोरूह लोचन, स्याम गौर सोभा–सदन समीर।

पुलकत ऋषि अवलोकि अमित छबि, उर न समाति प्रेम की भीर।।2।।[1]

स्वरलिपि

स्थायी– 'ताल–दीपचन्दी'

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14
प	प	–	रे	–	रे	–	ग	–	–	ग	–	–	–
मु	नि	ऽ	के	ऽ	ऽ	ऽ	सं	ऽ	ऽ	ग	ऽ	ऽ	बि
ऩि	ध़	–	ऩी	–	रे	–	स	–	–	स	–	–	स
रा	ऽ	ऽ	ज	ऽ	त	ऽ	वी	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	र
ऩी	–	–	रे	–	रे	–	ग	–	–	ग	–	–	–
का	ऽ	ऽ	क	ऽ	प	ऽ	ऽ	क्ष	ऽ	ध	ऽ	ऽ	र
रे	–	–	ग	–	प	–	रे	–	–	स	–	–	–
क	र	ऽ	को	ऽ	ऽ	ऽ	दं	ऽ	ड	स	ऽ	र	ऽ
ग	–	–	म॑	–	ध	–	म॑	ध	सं	नी	–	ध	प
सु	भ	ऽ	ग	ऽ	पी	ऽ	ऽ	त	ऽ	प	ऽ	ट	ऽ
ग	–	रे	ग	–	प	–	रे	–	–	स	–	–	–
क	टि	ऽ	तू	ऽ	ऽ	ऽ	नी	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	र	ऽ

(1) गीतावली, (सुन्दर काण्ड) तुलसीदास, प्रकाशक,–गीता प्रेस गोरखपुर, पृ0 85

अन्तरा

म	म	—	ग	—	—	—	म	—	—	ध	म	म	ध
ब	द	ऽ	न	ऽ	ऽ	ऽ	इं	ऽ	ऽ	दु	ऽ	अं	ऽ
सं	—	—	सं	—	सं	—	नी	रें	—	सं	—	—	—
भो	ऽ	ऽ	रू	ऽ	ह	ऽ	लो	ऽ	ऽ	च	ऽ	न	ऽ
नी	—	—	नी	—	ध	—	नी	—	—	ध	—	प	—
स्या	ऽ	ऽ	म	ऽ	गौ	ऽ	ऽ	र	ऽ	सो	ऽ	भा	ऽ
म॑	ग	—	म॑	—	ध	—	प	—	—	प	—	प	—
स	द	ऽ	न	ऽ	स	ऽ	री	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	र	ऽ
नी	रें	—	गं	—	पं	—	रें	—	—	सं	—	सं	—
पु	ल	ऽ	क	ऽ	त	ऽ	ऋ	षि	ऽ	अ	ऽ	व	ऽ
नी	ध़	—	नी	—	रें	—	सं	—	—	सं	—	—	—
लो	ऽ	ऽ	कि	ऽ	अ	ऽ	मि	त	ऽ	छ	ऽ	बि	ऽ
सं	—	—	नी	—	ध	—	प	—	—	म॑	—	ग	—
उ	र	ऽ	न	ऽ	स	ऽ	मा	ऽ	ऽ	ति	ऽ	प्रे	ऽ
रे	—	—	ग	—	प	—	रे	—	—	स	—	स	—
ऽ	म	ऽ	की	ऽ	ऽ	ऽ	भी	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	र	ऽ
X			2				0			3			

'राग–बिहाग'

विनय पत्रिका
(पद सं0–107)

है नीको मेरो देवता कोसलपति राम।

सुभग सरोरूह लोचन सुठि सुन्दर स्याम।।1।।

सिय–समेत सोहत सदा छबि अमित अनंग।

भुज बिसाल सर धनु धरे, कटि चारू निषंख।।2।।(1)

स्वरलिपि

स्थायी–

'ताल–एकताल'

ऩि	स	ग	म	प	–	नि	सं	नि	प	गम	ग–
है	ऽ	नी	ऽ	को	ऽ	मे	रो	दे	व	ताऽ	ऽऽ
ग	म	प	–	ग	म	प	नि	ध	प	गम	ग
को	ऽ	स	ल	प	ति	रा	ऽ	ऽ	ऽ	ऽऽ	म
ग	म	प	नि	सं	सं	सं	सं	सं	रें	सं	–
सु	भ	ग	स	रो	ऽ	रू	ह	लो	ऽ	च	न
नि	–	प	प	प	–	ग	म	–	ग	रे	स
सु	ठि	सुं	ऽ	द	र	स्या	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	म
X		0		2		0		3		4	

(1) विनय–पत्रिका गोस्वामी तुलसीदास, (टीकाकार)–डॉ0 राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी, पृ0116

अन्तरा

ग	म	प	नि	सं	–	सं	–	सं	रें	सं	सं
सि	य	स	मे	ऽ	त	सो	ऽ	ह	त	स	दा
प	नि	सं	–	गं	रें	सं	–	नि	ध	प	गम,ग
छ	वि	ऽ	ऽ	अ	मि	त	ऽ	अ	नं	ऽ	ऽऽ,ग
ग	म	प	नि	ध	प	म॑	प	ग	म	गरे	सा
भु	ज	वि	शा	ऽ	ल	स	र	ध	नु	ऽध	रे
नि़	स	ग	म	प	–	ग	म	ग	रे	स	–
क	टि	ऽ	ऽ	चा	ऽ	रू	ऽ	नि	षं	ऽ	ख
X		0		2		0		3		4	

'राग–सोरठ'

विनय पत्रिका
(पद सं0–162)

ऐसो को उदार जग माहीं
बिनु सेवा जो द्रवै दीन पर राम सरिस कोउ नाहीं।।1।।
जो गति जोग बिराग जतन करि नहिं पावत मुनि ग्यानी।
सो गति देत गीध सबरी कहँ प्रभु न बहुत जिय जानी।।2।।[1]

स्वरलिपि

स्थायी–

'ताल–कहरवा (ठेका दुगुन में)'

				प	नि	सं	रें
				ऐ	S	सो	S
नी	ध	प	–	ग	रे	म	म
को	S	उ	दा	S	र	ज	ग
प	प	प	–	प	प	म	म
मा	S	ही	S	बि	नु	से	S
रे	रे	स	–	नि़	स	रे	ग
वा	S	ज़ो	S	द्र	वै	S	दी
म	ग	रे	–	प	नि	सं	रें
S	न	प	र	रा	S	म	स
नि	ध	प	–	रेप	मध	पनी	धप
रि	स	को	उ	नाS	SS	SS	SS
म	ग	रे	–				
ही	S	S	S				

(1) विनय–पत्रिका गोस्वामी तुलसीदास,(टीकाकार)–डॉ0 राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी, पृ0185

अन्तरा

				म	प	नी	नी
				जो	S	ग	ति
नी	नी	नी	–	नी	नी	नी	नी
जो	S	ग	बि	रा	S	ग	ज
सं	सं	सं	–	नि	नि	नि	नि
त	न	क	रि	न	हिं	पा	S
नि	नि	सं	रें	नी	–	ध	नी
व	त	मु	नि	ग्या	S	S	S
ध	–	प	–	प	–	रें	रें
नी	S	S	S	सो	S	ग	ति
रें	रें	रें	रें	सं	–	नी	नी
दे	S	त	गी	S	ध	स	ब
सं	सं	सं	–	प	नी	सं	रें
री	S	क	हँ	प्र	भु	न	ब
नी	ध	प	–	रेप	मध	पनी	धप
हु	त	जि	य	जाS	SS	SS	SS
म	ग	रे	–				
नी	S	S	S				
X				0			

'राग–नट'

गीतावली
(पद सं0–40)

खेलन चलिए आनंद कंद।
सखा प्रिय नृप द्वार ठाड़े बिपुल बालक–बृंद।।1।।
तृषित तुम्हरे दरस कारन चतुर चातक दास।
बपुष–बारिद बरषि छबि–जल हरहु लोचन प्यास।।2।।[1]

(ध्रुपद) ''स्वरलिपि''

स्थायी–

'ताल–चारताल'

स	ध	प	ध	म॑	प	म	ग	[ग]म	रे	स	स
खे	ऽ	ल	न	च	लि	ए	आ	नं	द	कं	द
[ग]रे	रे	गम	प	म	ग	म	रे	स	रे	स	–
स	खा	प्रिय	नृ	प	द्वा	ऽ	र	ठा	ऽ	ड़े	ऽ
ग	म	[ध]प	–	म	ग	म	रे	स	रे	स	–
बि	पु	ऽ	ल	बा	ऽ	ल	क	बृं	ऽ	ऽ	द
X		0		2		0		3		4	

(1) गीतावली, (बाल काण्ड) तुलसीदास, प्रकाशक,–गीता प्रेस गोरखपुर, पृ0 73

अन्तरा

प	–	सं	सं	सं	–	सं	नि	[नि]ध	–	सं	रें
तृ	षि	त	तु	म्ह	रे	द	र	स	का	र	न
सं	नि	ध	प	प	सं	सं	नि	ध	–	सं	रें
च	तु	ऽ	र	चा	ऽ	ल	क	दा	ऽ	ऽ	स
सं	नि	ध	प	[मं]गं	मं	पं	गं[गं]	[मं]मं	रें	सं	सं
ब	पु	ष	बा	ऽ	रि	द	ब	र	षि	छ	बि
[नि]प	संनि	सं	नि	ध	प	म	ग	[ग]म	रे	स	–
ज	लऽ	ह	र	हु	लो	ऽ	च	न	प्या	ऽ	स
X		0		2		0		3		4	

'राग–ललित'

गीतावली (बालकाण्ड)
(पद सं0–33)

छोटी–छोटी गोड़ियां अँगुरियाँ छबीलीं छोटी,
नख–जोति मोती मानो कमल–दलनि पर।
ललित आँगन खोलै, ठुमकु ठुमकु चलैं,
झुँझुनु झुँझुनु पाँय पैजनी मृदु मुखर।।[1]

स्वरलिपि

स्थायी– 'ताल–तीनताल'

X				2				0				3			
								–	गरे	–ग	–म	ग	रे	स	ऩि
								ऽ	छोटी	ऽछो	टीऽ	गो	ड़ि	यां	अं
म	ग	ग	ग	म	म॑	म	ग	–	म॑ध	–म	–ध	सं	सं	सं	सं
गु	रि	यां	छ	बी	ली	छो	टी	ऽ	नख	ऽजो	ऽति	मो	ती	मा	नो
–	निरें	–नि	–ध	म॑	ध	म॑	ग								
ऽ	कम	ऽल	ऽद	ल	नि	प	र								

(1) गीतावली, (बाल काण्ड) तुलसीदास, प्रकाशक,–गीता प्रेस गोरखपुर, पृ0 66

अन्तरा

								–	म॑ध	–म॑	–ध	सं	सं	सं	सं
								ऽ	ललि	ऽत	ऽआँ	ग	न	खे	ले
–	निरें	–नि	–ध	नि	म॑	ध	–	–	–निरें	–गं	–रें	गं	रें	सं	–
ऽ	ठुमु	ऽकु	ऽठु	मु	कु	च	लैं	ऽ	झुंझु	ऽनु	ऽझुं	झु	नु	पाँ	य
–	निरें	–नि	–ध	म॑	ध	म॑	ग								
ऽ	ऽपै	जनी	ऽमृ	दु	मु	ख	र								
x				2				0				3			

'राग–बसन्त'

विनय पत्रिका
(पद सं0–64)

बन्दौ रघुपति करूना–विधान। जाते छूटे भव–भेद ग्यान।।1।।

रघुबंस कुमुद सुखप्रद निसेस। सेवत पद–पंकज अज महेस।।2।।[1]

स्वरलिपि

स्थायी

'ताल–तीनताल'

स	ग	म	ध	सं	सं	रें॒	सं	–	म॑	ध॒	म	ग	रे॒	–	स
बं	ऽ	दौ	ऽ	र	घु	प	ति	क	रू	ना	ऽ	नि	धा	ऽ	न
प	प	म॑	ग	ग	म॑	ध॒	म	ग	म॑	म॑	ग	म॑–	ग	रे॒	स
जा	ऽ	ते	ऽ	छू	ऽ	ऽ	टै	भ	व	भे	ऽ	दऽ	ग्या	ऽ	न
x				2				0				3			

अन्तरा

म॑	–	ग	ग	म॑	–	ध॒	म॑ध	सं	सं	सं	सं	सं	रें॒	सं	–
र	घु	वं	ऽ	स	कु	मु	दऽ	सु	ख	प्र	द	नि	से	ऽ	स
नि	रें॒	ग	रें॒	गं	रें॒	सं	–	(सं)	–	नि	ध॒	म॑	ग	रे	स
से	ऽ	व	त	प	द	पं	ऽ	क	ज	अ	ज	म	हे	ऽ	स
x				2				0				3			

---

(1) विनय–पत्रिका गोस्वामी तुलसीदास, (टीकाकार)–डॉ0 राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी, पृ070

'राग–कान्हरा'

गीतावली (बालकाण्ड)
(पद सं0–55)

सोहत मग मुनि सँग दोउ भाई।
तरून तमाल चारू चंपक–छबि कबि सुभाय कहि जाई।।1।।
भूषन बसन अनुहरत अंगनि, उमगति सुन्दरताई।
बदन मनोज सरोज लोचननि रही है लुभाइ लुनाई।।2।।[1]

स्वरलिपि

स्थायी– **'ताल–पंजाबी'**

				ग	म	रे	स	नी	स	रे	स	ध	–	नी	–
				सो	ऽ	ह	त	म	ग	मु	नि	सं	ग	दो	उ
स	–	स	–	स	–	रे	म	प	प	प	–	म	प	नी	प
भा	ऽ	ई	ऽ	त	रू	न	त	मा	ऽ	ल	चा	ऽ	रू	चं	ऽ
ग	म	रे	स	प	–	रें	सं	रें	रें	सं	सं	सं	ध	नि	प
प	क	छ	बि	क	बि	सु	भा	ऽ	य	क	हि	जा	ऽ	ऽ	ऽ
ग	म	रे	स												
ऽ	ऽ	ई	ऽ												
X				2				0				3			

(1) गीतावली, (बाल काण्ड) तुलसीदास, प्रकाशक,–गीता प्रेस गोरखपुर, पृ0 86

अन्तरा

								म	–	प	–	ध	–	नी	नी
								भू	ऽ	ष	न	ब	स	न	अ
सं	–	सं	सं	रें	नी	सं	–	ध	–	ध	ध	नी	–	सं	–
नु	ह	र	त	अं	ऽ	ग	नि	उ	म	ग	ति	सु	ऽ	न्द	र
सं	–	नीसं	रेंस	ध	नी	प	–	प	–	गं	मं	रें	रें	सं	–
ता	ऽ	ऽऽ	ऽऽ	ई	ऽ	ऽ	ऽ	ब	द	न	म	नो	ऽ	ज	स
रें	सं	नि	सं	ध	नी	प	–	म	–	म	म	प	–	नीप	मप
रो	ऽ	ज	लो	ऽ	च	न	नि	र	ही	है	लु	भा	ऽ	ईऽ	लुऽ
ग	–	गऽ	मऽ	रे	रे	स	–	नी	स	रे	स	ध	–	नी	–
ना	ऽ	ऽऽ	ऽऽ	ई	ऽ	ऽ	ऽ	म	ग	मु	नि	सं	ग	दो	उ
स	–	स	–												
भा	ऽ	ई	ऽ												
x				2				0				3			

'राग–मल्हार'

श्रीकृष्ण गीतावली
(पद सं0–18)

ब्रज पर घन घमंड करि आए।
अति अपमान बिचारि आपनो कोपि सुरेश पठाए।।1।।
दमकति दुसह दसहुँ दिसि दामिनि, भयो तम गगन गंभीर।
गरजत घोर बारिधर धावत प्रेरित प्रबल समीर।।2।।(1)

स्वरलिपि

स्थायी– 'ताल–तीनताल'

म	रे	प	म	नी	ध	नी	सं	नी	प	म	प	ग	म	रे	स
ब्र	ज	प	र	घ	न	घ	मं	ऽ	ड	क	रि	आ	ऽ	ए	ऽ
ग	म	रे	स	रे	रे	स	–	ऩी	–	ध़	–	ऩी	ऩी	स	–
अ	ति	अ	प	मा	ऽ	न	वि	चा	ऽ	र	आ	ऽ	प	नो	ऽ
म	–	म	म	प	प	नीप	मप	ग	–	ग	म	रे	रे	स	–
को	ऽ	पि	सु	रे	ऽ	सऽ	पऽ	ठा	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ए	ऽ
X				2				0				3			

(1) श्रीकृष्ण गीतावली, गोस्वामी तुलसीदास, प्रकाशक गीता प्रेस, गोरखपुर, पृ0 22

अन्तरा

म	रे	प	म	नी	ध	नी	सं	सं	सं	सं	सं	रें	सं	नि	सं
द	म	क	ति	दु	स	ह	द	स	हुँ	दि	सि	दा	ऽ	मि	नि
नी	–	नी	ध	नी	नी	सं	–	रें	सं	नी	सं	नी	ध	नी	प
भ	यो	त	म	ग	ग	न	गं	भी	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	र
गं	मं	रें	सं	रें	रें	सं	–	नी	नी	सं	सं	नी	नी	प	–
ग	र	ज	त	घो	ऽ	र	बा	ऽ	रि	ध	र	धा	ऽ	व	त
म	–	म	म	प	प	नीप	मप	ग	–	ग	म	रे	रे	स	–
प्रे	ऽ	रि	त	प्र	ब	लऽ	सऽ	मी	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	र
X				2				0				3			

पंचम अध्याय

तुलसी के पदों में प्रयुक्त रागों का विश्लेषणात्मक अध्ययन

(रागों का शास्त्रीय परिचय, स्वरूप एवं सांगीतिक–तत्व)

संगीत कला आध्यात्मिक साधना का सबसे महत्वपूर्ण माध्यम है। संगीत को मनोंरंजन का नहीं, आनन्द का पर्याय बताया गया है। आनन्द ही ईश्वर का स्वरूप है। संगीत ईश्वर स्वरूप होने के कारण अपने साधकों को अपने लक्ष्य तक पहुँचाने का फल तत्काल देता है। मानवीय संवेदना और संगीत का अनूठा संबंध वैदिक ऋषियों ने जोड़ा था।

रागों की कल्पना भारतीय संगीत साधकों को सुलभ व ग्राह्य तो बनाती ही है, साथ ही अपने में आकर्षण भी पैदा करती है। इन रागों को गायन में साक्षात अनुभव करने के लिए प्रतिष्ठित ध्यान की कल्पना भी की गयी है जैसे भैरव राग के लिए कहा गया है–

"गंगाधर : शशिकला तिलकास्त्रिनेत्र सर्वोविभूषित तनुगज कृत्तिवासाः।

भास्वस्त्रिशूलकर एषनृमण्डधारी शुभ्राम्बरों जयति भैरव आदि रागः।

जो जन के चित्त को आनन्द से भर दे ऐसे स्वर समूह को एक साथ गाने बजाने पर जो स्वर व्यवस्था प्रस्तुत होती हो उसे राग की संज्ञा दी गयी है। ये राग दो प्रकार के हुये– 1– प्राचीन 2–नवीन

प्राचीन रागों को 'मार्ग–राग' और नवीन रागों को 'देशी राग' कहा गया। ब्रह्मा, भरत और नारद आदि महर्षियों के द्वारा 'मार्ग राग' ही प्रतिपादित है।

इन रागों पर जिन्होंने अभ्यास किया वे गायन वादन में निपुण हुये और जो स्वयं छन्द रचना करने लगे वे संगीत शास्त्र में वाग्येकार के नाम से प्रसिद्ध हुये।

भारतीय संगीत में राग और रस की अन्योन्याश्रित भूमिका दिखाई देती है। भारतीय संगीत में राग की परिकल्पना बेजोड़ है। ये ही स्वर पुंज प्राचीन संगीत में जाति के नाम से जाने जाते है। एक विशिष्ट स्वरसमुदाय से उत्पन्न राग की प्रभावशाली कल्पना केवल भारतीय संगीत में ही उपलब्ध है। इसका स्वरूप अविनाशी और मंगलकारी है। राग का अंतिम लक्ष्य परमानन्द की प्राप्ति ही है।

इन रागों के स्वरूप निर्धारण में इसकी आध्यात्मिकता सहज ही स्वीकृत है। सभी रागों के स्वरूप संगीत शास्त्रों में मान्य हैं। इनके इष्ट देवता भी हैं। उन रागों की प्रस्तुति के समय उनका ही ध्यान, राग की एकाग्रता और सम्पूर्णता की उपलब्धि के लिए कलाकार के द्वारा करने का विधान है।

ये सब मिलकर विविध वर्णीय रागों की परिकल्पना करते हैं। और नये भावों की पुष्टि करते रहते हैं। प्रत्येक स्वर दूसरे स्वर की संगति से अपना स्वरूप बदलता रहता है। परन्तु इसके बाबजूद राग का भाव सदा अक्षुण्ण बना रहता है।

मानवीय संवेदना के उत्लास को मुखरित करते अथवा विनयाजनित कारूणिक भावों के ज्वार उठाते गोस्वामी तुलसीदास जी के पदों में राग के विभिन्न रूप अभिव्यक्त हुये हैं। राग के मुख्य स्वर वादी एवं सम्वादी स्वरों के बदलाव से भाव भी बदलते रहते हैं। मध्यम के प्रयोग से ललित केदारा तथा मालकौंस में गुरू गंभीर प्रकट होता है, वहीं पंचम के प्रयोग से श्रृंगार का स्वरूप मुखर होता है।

तुलसी जी ने अपने गीतिकाव्यों में राग–रागिनियों का प्रयोग कर स्वयं को स्थापित किया है। कहते भी हैं कि कवियों के ह्रदय के उद्‌गार संगीतमय होते हैं। महाकवि तुलसी मध्ययुगीन काल के अप्रतिम कवि हैं। वे कुशल प्रबन्धकार ही नहीं वरण् निष्णात संगीतज्ञ भी थे, उनकी संगीत प्रधान रचनायें विनयपत्रिका, गीतावली, तथा श्रीकृष्ण गीतावली व्यक्तिगत तीव्र सुख–दुखात्मक अनुभूतियों के अक्षय भंडार की रचनायें हैं। गीतावली में 19 राग, श्रीकृष्ण गीतावली में 10 राग एवं विनय पत्रिका में 20 राग है। कुल मिलाकर तुलसी ने 21 रागों का प्रयोग किया हैं इन तीनों रचनाओं में लगभग 668 पद हैं जिसमें 480 पद टेक वाले तथा 288 पद बिना टेक वाले हैं। तुलसी ने टेक का प्रयोग भाव केन्द्रण के साथ ही लहरियों के लिए भी किया है। टेक का प्रयोग मध्य में हुआ है।

तुलसी, तानसेन, बैजूबावरा की गायन पद्धति से प्रभावित थे, अतः उन्होनें अपनी समस्त रचनाओं में सांगीतिक तत्वों का बहुआयामीय प्रयोग किया है।

गीति काव्यों में दिये गये रागों का स्वरूप

रागों के नाम	वादी संवादी	शुद्ध कोमल व तीव्र स्वर का प्रयोग	गायन समय	रस व भाव
बिलावल	ध –ग	सब स्वर शुद्ध	प्रातःकाल	श्रृंगार रस
भैरव	ध –रे	रे ध	"	भक्ति रस
भैरवी	म–स	रे ग ध नि	प्रातःकाल	भक्ति रस व वियोग रस
विभास	ध ग	रे ध	"	भक्ति रस व गंभीर रस
रामकली	प स	रे ध दोनों म, नि	प्रातःकाल	भक्ति रस
आसावरी	ध ग	ग, ध नि	दिन का द्वितीय प्रहर	श्रृंगार रस
तोड़ी	ध ग	रे ग ध म	"	भक्ति रस
सारंग	रे प	दोनों म, नि	"	शांत रस
धनाश्री	प स	नि ग	दिन का तृतीय प्रहर	भक्ति रस
मारू	ग नि	दोनों म, म	दिन का अंतिम प्रहर	श्रृंगार रस
गौरी	रे प	रे ध	सायंकाल	भक्ति रस
जैतश्री	ग नि	रे म ध	सायंकाल	शांत रस
केदारा	स म	दोनों म	रात्रि का प्रथम प्रहर	श्रृंगार रस
कल्याण	प स	म	"	शांत रस
बिहाग	ग नि	दोनों म	रात्रि का द्वितीय प्रहर	श्रृंगार रस
सोरठ	रे ध	दोनों नी	"	"
नट	म स	"	"	गंभीर भाव
ललित	म स	रे दोनों म	रात्रि का अंतिम प्रहर	भक्ति रस
वसन्त	स म	रे ध दोनों म	"	शांत रस
कान्हरा	म स	ग दोनों नि	मध्य रात्रि	"
मल्हार	स प	दोनों नि, ग	वर्षाकाल	वियोग रस

1–राग बिलावल– राग बिलावल, बिलावल थाट का आश्रय राग है। इसमें सभी स्वर शुद्ध लगते हैं। इसकी जाति सम्पूर्ण सम्पूर्ण हैं वादी धैवत, सम्वादी, गन्धार। गायन समय दिन का प्रथम प्रहर है। यदि आरोह में मध्यम को कम कर लिया जाय तो राग अधिक स्पष्ट हो जाता है। जैसे– रे ग , प म ग, आरोह में कभी–कभी धैवत को छोड़कर ग प नी नी सं की भांति गाते हैं। अवरोह में जब कोमल निषाद को 'ध नी ध प' की भॉति दो धैवत के बीच लेते हैं, तो ये अल्हैया बिलावल हो जाता है।

'सं नी ध नी ध प' ये अल्हैया बिलावल का खास अंग है। इसी प्रकार अवरोह में गंधार का प्रयोग 'म ग म रे' इस प्रकार वक्र रूप में किया जाता है। ग रे ग प ध नी ध प, प नी ध नी सं, सं नि ध नी ध प, प ध ग म रे आदि स्वर संगतियाँ राग वाचक हैं इनका बार–बार प्रयोग किया जाता है।

प़, ऩी, ध़ ऩी स रे सा – स्वरों से कल्याण की छाया आ जाती है अतः कई गुणीजन बिलावल को प्रातः काल का कल्याण भी कहते हैं। ये एक रागांग राग है जिसके कई प्रकार हैं।

आरोह–सा रे ग म, ग प, नी ध नी सं

अवरोह– सं नि ध प म ग म रे स

पकड़– ग रे ग प, ध नी सं

गोस्वामी तुलसीदास ने श्री गणेश स्तुति राग बिलावल में की है। संबंधित स्वर लिपि पूर्व में दी गई।

2–राग भैरव– राग भैरव की उत्पत्ति भैरव थाट से ही मानी गई है। इसमें कोमल ऋषभ–एवं कोमल धैवत तथा अन्य स्वर शुद्ध हैं। ऋषभ–धैवत आंदोलित है। यह प्रातः काल का शांत तथा करूण रसपोषक, गंभीर प्रकृति का संधिप्रकाश राग है। वादी ध और संवादी ऋषभ है। जाति सम्पूर्ण है। यह एक प्राचीन राग है।

सा ग म प, ग म रे, ग म ध, सं नि सं आदि स्वर संगतियाँ राग वाचक हैं। और उनका प्रयोग बार–बार किया जाता है। कभी–कभी इसके आरोह में पंचम ज्र्ण कर दिया जाता हैं जैसे– ग म ध ध नि सं। अवरोह में बहुधा गन्धार वक्र कर दिया जाता है। जैसे म प ग म रे रे सा। अवरोह में कुछ गुणीजन प ध नि ध प इस प्रकार कोमल निषाद का अल्प प्रयोग विवादी रूप में करते हैं। जिससे राग की रंजकता में वृद्धि होती है। आरोह में ऋषभ छोड़कर सा – ग संगति से किया जाता है। इसी प्रकार अवरोह में बहुधा –ग म रे– यह एक रागांग राग है। इसके कई प्रकार हैं।

आरोह– सा रे ग , म प , ध नि सं

अवरोह– सं नि ध , प, म ग रे सा

पकड़– ग म ध ऽ ध ऽ प, ग म रेऽ रेऽ सा।

3–राग–भैरवी– राग भैरवी, भैरवी थाट से उद्भूत है। इसमें रे ग ध और नि कोमल तथा शेष स्वर शुद्ध लगते हैं। वादी मध्यम और संवादी षड्ज हैं जाति सम्पूर्ण–सम्पूर्ण है। गाने का समय शास्त्रीय दृष्टि से प्रातः काल है। यह सुगम शास्त्रीय संगीत का अत्यंत लोकप्रिय राग है। इसमें रे ग ध और नि स्वर कोमल लगते हैं, किन्तु प्रचार में इस राग में बारहों स्वर प्रयोग किये जाते हैं। शुद्ध रे और ध का प्रयोग इतना अधिक बढ़ गया है कि अगर किसी साधारण गायक को भैरवी में शुद्ध रे और ध का प्रयोग करने के लिए मना कर दिया जाय तो उसे भैरवी गाना कुछ मुश्किल हो जायेगा। यह गंभीर प्रकृति का राग नही है।

आरोह–सा रे ग म प ध नि सं।

अवरोह– सं नि ध प म ग रे सा।

पकड़– म ग रे ग , सा रे सा , ध नि सा।

4–विभास– राग विभास को भैरव थाट जन्य माना गया है। इसमें रिषम–धैवत कोमल व अन्य स्वर शुद्ध प्रयोग किये जाते हैं। इसकी जाति औडव–औडव है। वादी स्वर धैवत व सम्वादी स्वर रिषभ है। गायन समय प्रातः 4 से 7 तक है। इस राग में म–नि वर्ज्य

होने से ग–प स्वरों की संगति होती है। भैरव का प्रकार होने के कारण धैवत और रिषभ पर सावकाश आंदोलन दिखाया जाता है। धैवत से पंचम पर न्यास करने से राग विभास खिल उठता है। विभास उत्तंराग प्रधान राग है राग विभास के रे ध स्वरों को शुद्ध कर देने से राग भूपाली व देशकार हो जायेगा।

आरोह– सा रे ग प ध सं

अवरोह– सं ध प, ग प ध प, ग रे सा

पकड़– ग प ध ध प, ग प ग रे सा।

5–राग रामकली– राग रामकली को भैरव थाट जन्य माना गया है। इसमें रिषभ–धैवत कोमल बथा तथा दोनों मु–नि प्रयोग किये जाते हैं। आरोह में रिषभ अति अल्प और अवरोह में सातों स्वर प्रयोग किये जाते हैं, इसलिए इसकी जाति षाडव–सम्पूर्ण मानी गई है। गायन समय प्रातःकाल है। वादी प और सम्वादी सा है। इस राग में यद्यपि दोनों मध्यम प्रयोग किये जाते हैं किन्तु शुद्ध म प्रधान स्वर है। तीव्र म के प्रयोग से यह अपने सम–प्रकृति रागों से अलग रहता है। इसके अतिरिक्त भैरव के किसी भी प्रकार में तीव्र म नहीं लगता म प ध नि ध प , म॑ प ग म रे रे सा से राग रामकली स्पष्ट हो जाता है। कोमल नि का वक्र प्रयोग अवरोह में किया जाता है। जैसे – सं नि ध नि ध प अथवा म प ध नि ध प अथवा ग म नि ध प, म॑ प, ग म रे रे सा।

आरोह– सा ग, म प, ध नि सं

अवरोह– सं नि ध प, म प ध नि ध प, ग म रे रे सा।

पकड़– म प ध नि ध प, ग म रे स।

6–आसावरी– यह राग आसावरी थाट से ही उत्पन्न माना गया है, इसमें ग ध और नि स्वर कोमल लगते हैं। वादी स्वर धैवत और सम्वादी गन्धार है। आरोह में गन्धार और निषाद र्ज्य है। तथा अवरोह में सातों स्वर प्रयोग किये जाते हैं। इसलिए इसकी जाति औडव–सम्पूर्ण है। इसका गायन–समय दिन का दूसरा प्रहर है। अतः जाति भेद से राग भेद

स्पष्ट है। म प सं– ध–प, प–गं– रें– सं, रे नि ध प, ध म प ग आदि स्वर संगतियों इस राग की अंगरूप है। और इनका बार–बार प्रयोग किया जाता है। अवरोह में मध्यम वक्र प्रयोग होता है, जैसे– सं नि ध प, म प ध म, प ग रे सा। प ग स्वर समूह बार–बार प्रयोग किया जाता है।

आरोह–सा रे म, प ध सं

अवरोह– सं नि ध प, म प ध म प ग रे सा

पकड़– म प ध म, प ग रे सा ।

7–तोड़ी–राग तोड़ी, तोड़ी थाट का आश्रय राग है। इसमें रिषभ गंधार, धैवत, कोमल, मध्यम तीव्र व निषाद शुद्ध प्रयोग किया जाता है। आरोह–अवरोह में सातों स्वर प्रयोग किये जाते हैं। इसलिए इसकी जाति सम्पूर्ण–सम्पूर्ण है। वादी धैवत व सम्वादी गंधार है, इस राग का गायन–समय दिन का दूसरा प्रहर है। तोड़ी के अनेक प्रकार हैं–जैसे गुर्जरी–तोड़ी, विलासखानी तोड़ी, भूपाल तोड़ी आदि।

यह उत्तंराग प्रधान राग अवश्य है, किन्तु इसका चलन मन्द्र सप्तक में अधिक होता है। उत्तरांग प्रधान राग चंचल प्रकृति के होते हैं, किन्तु यह गम्भीर प्रकृति का राग हैं और इसमें जितना छोटा ख्याल शोभित होता है उतना ही विलम्बित ख्याल शोभित होता है। यह रागांग प्रधान राग हैं रे ग ध – महत्व के स्वर है।

आरोह–सा रे, ग मं प ध नि सं

अवरोह– सं नि ध प , मं ग रे सा

पकड़– सा रे ग रे ग रे सा, ध, मं ध मं ग रे ग रे सा

8–सारंग– यह काफी थाट का राग है। प्रायः इसे वृन्दावनी सारंग कहते हैं। इस राग में दोनों निषाद तथा शेष स्वर शुद्ध लगते हैं, आरोह में शुद्ध तथा अवरोह में कोमल निषाद का प्रयोग किया जाता है। गंधार व धैवत वर्जित स्वर हैं, अतः जाति औढ़व–औढ़व है। वादी–ऋषभ तथा सवांदी पंचम है। गायन समय दिन का दूसरा प्रहर है।

आरोह—स रे म प नि सं

अवरोह— सं नि प म रे स।

स्वरूप— ऩि स रे, म रे , प म रे स।

9—धनाश्री— राग धनाश्री काफी थाट से उत्पन्न औढ़व सम्पूर्ण जाति का राग है। इसमें गंधार और निषाद कोमल है। वादी पंचम षड़ज संवादी है। आरोह में ऋषभ और धैवत वर्जित है। गायन समय दिन का तीसरा प्रहर है।

काफी थाट से उत्पन्न होने वाले विशिष्ट रागांगों के निम्न पांच वर्ग हैं। जिनमे धनाश्री, काफी, सारंग, कान्हरा तथा मल्हार। प्रस्तुत धनाश्री अंग में रे ध का दौर्बल्य तथा 'स प' और 'म' की प्रबलता है। 'प ग' स्वर संगति विशेष रूप से ली जाती है। जो अत्यन्त मधुर लगती है। इस राग का उठाव प्रायः निषाद से रहता है। पंचम पर न्यास। समप्रकृति राग भीमपलासी है। वादी के प्रयोग एंव बंदिश के चलन से उनमें भिन्नता दिखाई देती है। धनाश्री का उल्लेख प्राचीन ग्रंथों में भी मिलता हैं एक अन्य में भैरवी थाट की धनाश्री है। जिसमें रे ध कोमल है।

आरोह—स ग म प नि सं।

अवरोह— सं नि ध प म ग रे स।

स्वरूप— नि स. ग म प, ध प नि ध प, म ग म प ग ग रे स, नि स, प़ नि स , रे स, ग रे स।

भैरवी थाट जन्य स्वरूप— नि स ग, म प, प ध प, म प ग, ग म प, ग रे स, रे नि स, प प ध प ग, म प, नि, नि सं, सं गं रें, सं, प नि सं, प ध म प, ग म प , ग, रे स।

10—मारू— 'मारू' राग पुष्टिमार्गीय सम्प्रदाय का प्रचलित राग है। यह राग स्वरूप भी इस प्रणाली में परम्परागत रूप से गाया जाता है। 'गायन—दर्पण' तथा 'नाद—विनोद' दोनों में ठीक उसी प्रकार से राग 'मारू' का वर्णन मिलता है जैसा कि इस सम्प्रदाय में है।

इसके स्वर भैरव थाट के रे ध कोमल हैं। चलन अधिकतर तार सप्तक में है। आरोह में रिषभ वर्जित है। शुद्ध नी का विशेष महत्व है। जैसे– सं नी ध नी, प ध सं, म ग प, प ध प, प ध नी, प ध सं।

सायंकालीन झांकियों में विशेष रूप से शयन की झांकी में इस राग के पद गाए जाते हैं।

11–राग गौरी– 'गौरी' राग के अनेक प्रकार हैं। जिसमें 'भैरव थाट' से उत्पन्न गौरी एवं 'पूर्वी थाट' से उत्पन्न 'गौरी राग' भेद प्राप्त हैं। 'पूर्वी थाट' से उत्पन्न गौरी का यह औढ़व सम्पूर्ण जाति वाला प्रकार है। जिसमें ऋषभ और धैवत कोमल तथा दोनों मध्यम का प्रयोग होता है। ऋषभ वादी तथा पंचम संवादी है। आरोह में गंधार तथा धैवत वर्जित है। गायन समय संध्याकाल है। इसमें भी 'श्री' राग का अंग लगता है। कुछ विद्वानों के मतानुसार स्वल्प धैवत ग्रहण करने से यह 'श्री राग' से अलग हो जाता है।

आरोह–स रे प मं प नि सं।

अवरोह– सं नि ध प म प ग रे मं ग रे स।

पकड़– मं मं ग रे स, नि ध नि, रे रे ग म रे स, मं ध नि सा, रे मं ग रे स रे नि सा, मं ध म ध नि, स रे, रे ग रे स म ग, म ध प म, रे ग , रे मं, ग रे, स रे नि, स

गौरी का एक अन्य प्रकार जिसमें आरोह में धैवत लेकर श्री राग का विस्तार मध्य और तार–सप्तक में करते हुए गाया जाता है, मंप, मं, रे ग रे स मं ध नि सं रें सं, रें नि ध प, प ध ग रे, ग रे, सा, सा निप , प मं ग रे, ग रे स, नि सं रें नि ध प।

12–राग–जैतश्री– राग जैतश्री अथवा जैताश्री एक ही राग का नाम है। यह पूर्वी थाट जन्य तथा इसमें ऋषभ, धैवत, कोमल मध्यम तीव्र अन्य स्वर शुद्ध हैं। इसमें आरोह में ऋषभ धैवत वर्जित होने के कारण इसकी जाति औड़व–सम्पूर्ण है। प्राचीन राग होने के कारण इसकी जाति में मतभेद पाया जाता है। इसमें वादी गंधार व संवादी निषाद है। यह एक सांयकालीन संधि प्रकाश राग है।

इस राग में जैत और श्री राग का मिश्रण हुआ है। इसमें सा ग प ग रे सा, प सा, ग रे सा ग प, सं प' जैत राग और मं प नि सं रे नि ध़ प, मं प ध़ प सं, प ध़ प, मं प नि, सं, श्री राग के स्वर हैं। इस राग के आरोह में मध्यम को गौण (अल्प) रखना चाहिए।

पंडित अहोबल ने अपने ग्रन्थ 'संगीत पारिजात' में इस प्रकार कहा –यथा– 'आरोहणे, रि धौ न स्तो नि स्वरोद्रग्राह मन्डिते'' (1)

इस राग के पूर्वांग में सा ग प व सा मं ग प परिजात सा ग रे सा मं ग प, मं प ध़ प, मं ग, सा ग प, मं ध़ मं ग मं ग रे सा।

मन्द्र सप्तक में रे, नि़ ध़ प़ सा व मं़ प़ नि़ सा। इस प्रकार के स्वर समूह लेते हैं। उत्तरांग में तार षडज की ओर जाने के लिए एवं तार षडज से उतरने के लिए इस प्रकार स्वरों का प्रयोग करते हैं। जैसे– मं प नि नि सं, मं प ध प सं, सां रें नि ध़ प, इस प्रकार उत्तरांग गा कर ध़ मं ग मं ग, रे सा व ध़ प मं ग प, ग रे सा इस तरह मध्य षडज की शरण में आ जाते हैं।

आरोह–	नि़ सा ग, मं ग प, ध़ प नि ऽ सं
अवरोह–	सं नि ध़ प मं ध़ मं ग, प ग रे सा
पकड़–	सा ग, प, मं ध़ मं ग , मं ग, प ग रे सा।

13– राग केदारा– इस राग को कल्याण थाट जन्य माना गया है। इसमें दोनों मध्यम तथा अन्य स्वर शुद्ध लगते हैं। वादी स और संवादी म है। आरोह में रे ग और अवरोह में केवल ग स्वर ज्र्य है। इसलिए इसकी जाति औडव–षाडव है। इसका गायन समय रात्रि का प्रथम प्रहर है।

तीव्र म आरोह में पंचम के साथ और शुद्ध म आरोह–अवरोह दोनों में प्रयोग किया जाात है। कभी–कभी अवरोह में ध से म को आते समय (मींड के साथ) दोनों में एक साथ प्रयोग किये जाते हैं, जो बड़े ही मनोरंजक मालूम होते हैं। राग की सुन्दरता बढ़ाने

अभिनव गीतांजलि –भाग तीन–पं0 रामाश्रय झा 'रामरंग' पृ0 213

के लिए कभी कभी अवरोह में कोमल नि विवादी स्वर के नाते प्रयोग किया जाता है जैसे– सं ध नि प, मं प ध प म।

आरोह– स म, म प, ध प, नि ध सं

अवरोह– सं नि ध प, मं प ध प म, रे सा

पकड़– सा म, म प, मं प ध प म, रे सा।

14–राग कल्याण– यह राग कल्याण थाट से उत्पन्न अति प्रचलित तथा रंजक राग है। इसमें तीव्र मध्यम तथा अन्य स्वर शुद्ध हैं। इसका चलन खास कर ऩि रे ग– संगति से किया जाता है। आरोह में उत्तरांग में जाते समय बहुधा प छोड़कर – ग मं ध –संगति से आरोह किया जाता है। अंतरे का उठाव अधिकतर – प ग प ध प, सं –सं–नि रें ग रें, सं नि ध प– इस प्रकार किया जाता है।

ध़ ऩि रे, ऩि रे ग, मं ध नि, प रे– इत्यादि स्वर संगतियॉ राग वाचक हैं। और इनका बार–बार प्रयोग किया जाता है। वादी गंधार और संवादी निषाद है। जाति सम्पूर्ण है और गाने का समय है रात्रि का प्रथम प्रहर।

आरोह– स रे ग, मं प, ध नि सं

अवरोह– सं नि ध , प मं ग रे सा

पकड़– ऩि रे ग, मं प, रे ग, रे ऩि रे सा

15–बिहाग– इस राग की रचना बिलावल थाट से मानी गई है। इसके आरोह में रे ध स्वर वर्ज्य हैं और अवरोह में सातों स्वर प्रयोग किये जाते हैं। इसकी जाति ओडव–सम्पूर्ण है। वादी स्वर गंधार और सम्वादी निषाद है। रात्रि के प्रथम प्रहर में इसे गाते–बजाते हैं। इस राग में अल्प तीव्र म और शेष स्वर शुद्ध लगते हैं। इसकी चलन अधिकतर मन्द्र निषाद से प्रारम्भ की जाती हैं ऩि सा ग, रे सा।

आरोह में रे ध वर्ज्य है, किन्तु अवरोह में भी इनका अल्प प्रयोग होता है। अधिकतर इन्हें कण के रूप में प्रयोग करते हैं। जैसे सं नि ध प, ध प ग म ग रे सा। राग

में मध्यम तीव्र का प्रयोग पंचम के साथ विवादी स्वर की तरह किया जाता है। जैसे– प मं प ग म ग स। यह गम्भीर प्रकृति का राग है। इसका चलन मन्द्र, मध्य तथा तार तीनों सप्तकों में समान रूप से होता है।

आरोह– ऩि सा ग, म प, नि सं

अवरोह– सं नि, ध प, मं प ग म ग, रे सा

पकड़– ऩि सा ग म प, मं प ग म ग, रे सा

16–सोरठ– सोरठ का जन्म खमाज थाट से माना गया है। इसकी जाति औडव–सम्पूर्ण है। इस राग में वादी रे और सम्वादी प हैं। इसका गायन समय रात्रि का दूसरा प्रहर है। इसमें दोनों निषाद का प्रयोग होता है। इसलिए इसके आरोह में शुद्ध और अवरोह में कोमल नि प्रयोग किया जाता है। जैसे म प नि सं, रें नि॒ ध प, ध म ग रे। यह गम्भीर प्रकृति का राग नही हैं। यह पूर्वांग प्रधान राग हैं इसका चलन सप्तक के पूर्वांग में अधिक होता है। अवरोह में अधिकतर ऋषभ वक्र प्रयोग किया जाता है। जैसे– म ग रे ग ऩि सा। ध म स्वरों की संगति बार–बार दिखाई जाती है। इसलिए अवरोह में अधिकतर प को अल्प कर ध म प्रयोग किया जाता है जैसे– नि ध प, ध म ग रे, ग ऩि सा। राग सोरठ के अवरोह मे गंधार का दुर्बलत्व राग देश व सोरठ को अलग करता है। ध म ग रे से देश और ध म रे से सोरठ राग बनता है। इसमें रे प की संगति भी अधिक दिखाई जाती है।

आरोह– स रे, म प, नि सं

अवरोह– सं नि॒ नि॒ ध प, म ग रे, ग स।

पकड़– रे म प, नि॒ ध प, ध म रे, ग स।

17–राग नट– 'नट' अथवा 'नाट' बिलावल थाट से उत्पन्न होता है। इसके अवरोह में धैवत और गंधार स्वर वक्र होते हैं आरोह संपूर्ण है। अवरोह में कहीं–2 कोमल निषाद का प्रयोग होता है। वादी स्वर मध्यम और संवादी षड्ज है। गायन समय रात्रि का द्वितीय प्रहर है। इस राग में मध्यम स्वर गंधार की संगति में खुलकर जोरदार लगता है– सा,

ग म, म, म प म, ग म आदि। साथ ही 'रे ग म प सि रे स' राग वाचक स्वर समुदाय भी है।

इसका उठाव इस प्रकार है–

सा, ग, म, प ग म, रे ग म प, म ग, म रे, सा।

चलन– सा, ग ग म, म, प म, ग, ग, म, प, सं ध नि प, म ग, रे, ग, म प, स रे स।

'नट' एक स्वतंत्र राग–स्वरूप है। इसका अन्य कई रागों से सहज एवं सुन्दर योग होकर निर्मित रागों के मिश्र रूप अति सुन्दर होकर रूढ़ हो गए हैं। जैसे–

नट–बिहाग– सा, ग म, प, म प सं, ग म ग, नि प, ग म, प नि सं मं, गं, सं,प ध म, प ग, नि सा। प प नि, नि सं, गं सं, नि नि प, म, प नि, प, ध म, प म ग, रे स।

कामोद– नाट– ग म प ग म रे स रे, ग, म (प), म, ग, म, रे स, स (स) ध नि प, सा, म ग प, ध प, प सं, प (प), प ग, ग म प ग म, रे स रे।

केदार–नाट– सा, रे स, म, म प, ध प, म, ग म, म, प, सां ध नि प, ध प म, स रे ग म प , स रे स।

नट–नारायण भी नट का एक भेद है। उसमें अवरोह में धैवत स्पष्ट रूप से नहीं लिया जाता और मध्यम पर नट जैसा न्यास नहीं है। आरोह में निषाद दुर्बल रहता है, बाकी सब नट जैसा ही है।

18–ललितः – राग ललित पूर्वी थाट जन्य राग है। इसकी जाति षाडव–षाडव मानी जाती है। राग ललित में धैवत और रिषभ कोमल तथा दोनों मध्यमों का प्रयोग होता है। वादी गायन समय दिन का प्रथम प्रहर है। स्वर शुद्ध मध्यम तथा सम्वादी षडज है।

इस राग में कुछ गायक जन शुद्ध धैवत का प्रयोग करते हैं, अधिकांश गायक इसमें कोमल धैवत ही प्रयोग करते हैं। जिसका कारण है कोमल धैवत की कर्णप्रियता। दोनों मध्यमों का प्रयोग इस राग की निजी विशेषता है। दोनों माध्यमों का प्रयोग रंजकता की दृष्टि से एक साथ प्रयोग सम्भव है।

ध मं म ग, इस स्वर समुदाय को अधिकतर मींड से लिया जाता है, जो कानों का बहुत प्रिय लगता है। केवल इस स्वर–समुदाय से ललित राग स्पष्ट हो जाता है इसलिए इसे ललितांग कहा गया है।

इसका चलन सा से प्रारम्भ न होकर मंद्र नि से हुआ करता है। जैसे –ऩि रे ग म

आरोह– ऩि रे ग मं, म म ग, मं ध नि सं

अवरोह– रें नि ध मं ध मं म ग रे सा।

पकड़– नि रे ग म, मं म ग, मं ध मं म ग , ग म ग रे सा

19–बसन्त– राग बसंत की उत्पत्ति पूर्वी थाट से मानी गयी है। इसमें दोनों मध्यम तथा रिषभ–धैवत कोमल प्रयोग किये जाते हैं। आरोह में रिषभ और पंचम वर्ज्य है। इसकी जाति औडव –सम्पूर्ण है। वादी स्वर सा और सम्वादी पंचम है। गायन समय रात्रि का अंतिम प्रहर है, किन्तु बसन्त ऋतु में इसे हर समय गाया जाता है। इसे मौसमी राग भी कहते हैं । इस राग की जाति व थाट के विषय में विद्वानों में मतभेद है।

यह राग उत्तरांग प्रधान है, अतः इसकी बढ़त मध्य सप्तक के उत्तरांग तथा तार सप्तक में होती है। इसमें तार सा खूब चमकता है। दोनों मध्यम का प्रयोग शुद्ध मध्यम का प्रयोग आरोह में केवल इस प्रकार होता है– सा म, म ग, मं ध सं। तीव्र मध्यम का प्रयोग आरोह–अवरोह दोनों में प्रयोग किया जाता है।

मध्य सप्तक के ध और नि से तार सप्तक को जाते समय कोमल ऋषभ प्रयोग करते हैं, जैसे – ध नि रें गं ऽ रें सा । किन्तु मध्यम सप्तक के आरोह में ऋषभ का प्रयोग कभी नहीं होता । इस राग में कई रागों की अल्प छाया आती है। जैसे– रें नि ध प में राग श्री, नि मं ऽ ग, रे सा में पूरिया और ग मं ध प, म ध नि ध प में राग पूर्वी की झलक आती है। किन्तु इसके बाद प, मं ग मं ऽ ग, मं ग रे सा अथवा मं ध रें सं, स्वरों के उच्चारण से राग बसन्त स्पष्ट हो जाता है।

आरोह– सा ग, मं ध रें सां नि सं

अवरोह– रें नि ध प, मं ग मं ऽ ग, मं ध ग म गं, रे सा।

पकड़– मं ध रें सं, नि ध प, मं ग मं ऽ ग।

20–राग कान्हरा– कान्हरा राग की रचना आसावरी थाट से मानी गई है। ग ध और नि स्वर सदैव कोमल लगते हैं। जाति वक्र सम्पूर्ण है। गायन–समय मध्यरात्रि है। वादी स्वर ऋषभ और सम्वादी पंचम है। कहा जाता है कि राजा अकबर के अनुरोध पर तानसेन ने इस कान्हरा राग को दरबार में बार–बार गाया होगा इसलिए धीरे–धीरे इसे दरबारी कान्हड़ा राग कहा जाने लगा।

दरबारी का कोमल गंधार अन्य सभी रागों के कोमल गंधार से पृथक है। इसका गंधार एक ओर तो अति कोमल है तो दूसरी ओर आंदोलित होता रहता है। आंदोलन रिषभ की सहायता से करते हैं जैसे– सा रे ग ऽ ग ऽ ग ऽ रे सा रे सा।

गंधार और धैवत वक्र होने के कारण इसमें ध नि प और ग म रे सा स्वरों की संगतियाँ अधिक दिखाई जाती हैं। यह एक आलाप प्रधान व गम्भीर प्रकृति का राग है। आरोह में गंधार रिषभ के सहारे और अवरोह में म के सहारे से तथा धैवत पंचम के सहारे से आन्दोलित होता रहता है, जैसे– सा रे (रे)ग ऽ ग ऽ म रे ऽ सा, म प (प)ध (प)ध नि प म प, (म)ग म रे ऽ सा।

इस राग का ग और ध स्वर अन्य रागों के ग ध से भिन्न है। इसलिए ग और ध स्वर सप्तक के मान्य बारह स्वरों से पृथक रहते हैं। कान्हरा का समप्रकृति राग अड़ाना है। किन्तु अन्तर यह है कि अड़ाना उत्तरांग प्रधान, अपेक्षाकृत चंचल तथा आरोह में शुद्ध और अवरोह में कोमल नि प्रयोग किया जाता कान्हरा के 18 प्रकारों में से एक प्रकार है।

आरोह– सा रे (रे)ग ऽ म प (प)ध ऽ नि सं

अवरोह– सां (नि)ध नि प, म प, ग म रे सा।

पकड़– सा रे (रे)ग, (रे)ग म रे सा, (नि)ध ऽ नि रे, रे सा

21– राग मल्हार– राग मल्हार की उत्पत्ति काफी थाट से मानी जाती है। इसमें गंधार कोमल तथा दोनों निषाद प्रयोग किये जाते हैं। इसकी जाति सम्पूर्ण–षाडव है। गायन समय मध्यरात्रि है। वादी सा और सम्वादी प है। गायक तानसेन ने मल्हार नामक एक राग की रचना की थी जिसे, बाद में मियाँ की मल्हार अथवा मियाँ मल्हार कहा जाने लगा। दोनो निषादों का पास–पास प्रयोग मियाँ मल्हार की निजी विशेषता हैं जैसे– म प नि॒ ऽ ध नि सं यह प्रयोग कर्णप्रिय लगता है इस राग के गीतों में अधिकतर पावस ऋतु का वर्णन मिलता है। यह पूर्वांग प्रधान राग है। म रे, रे प इस राग का विशिष्ट स्वर समूह है। यह एक गम्भीर प्रकृति का राग हैं। इसके निकट का राग बहार है। लेकिन राग बहार चंचल प्रकृति का राग है। इस राग क विषय में श्रीकृष्ण राव शंकर पंडित तथा श्री विनायक राव पट्वर्धन के मतानुसार –मल्हार से केवल मियाँ मल्हार समझना चाहिये।

आरोह– सा म रे प, ग॒ म रे सा, रे प, म प नि॒ ऽ ध नि सं

अवरोह– सं ध नि॒ म प, ग॒ म रे सा

पकड़– (म)रे प, (म)ग॒ ऽ ग॒ म रे सा, ऩि ऩि ऽ ध़ ऩि ऽ सा।

षष्टम अध्याय

गीतिकाव्यान्तर्गत रस, छन्द एंव लय–योजना

रस–व्यंजना

साहित्य में जब ह्रदय का प्रयोग किया जाता हैं तब उसका व्यंजनात्मक अर्थ ही ग्रहण किया जाता है। ह्रदय पक्ष से तात्पर्य भावों की जागृति, पुष्टि और सम्प्रेषण से है जबकि मस्तिष्क पक्ष का सम्बन्ध उसकी संगति,यथार्थता और तार्किकता से है। काव्यशास्त्र में इसी को रस माना गया है। रसात्मकता की सामान्य दशा प्राप्त कर जब काव्य का भाव इतना मुखर हो जाता है कि सर्वमान्य का भाव बन सके तो वही आस्वाय् बनकर व्यक्ति के विशेष को सामान्य दिशा में पहुँचा देता है। इसी अवस्था में करूण का शोक, रौद्र का क्रोध, भयानक का भय आदि अपनी इसी प्रखर अनुभूति के सहारे पाठक या श्रोता की मनः स्थिति को तन्मयता प्रदान करता है। तुलसीदास का सम्पूर्ण साहित्य अनुभव जगत और प्रतिभा के समावेश से नयी चेतना का संचार करता है। तुलसीदास भक्त कवि थे, रसों की व्यंजना उन्होनें बड़े ही मर्यादित ढंग से की है। भक्ति भावना की प्रबलता के कारण यद्यपि वात्सल्य, शान्त, करूण आदि रसों की व्यंजना करते समय शास्त्रोचित रस–व्यंजना में बाधा आई है लेकिन रस–शास्त्रियों द्वारा सर्वमान्य रसों के अतिरिक्त भक्ति एवं वात्सल्य रस की भी समुचित व्यंजना उनके काव्य में हुई है। तुलसीदास का सम्पूर्ण साहित्य ही रसों से सुशोभित है किन्तु शोधार्थी का अभीष्ठ विवेच्य गीतिकाव्यों –विनयपत्रिका, गीतावली, श्रीकृष्णगीतावली में रसों की व्यंजना को प्रस्तुत करना है। प्रस्तुत अध्याय में शोधार्थी द्वारा यही प्रयास किया गया है।

श्रृंगार रस–

श्रृंगार रस का स्थायी भाव रति है। इसके दो पक्ष माने गये हैं– संयोग एवं वियोग। तुलसी ने अपने साहित्य में इन दोनों पक्षों का समुचित प्रयोग किया है। श्रृंगार रस को वे विषय–पक्ष स्वीकारते हैं। पुष्प वाटिका में सीता–राम के प्रथम मिलन का दृश्य बड़ी ही

सुन्दरता से तुलसीदास ने चित्रित किया है। यहाँ सीता आश्रय है और राम आलम्बन, पुष्पवाटिका का वातावरण उद्दीपन का कार्य कर रहा है। यहाँ सीता की चेष्टाएँ अनुभाव तथा संकोच, औत्सुक्य आदि संचारी भाव हैं–

भोर फूल बीनबे को गए फुलवाई हैं।
सीसनि टिपारे, उपवीत, पीत पट कटि,
दोना बाम करनि सलोने में सवाई हैं।
रूप के अगार, भूप के कुमार सुकुमार,
गुर के प्रान अधार संग सेवकाई हैं।
x x x
सखिन सहित तहि औसर विधि के संजोग
गिरिजा जू पूजिबे को जानकी जू आई हैं।
निरखि लषन राम जाने ऋतुपति–काम
मोहि मानो मदन मोहिनी मूड़ नाई है।
x x x
स्वामी सीय, सखिन्ह, लखन, तुलसी को तैसो,
तैसो मन भयो जाकी जैसिये सगाई हैं।

वन जाने की स्थिति आने पर राम सीता को मना करते हैं, समझाते है कि कानन के कठोर जीवन की भयंकरता सीता जी कैसे सहेंगी। वे सीता जी को महल में ही रहकर सास–ससुर की सेवा करने को कहते हैं। ऐसी विषम स्थिति में पति से अलग रहने का सोच कर सीता जी चेतना शून्य होने लगती हैं। इसी करूणाजन्य विवशता का वर्णन तुलसीदास ने कुछ इस प्रकार किया है–

रहहु भवन हमरे कहे, कामिनि!
सादर सासु चरन सेवहु नित, जो तुम्हरे अति हित गृह स्वामिनि।
राजकुमारि! कठिन कंटक मग, क्यों चलिहौ मदु पद गजगामिनि।
x x x
तुलसीदास प्रभु--बिरह बचन सुनि सहिन सकी मुरछित भई भामिनि।

इस पर सीताजी का उत्तर भी मर्यादा और गरिमा से युक्त है–

जौं हठि नाथ राखिहौ मो कहँ, तौ संग प्रान पठावोंगी।

तुलसीदास प्रभु बिनु जीवत रहि क्यों फिरि बदन दिखावोंगी।

इसी तरह पंचवटी के मार्गों पर राम के द्वारा लता–बिरवों, खग–मृगों आदि से सीता की सुधि लेने सम्बन्धी उन्माद दशा का उत्कर्ष तुलसीदास ने कुछ इस प्रकार प्रस्तुत किया है–

चले बूझत वन--बेलि–बिटप, खग–मृग, अलि अवलि सुहाई।

प्रभु की दसा सो समौ कहिबे को कबि उर आह न आई।

तुलसी ने अपने गीति काव्यों में राम तथा कृष्ण को अपना नायक माना है। दोनों चरित नायक विष्णु के अवतार माने गये हैं। श्रृंगार रस में संयोग और वियोग के दोनों पक्षों का उद्‌घाटन होता है। गीतावली राम की क्रियात्मकता को दर्शाता है भी श्रीकृष्ण गीतावली में कृष्ण के चरित्र का परिपाक हुआ है। श्रीकृष्ण गीतावली में श्री कृष्ण के संयोग पक्ष का चरित्र है तो वियोग के दृश्य भी है। शिशु रूप कृष्ण की झाँकी में संयोग पक्ष का उदाहरण दृष्टव्य है–

मो कहँ झूठहुँ दोष लगावहिं।

मैया इन्हहि बानि पर घर की। नाना जुगुति बनावहिं।।

इन्ह के लिए खेलिवो छॉड्यों। तऊ न उषरन पावहिं।।

x x x

कबहुँ बाल रोवाइ, पानि गहि, मिस करि उठि उठि धावाहिं।।

करहिं आपु, सिर धरहिं आनके, बचन विरंचि हरावहिं।।

कृष्ण जी गोपियों के नंद बाबा के, यशोदा के आकर्षण के बिन्दु थे। मनमोहिनी छबि के कारण वे सभी के प्रिय थे और बाल क्रीड़ाओं के द्वारा तुलसीदास ने श्रृंगार रस के संयोग पक्ष को उभारा है।

कालान्तर में कृष्ण के मथुरा चले जाने पर गोपियों, गोप, नन्द, यशोदा सभी

के लिए वियोग की स्थिति घटित हो गई थी। जीवन का उल्लास बिरह वेदना में बदल गया था। तुलसीदास ने जिस सुन्दरता से संयोग पक्ष को दर्शाया है उसी प्रतिभा क्षमता से वियोग को भी सामने रखा है।

जब ते ब्रज तजि गए कन्हाई।

तब ते बिरह रवि उदित एक रस सखि! बिछुरन वृष पाई।।

घटत न तेज, चलत नाहिन रथ, रहयो उर नभ पर छाई।

इन्द्रिय रूप रासि सोचहि सुठि, सुधि सब की बिसराई।।

x x x

तुलसीदास मनोरथ मन मृग मरत जहाँ तहँ धाई।

राम स्याम सावन भादौं बिनु जिय की जरनि न जाई।।

वियोग पक्ष के अन्तर्गत ही तुलसीदास ने भ्रमरगीत की योजना की है। उद्धव के संदेश को सुन कर गोपियां जब उत्तर देती हैं तो वे कृष्ण को भी नहीं छोड़ती हैं–

भली कह, आली हमहु पहिचाने,

हरि निगुंन, निर्लेप निरपने।

निपट निठुर, निज काज सयाने।।

ब्रज को बिरह, अरू संग महर को

कुबरिहि बरत न नेकु लजाने।।

समुझि सो प्रीति की रीति स्याम की

सोई बावरि जो परेखो उर आने।।

संयोग और वियोग दोनों अवसरों पर तुलसीदास ने तारतम्य बनाये रखा है। संयोग में जितना हास, परिहास आनन्द विनोद है, वियोग में उतना ही दुख, रूदन, आदि को समाहित किया है। तुलसीदास गीति काव्य में श्रृंगार रस का परिपाक पूर्णतः करने में सफल सिद्ध हुये हैं।

तुलसीदास ने श्रृंगार के दोनों पक्षों को भली भाँति उद्घाटित किया है।

राम–सीता का संयोग वियोग वर्णन हो अथवा कृष्ण राधा–गोपियों का संयोग–वियोग, सभी में तुलसीदास ने मर्यादा बनाये रखी है शोकाकुल एवं वेदना निमग्न जीवन्त किन्तु स्थिर एवं व्यंजक चित्र हमें मध्यकालीन साहित्य में कठिनाई से मिलते हैं।

वात्सल्य रस–

श्रंगार के साथ वात्सल्य का सुंदर चित्रण तुलसीदास ने किया है इसका मूलाधार पालक–पाल्य भाव है जो मुख्यतः पिता–पुत्र या माता–पुत्र से सम्बद्ध है। इसका स्थायी भाव वात्सल्य स्नेह; आलम्बन बालक या पुत्र, उद्दीपन बाल चेष्टाएँ, अनुभाव हर्ष, चुम्बन आलिंगन आदि और संचारी भाव आलस्य, हर्ष, निद्रादि हैं। बालक राम की क्रीड़ाओं, उनकी क्रीड़ाओं से माताओं के आनन्द को तुलसी ने मनोहारी स्वरूप दिया है। यद्यपि श्रीकृष्ण गीतावली, कवितावली में भी वात्सल्य रस के चित्रण देखने को मिलते हैं पर गीतावली में यह चित्रण प्रभावोत्पादक और अधिक है।

गीतावली में वात्सल्य के संयोग और वियोग पक्ष की मार्मिक अभिव्यंजना तुलसीदास ने की है। बालकाण्ड में शिशु राम की और उनके छोटे भाइयों तथा सखाओं की बाल–केलि, रूप वर्णन को तथा बालक राम के वनगमन पश्चात माताओं की हित चिंता और दुख को भी सुंदर स्वरूप तुलसीदास ने दिया है।

बालक राम के शरीर पर शोभित अलंकारों और उनके सौन्दर्य का एक चित्र प्रस्तुत है–

छोटिए धनुहियाँ, पनहियाँ पगनि छोटी,
छोटिए कछौटी कटि, छोरिए तरकसी
लसत झंगुली झीनी, दामिनि की छबि छीनी,
सुन्दर बदन, सिर पगिया जरकसी।
बय अनुहरत विभूषन विचित्र अंग,
जोहे जिय आवति सनेह की सरस सी।

मूरति की सूरति कही न परै तुलसी पै,

जानै सोई जाके उर कसकै करक सी।।

शिशु जीवन की कुछ झांकियाँ तुलसीदास की वात्सल्य रस की सुन्दर व्यंजना को प्रस्तुत करती हैं। शिशु को स्तनपान कराना और उमंगित होकर हृदय से लिपटा लेने की मातृ हृदय की सवाभाविकता–

सुभग सेज सोभित कौसल्या रूचिर, राम–सिसु गोद लिये।
बार–बार विधु बदन बिलोकति, लोचन चारू चकोर किये।
कबहुं पौढ़ि पयपान करावति, कबहुं राखति लाइ हिये।
बाल केलि गावत हलरावति, पुलकित प्रेम पियुष पिये।

शिशुओं को स्नान कराके वस्त्रादि पहिना, नेत्रों में काजल आदि लगाकर सजाया सँवारा है–

चुपरि उबटि अन्हवाइकै नयन आँजे,
चिर रूचि तिलक गोरोचन को कियो है।
भ्रू पर अनूप मसि बिन्दु बारे–बारे बार,
बिलसत सीस पर हेरि हरै हियो है।
x x x
बाल केलि बात बस झलकि झल मलत,
सोभा की दीयति मानो रूप दीप दियो है।

नींद की बेला में माता लोरियां सुनाती हैं, बालक तो नहीं सोता पर माता स्वंय भावनात्मक निद्रा में तन्मय होती हैं–

'ललन लोने लेरूआ, बलि मैया!
सुख सोइए नींद बेरिया भई, चारू चरित चारयौ भैया।
कहति मल्हाई लाइ उर छिन–छिन छगन छबीले छोटे छैया।
मोद–कंद कुल कुमुद चन्द्र मेरे राम चन्द्र रघुरैया।'

वात्सल्य संयोग पक्षों के साथ–साथ वियोग पक्षों की भी मार्मिक व्यंजना तुलसीदास ने की है। विश्वामित्र द्वारा राम लखन को अपने यज्ञ रक्षा के लिए ले जाने पर माताओं की मार्मिक दशा को तुलसीदास ने कुछ इस प्रकार चित्रित किया है–

मेरे बालक कैसे धौं मग निबहहिंगें?

भूख पियास,सीत, श्रमसमुचनि क्यौं कौसिकहि कहहिंगे?

को भोर ही उबटि अन्हवैहै, काढ़ि कलेउ दैहे?

को भूषन पहिराइ निछावरि करि लोचन सुख लैहै?

पिता दशरथ की भी वियोग में कुछ ऐसी ही स्थिति है–

मुएह न मिटैगो मेरो मानसिक पछिताउ।

बारि बस न विचारि कीन्हों काज, सोचत राइ।

सीय रघुवीर लषन बिनु भय भभरि भगीन आउ।

मोहि बूझि न परत, भरत कौन कठिन कुछाउ।

सुमित्रा की मानसिक स्थिति को तुलसीदास ने उस समय सुन्दरता से चित्रित किया है जब युद्ध क्षेत्र में लक्ष्मण मूर्च्छित पड़े है

सुनि रन घायल लषन पड़े हैं।

स्वामि काज संग्राम सुभट सों लोहे ललकारि लरे हैं।

सुवन सोक संतोष सुमित्रहि, रघुपति भगति बरे हैं।

छिन छिन गात सुखरत , छिनहिं छिन हुलसत होत हरे हैं।

गीतावली में तुलसीदास ने राम के चरित्र के द्वारा वात्सल्य रस का भाव जाग्रत किया है तो श्रीकृष्ण गीतावली के प्रारम्भिक 17 गीतों में वात्सल्य रस आप्लावित है। श्रीकृष्णगीतावली में यशोदा का वात्सल्य पूर्ण रूप से प्रस्फुटित हुआ है–

लै उछंग गोविंद मुख बार बार निरखै।

पुलकित तनु आनंदघन छन छन मन हरषै।।

सुन्दर मुख मोहि दिखाउ इच्छा अति मोरे।

मम समान पुन्य पुंज बालक नहिं तोरे।।

गोपियों के उपालम्भ पर यशोदा का हृदय कृष्ण के प्रति सदैव ममत्व पूर्ण रहा है। तुलसी ने इसको भी सुंदर ढंग से व्यंजित किया है–

कबहुँ न जात पराये धामहि।

खेलत ही देखौं निज आंगन सदा सहित बल राम हि।।

तुलसीदास ने श्रीकृष्ण के प्रति यशोदा के, गोपियों के प्रेम को प्रदर्शित किया है, इसी के साथ–साथ गोपियों के उपालम्भ पर उलूखल बंधन भी हुआ, दण्डित भी किया गया। इन परिस्थितियों में यद्यपि कठोरता प्रदर्शित होती है, किन्तु इसके पीछे भी वात्सल्य की कोमलता छिपी हुई दिखती है।

वीर रस–

इस रस का स्थायी भाव उत्साह और उद्दीपन विजेयत्व की चेष्टाएँ हैं। तुलसीदास ने रामचरित मानस और कवितावली में इसका सुंदर चित्रण किया है। गीतावली में भी इस रस के दृश्य कवि ने चुनकर मार्मिक स्थलों पर व्यंजित किये हैं। गीतावली में युद्ध के चित्र तो नहीं हैं, पर वीरोत्साह अवश्य प्रकट हुआ है। वीरोत्साह, की सफल व्यंजना को तुलसीदास ने कुछ इस तरह चित्रित किया है–

सुनु खल! मैं तोहि बहुत बुझायो!

एतो मान सठ! भयो मोह बस, जानतहु चाहत विष खायो।

x x x x

पावहुगे निज करम जनित फल, भले ठौर हठि बैर बढ़ायो।

बानर–भालु चपेट लपेटनि मारत, तब हवैहै पछितायो।

गीतावली में वीर रस के प्रसंग कई स्थानों पर प्रकाश में आये हैं, इसी तरह श्रीकृष्ण गीतावली में भी वीर रस को स्थान प्राप्त हुआ है। कृष्ण के स्वरूप में उत्साह का स्थायी भाव प्रदर्शित कर तुलसीदास ने गोवर्धन पर्वत को उठाने के दृश्य में इस रस का परिपाक किया है–

ब्रज पर घन घमंड करि आए।

अति अपमान विचारि आपनो कोपि सुरेस पठाए।।

दमकति दुसह दुसहुँ दिसि दामिनि , भयो तम गगन गंभीर।

गरजन घोर बारिधर धावत प्रेरित प्रबल समीर।।

सुनि हँसि उठयो नंद को नाहरू, लियो कर कुधर उठाइ।

तुलसिदास मघवा अपनी सो करि गयो गर्व गँवाइ।।

करूण रस–

तुलसीदास ने अपने काव्य में करूण रस की सुंदर प्रस्तुति की है पर गीतावली में इसकी व्यंजना अत्यन्त मार्मिक है। विनयपत्रिका में भी करूणा के दृश्य प्रारम्भ से अंत तक बिखरे पड़े हैं। विनयपत्रिका में तुलसीदास एक भक्त के रूप में दीनता को अपने आराध्य के समक्ष स्पष्ट करते हैं जिससे करूण रस का सुंदर परिपाक हुआ है।

गीतावली में सीता की वनगमन में स्थिति को ग्राम बहुटी के द्वारा अत्यन्त मार्मिकता से तुलसीदास ने चित्रित किया है–

पथिक पयादे जात पंकज से पाय हैं।

मारग कठिन कुस कंटक निकाय हैं।

सखी! भूखे प्यासे पै चलत। चित चाय हैं।

इन्हके सुकृत सुर संकर सहाय हैं।

ग्राम वनिताओं की राम–वियोग की स्थितियों की अतिरिक्त जटायु देह–त्याग के समय, लक्ष्मण–मूर्च्छा के समय, पुत्र वियोग में देह त्यागते दशरथ के कथन में करूण रस को तुलसी ने भलीभाँति चित्रित किया है। दशरथ की मार्मिकता का करूण चित्र इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है–

करत राउ मन मों अनुमान

सोक–बिकल, मुखबचन न आवै बिछुरे कृपानिधान।

x x x

ऐसे सुत के बिरह अवधि, लौं जौ राखौं यह प्रान।

तौ मिटि जाइ प्रीति की परमिति, अजस सुनौं निज कान।

राम गए अजहुँ हौं जीवत, समुझत हिय अकुलान।

तुलसीदास ने इन करूण चित्रों के अतिरिक्त भरत की करूणा सम्बंधी दृश्यों की झांकी को मार्मिकता से प्रस्तुत किया है राम के वन जाने की सूचना पर माँ कैकेई से चित्रकूट में राम से मिलाप करते समय भरत की करूणा को तुलसी ने मार्मिकता प्रदान की है–

अवसि हौं आयुसु पाइ रहौंगे।

जनमि कैकेयी –कोखि कृपानिधि! क्यों कछु चपरि कहौंगे।

भरत भूप सिय राम लषन बन सुनि सानंद सहौंगो।

पुर परिजन अवलोकि मातु सब सुख–संतोष लहौंगो।

शान्त रस–

यह रस तुलसी की लेखनी से विनय पत्रिका 'कवितावली' में अनेक स्थलों पर प्रस्तुत किया गया है। इस रस का स्थायी भाव वैराग्य की भावना रहा है। विनय पत्रिका में अपनी दीन दशा को भक्त रूप में प्रकट करते समय कवि ने शान्त रस का मनोहारी परिपाक किया है। आरम्भ से अन्त तक भक्ति भावना के साथ इसी भावना पर बल दिया गया है।

सुक सनकादि प्रहलाद नारदादिक कहै।

राम की भगति बड़ी विरति निरत है।

तुलसीदास शान्त भाव से संसार को नश्वर बताकर भगवान राम से प्रेम करने की बात कहते हैं–

श्रुति गुरू साधु संमृति संमत यह दृश्य असत दुखकारी।

नेहि बिनु तजे मजे बिनु रघुपति निपति सकै को टारी।

अपनी दीनता को भगवान के सामने प्रकट करते हुए तुलसीदास कहते हैं–

तू दयालु दीन हौं तू दानि हौं भिखारी।

हैं प्रसिद्ध पातकी तू पाप पुंजहारी।

हास्य रस–

हास्य का प्रादुर्भाव विकृत आकार, वाणी, वेष, चेष्टा आदि पर निर्भर करता है। तुलसी के तीनों गीति काव्यों में प्रायः हास्य का अभाव रहा है। गीतावली में दो स्थल ऐसे आये हैं जहाँ राम के व्यक्तित्व के माहात्य को लेकर हास्य रस की अनुभूति होती है। एक स्थल पर मुनि–पत्नी राम के पैदल चलने पर भाव प्रदर्शित करती है कि इस प्रकार तो सम्पूर्ण शिलाएं नारी का रूप धारण कर लेंगी–

परत पद –पंकज ऋषि रवनी।

भई है प्रकृत अति दिव्य देह, धरि मानो त्रिभुवन छवि–छवनी।।

देखि बड़ों आचरण पुलकि तनु कहति मुदित मुनि–भवनी।

जो चलि हैं रघुनाथ पयादेहि सिला न रहिहि अवनी।।

तुलसीदास ने अपनी कृतियों में भक्ति भावना को सर्वोपरि रखा है। वे मूलतः भक्त कवि हैं। इसी कारण से वे अपनी काव्य रचनाओं में रसों की स्थापना करते नहीं दिखते है। भक्ति भाव में भगवान का शिशु रूप वात्सल्य रस की व्यंजना को प्रेरित करता है तो सीता–राम का मिलन श्रृंगार रस की अभिव्यंजना करवाता है। करूणा के दृश्यों में स्वतः ही करूण रस की उत्पत्ति होती है तो किन्ही चुने गये स्थलों में वीर रस के चित्रण देखने को मिलते हैं। तुलसी का काव्य संसार अत्यन्त विस्तृत होने के कारण लगभग समस्त रसों को कहीं न कहीं स्थान अवश्य मिला है। वात्सल्य, श्रंगार, करूण रसों की अधिकता रही है, वहीं अद्भुत, हास्य रसों का प्रयोग न्यूनाधिक हुआ है। कवि ने रसों की सुन्दर व्यंजना कर काव्य में जो योजना प्रदर्शित की है हिन्दी साहित्य की अनूठी देन है। यही विशेषता तुलसी को मध्यकालीन साहित्यकारों में श्रेष्ठ सिद्ध करती है।

छन्द–योजना–

तुलसीदास ने अपने काव्य में भाषा, अलंकार रस की भांति छन्दों का भी व्यापक प्रयोग किया है। सूर, मीरा, कबीर, नानक आदि भक्त कवियों की भांति तुलसी ने भी

साहित्य और संगीत दोनों क्षेत्रों में अधिकारपूर्वक कार्य किया है। इसी कारण साहित्यिक संसार के साथ–साथ संगीत जगत में भी तुलसीदास का स्थान अक्षुण्य है। तुलसीदास ने काव्य क्षेत्र में प्रचलित सम्पूर्ण काव्य शैलियों में अपनी रचनाओं को प्रस्तुत किया है। पद शैली में उन्होनें विनय पत्रिका, गीतावली और श्रीकृष्णगीतावली की रचना की है।

हिन्दी, संस्कृत छन्द शास्त्र में मात्राओं और वर्णों पर आधारित छन्दों को स्थान मिला है। स्वर प्रधान होने के कारण संगीत में मात्रिक छन्दों को ही मान्यता प्राप्त है। तुलसीदास का संगीत ज्ञान इसी से सिद्ध होता है कि उन्होनें अपने तीनों गीतिकाव्यों में मात्रिक छन्दों का ही प्रयोग किया है। कहीं–कहीं एकाधिक रूप में वर्णिक छन्दों का प्रयोग मिलता है। संगीतात्मकमता के कारण तालों की संगीत में आवश्यकता महसूस होती है। इसी कारण मात्रा परक ताल ही संगीत के छन्द स्वीकारे गये हैं। जिस प्रकार छन्द काव्य में भावधारा की गति को स्पष्ट करते हैं, ठीक उसी प्रकार तालें, संगीत में राग–रागनियां स्पष्ट करतीं है। गोस्वामी तुलसीदास ने साहित्य में राग–रागनियों की लय से जिन गीतों की स्थापना की है उनमें तालों का पूर्ण समावेश हैं। शोधार्थी द्वारा विवेचित गीति काव्यों में तुलसीदास जी द्वारा रागों, तालों के साथ समन्वित रूप में जिन छन्दों का प्रयोग किया है। उनका संक्षिप्त विवरण निम्नवत है।

विनय पत्रिका, गीतावली, श्रीकृष्णगीतावली के विविध रागों अन्तर्गत अनेक छन्दों की रचना की है। इन पद–काव्यों की भावनाओं को सुग्राह्य और स्पष्ट करने के लिए 25 राग–रागनियों की प्रतिष्ठा की है जिनके अन्तर्गत मात्रिक छन्दों की स्थापना की गई है विनयपत्रिका में तुलसीदास ने आसावरी, सोरठ, मलार, भैरवी, कल्याण, टेड़ी, धनाश्री, भैरवी, मारू, जैतश्री, बिलावल, विभास नट, सारंग, आदि रागों के अन्तर्गत मात्रिक छन्दों की रचना की है। विभिन्न मात्राओं के टेक के अनुसार सम, विष्णुपद, रूप सवैया, मरहटा, शोभन, घनाक्षरी, विनय, चौपाई, हरिगीतिका, सरसी, दोहा, विजया, करखा दिगपाल हीरक, चौबोला, वीर आदि छन्दों का सुन्दर प्रयोग तुलसी दास ने किया है।

मात्रात्मक दृष्टि से देखें तो सोलह मात्रा वाले छन्द–चौपाई, पायकुले अलिला, पद्धारि आदि का प्रयोग किया गया है। 28 मात्राओं वाले छन्दों की संख्या विनयपत्रिका में अधिक है। इनमें सार, हरिगीतिका आदि प्रमुख है।

राग सोरठ के अन्तर्गत सार छन्द प्रयोग का उदाहरण–

जो पै रहनि राम सों नाहीं।

तौ पर खर कूकर सूकर सम वृथा जियत जग माहीं।।1।।

काम क्रोध मद लोभ नींद भय भूख प्यास सबहीं के।

मनुज देह सुर साधु सराहत, सो सनेह सिय पी के।।2।।

कीरति, कुल, करतूति, भूति भलि, सील, सरूप सलोने।

तुलसी प्रभु अनुराग–रहित जस सालन साग अलोने।।4।।

राग बिलावल के अन्तर्गत चौपाई छन्द का उदाहरण–

गाइये गनपति जगवन्दन। संकर सुवन भवानी नन्दन।।1।।

सिद्धि सदन गजबदन विनायक। कृपा–सिन्धु सुन्दर, सब लायक।।2।।

मोदक–प्रिय, मुद मंगल दाता। विद्या वारिधि बुद्धि विधाता।।3।।

मांगत तुलसीदास कर जोरे। बसहिं रामसिय मानस मोरे।।4।।

विवेचन और स्पष्टीकरण की दृष्टि से विनयपत्रिका में प्रयुक्त छन्दों का प्रत्येक राग के अन्तर्गत संक्षिप्त विवरण निम्नवत् है–

1–राग आसावरी– इस राग के अन्तर्गत 16 मात्रा की टेक से सार छन्द,14 मात्रा की टेक से विष्णु पद और 17 मात्रा एवं 29 मात्रा के मरहटा छन्द का प्रयोग किया गया है। इसके अतिरिक्त अनियमित दण्डक और सरसी छन्द भी प्रयुक्त किये गये हैं।

2–राग कान्हरा– विनयपत्रिका में इस राग के अन्तर्गत 16 मात्रा, 17 मात्रा तथा 37 मात्रा की टेक से रूप सवैया छन्द प्रयोग किया गया है।

3–राग नट–विनय पत्रिका के तीन पदों में राग नट के अन्तर्गत शोभन छन्द का प्रयोग किया गया है।

4– राग ललित – इस राग के अन्तर्गत वर्णिक छन्द का प्रयोग किया गया है। दो पदों में क्रमशः घनाक्षरी और रूपघनाक्षरी छन्द का प्रयोग किया गया है।

5– राग विभास– राग विभास के अन्तर्गत विनय छन्द का उपयोग किया गया है। इसमें 44 मात्रा की पूर्ण पंक्ति की टेक है।

6–राग सारंग– इसके अन्तर्गत 29 मात्रा का मरहटा छन्द प्रयुक्त हुआ है। इसमें 15 तथा 16 मात्रा की टेक है।

7–राग सूहो विलावल– इस राग के अन्तर्गत पद 136 में 16 मात्रा की चौपाई तथा 28 मात्रा की हरिगीतिका छन्द का संयुक्त प्रयोग हुआ है।

8–राग सोरठ– इस राग के अन्तर्गत दो छन्दों –सार तथा चौपाई– का प्रयोग हुआ है। सभी में 16 मात्रा की टेक है।

9–राग मारू– विनय पत्रिका में इस राग में मात्र एक पद में सरसी छन्द का प्रयोग हुआ है। यह 37 मात्रा का हैं जिसमें 20 मात्रा की टेक है।

10–राग मलार–इस राग के अन्तर्गत 20 मात्रा की टेक के छन्द 'सार' का प्रयोग किया गया है।

11–राग भैरवी– इसमें सार छन्द का प्रयोग होने के साथ–साथ वर्णिक छन्द अनियमित दण्डक का प्रयोग किया गया है।

12–राग बसन्त– राग बसन्त के अन्तर्गत चौपाई छन्द का प्रयोग विनय पत्रिका में देखने को मिलता है।

13–राग रामकली– इस रग्ग के अन्तर्गत चौपाई, सार छन्द, विनय छन्द, विजया छन्द और करखा छन्द का प्रयोग किया गया है।

14–राग बिहाग– विनय पत्रिका में 22 मात्रा का दिगपाल छन्द प्रयुक्त हुआ है। इसके अतिरिक्त सार, स्वरूपी, चौपाई छन्दों का प्रयोग देखने को मिलता है।

15–राग घनाश्री– इसमें 16 या 18 की टेक के साथ सार छन्द के अतिरिक्त का

रूपसवैया, विष्णुपद, सरसी छन्द का प्रयोग हुआ है, साथ ही 37 मात्रा के करखा छन्द भी प्रयुक्त हुआ है।

16—राग बिलावल— राग बिलावल के अन्तर्गत चौपाई, रूप सवैया, सार छन्द का प्रयोग होने के साथ साथ 22 मात्रा का दिगपाल छन्द, 23 मात्रा का हीरक, 14 मात्रा का स्वरूपी छन्द, 31 मात्रा का वीर छन्द भी प्रयोग हुआ है। इसके अतिरिक्त चौबोला, सरसी, लावनी छन्द का भी प्रयोग देखने को मिलता है।

17—राग तोड़ी— इस राग के अन्तर्गत कुण्डिल तथा सार छन्द का प्रयोग किया गया है।

18—राग जैतश्री— जैतश्री राग के अन्तर्गत 30 मात्रा का लावनी छन्द प्रयुक्त हुआ है। तीन पदों में प्रयुक्त इस छन्द में 19 व 18 मात्राओं की टेक है।

19—राग केदारा— इस राग के अन्तर्गत एक पद में 37 मात्रा का करखा छन्द प्रयुक्त हुआ है। पद सं0 41, 42, 43, 212 एवं 213 में मात्राओं का व्यतिक्रम है।

20—राग गौरी— मरहटा, चौपाई, ताटंक, दोहा, सार मात्रिक छन्दों के साथ अनियमित दण्डक वर्णिक छन्द का प्रयोग किया गया है। इस राग के दो पदों में मात्राओं का व्यतिक्रम भी देखने को मिलता है।

21—राग कल्याण— सरसी, विजया, शोभन, रूपमाला, विष्णुपद, सार, रूपसवैया, जैसे मात्रिक छन्दों के प्रयोग के साथ—साथ इस राग के अन्तर्गत वर्णिक छन्द घनाक्षरी का प्रयोग हुआ है।

गीतावली के पद शास्त्रीय रागों से शीर्षस्थ हैं। इनमें ताल लय भी नाना रूपों में व्यवस्थित है। गीतावली में अनेक प्रकार के छन्दों की योजना है। मुख्यतः गीतावली पद —शैली में लिखा गया प्रबन्ध काव्य है। जिसमें पद प्रसंगानुसार राग—रागिनियों में आबद्ध हैं। गीतावली में भावानुकूलता, लय तथा अन्त्यानुप्रास के सम्यक दृश्य परिलक्षित होते हैं। तुलसीदास ने गीतावली में छन्द विधान की दृष्टि से चमत्कार निर्मित नहीं किया है, उन्होनें पद शैली का पूरा निर्वाह किया है। गीतावली में सार, सरसी, विष्णु, धनाश्री, रूप सवैया,

शोभन, चौबेला, दोहा, मरहटा, चौपाई अरल, विनय, लावनी, ताटंक, वीर, हरिगीतिका, रूपमाला, आदि छन्दों का प्रयोग किया गया है। टेक वाली पंक्तियों में 13, 14, 15, 16, 17, 18, 19 एवं 20 मात्राओं वाले पदों की रचना हुई है। सम्पूर्ण पद कथा के कलेवर को समेटने के साथ सहज भावावेगों को भी साथ लिए हैं।

गीतावली के अधिकांश पदों के शीर्ष पर रागों का नाम दिया गया है। रागों के अन्तर्गत ही छन्दों का प्रयोग हुआ है। रागों की अन्तर्गत प्रयुक्त छन्दों का संक्षिप्त परिचय निम्नवत है–

1–राग आसावरी– इस राग के अन्तर्गत बाल काण्ड में सार छन्द, अयोध्याकाण्ड में सरसी छन्द, तथा मिश्रित मात्रिक छन्दों का प्रयोग किया गया है। उक्त मात्रिक छन्दों के अतिरिक्त घनाक्षरी तथा अनियमित दण्डक नामक वर्णिक छन्दों का भी प्रयोग किया गया है।

2–राग कान्हरा– रूप सवैया और सार छन्द का प्रयोग इस राग के अन्तर्गत हुआ है। इसमें 17, 18, 19 मात्राओं की टेक वाले छन्दों का प्रयोग हुआ है।

3–राग नट– शोभन, सरसी, सार पदों से सुजज्जित इस राग के अन्तर्गत 14, 15, 16 मात्राओं की टेक है।

4–राग ललित – इस राग के अन्तर्गत रूप सवैया मात्रिक छन्द के अतिरिक्त रूप घनाक्षरी तथा घनाक्षरी छन्द का प्रयोग किया गया है।

5–राग विभास– 32 मात्रा के रूप सवैया छन्द के साथ–साथ 46 मात्रा का चचरी छन्द इस राग के अन्तर्गत प्रयुक्त हुआ है।

6–राग सारंग– इस राग के अन्तर्गत 30 मात्रा के चौबोला छन्द के अतिरिक्त सार तथा रूप सवैया का प्रयोग हुआ है। इन सभी में 16 मात्रा की टेक है।

7–राग सूहो– इसमें दोहा छन्द का प्रयोग एक पद में होने के साथ–साथ 26 मात्रा का विष्णु पद छन्द भी प्रयुक्त हुआ है।

8–राग सोरठ– इसमें 16 मात्रा की टेक के साथ सार छन्द का प्रयोग बालकाण्ड,

अयोध्या काण्ड, अरण्य काण्ड, लंका काण्ड में हुआ है। कहीं–2 17, 18, 19 मात्राओं की टेक का प्रयोग भी देखने को मिला है। इसके साथ–साथ शोभन, मरहटा, विष्णुपद छन्द का प्रयोग किया गया है।

9–राग मारू– इस राग के अन्तर्गत दो छन्दों सरसी तथा सार का प्रयोग किया गया है।

10–राग मलार– राग मलार में दो छन्दों की रचना देखने को मिलती है। इसमें बालकाण्ड में सार तथा उत्तरकाण्ड में एक पद चौबेला छन्द है।

11–राग भैरव– उत्तरकाण्ड में छन्द 'सार' के अतिरिक्त वर्णिक छन्द अनियमित दण्डक का प्रयोग हुआ है।

12–राग बसन्त– राग बसन्त के अन्तर्गत मात्र चौपाई छन्द में पदों की रचना हुई है। इनमें अयोध्याकाण्ड, सुंदरकाण्ड और उत्तर काण्ड में पद शामिल है।

13–राग रामकली– अरल छन्छ, लावनी छन्द की रचना इस राग के अन्तर्गत की गई है। अयोध्याकाण्ड में प्रयुक्त लावनी छन्द में 22 मात्रा तथा उत्तर काण्ड के लावनी छन्द में 30 मात्रा हैं।

14–राग चंचरी– गीतावली में इस राग में अयोध्या काण्ड में दो पदों में 44 मात्रा का विनय छन्द प्रयुक्त हुआ है।

15–राग धनाश्री– सार, सरसी , विष्णुपद छन्दों में 17, 14 मात्राओं की टेक के अतिरिक्त 16 मात्रा की टेक वाला रूप सवैया छन्द भी इस राग के अन्तर्गत रचित है।

16–राग बिलावल– इस राग के अन्तर्गत गीतावली में चौबोला, चौपाई, रूप सवैया, सार, ताटंक, लावनी, दुर्मिल, वीर चंचरी छन्द का प्रयोग है। इसमें 30 मात्रा का लावनी, 31 मात्रा का वीर, 32 मात्रा का दुर्मिल तथा 46 मात्रा का चंचरी छन्द है।

17– राग तोड़ी– चौबोला, सार मात्रिक छन्दों के प्रयोग के अतिरिक्त बालकाण्ड में वर्णिक छन्द घनाक्षरी की रचना राग टोड़ी के अन्तर्गत हुई है।

18–राग जैतश्री– इस राग में बालकाण्ड में सरसी तथा सार छन्दों की रचना है,

सुन्दरकाण्ड में रूप सवैया की रचना की गई है।

19—राग केदारा— इस राग के अन्तर्गत दोहा और हरिगीतिका छन्दों का प्रयोग देखने को मिलता है। साथ ही सार छन्द, रूपमाला, चौबोला, रूपसवैया, लावनी, शोभन तथा मरहटा छन्द का प्रयोग विभिन्न अध्यायों में किया गया है। इन मात्रिक छन्दों के अतिरिक्त राग केदारा में वर्णिक छन्द का भी प्रयोग किया गया है। इसमें घनाक्षरी और अनियमित दण्डक की रचना की गई है।

20—राग गौरी— इस राग में सार, विष्णु, रूप सवैया, सरसी और दोहा के प्रयोग के साथ अनियमित दण्डक वर्णिक छन्द का प्रयोग किया गया है।

21—राग कल्याण— गीतावली के बालकाण्ड और उत्तर काण्ड में इस राग में पदों की रचना चचंरी रूप सवैया और विजया छन्दों में हुई है।

गोस्वामी तुलसीदास मूलतः राम के अनन्य भक्त थे। लगभग समस्त साहित्यिक कृतियॉ अपने आराध्य राम को ही सामने रख कर सृजित की हैं किन्तु राम के समान कृष्ण चरित्र को भी अपने काव्य का विषय बताकर अपनी उदार—वृत्ति और हृदय की विशालता का परिचय दिया है। कृष्ण भक्त कवियों की तरह तुलसीदास ने बाल लीला, गोपी उपालम्भ, उलूखल—बन्धन, इन्द्रकोप—गोवर्द्धन धारण, गोचारण, यमुना तट पर वंशीवादन, शोभावर्णन, गोपी—विरह, भक्त मर्यादा रक्षण जैसी कृष्ण लीलाओं को अपनी रचना का आधार बनाया है।

श्री कृष्णगीतावली तुलसीदास का रसमय और अत्यन्त मधुर गीति काव्य है। कुल 61 पदों की इस संक्षिप्त रचना में भी तुलसीदास ने संगीत और साहित्य के शास्त्रगत् नियमों को ध्यान में रखा है। इस रचना में भी तुलसीदास ने लगभग एक दर्जन रागों की व्यंजना कर उनके अन्तर्गत लावनी, सार, रूप सवैया, विजया, दण्डक, सरसी, कुण्डल, रूपमाला, घनाक्षरी, हरिगीतिका आदि छन्दों का प्रयोग किया है। रागों के अनुसार प्रयुक्त छन्दों का संक्षिप्त परिचय निम्नवत् है—

1—राग आसावरी— इस राग के अन्तर्गत लावनी, सार, और रूप सवैया छन्द की

रचना की गई है।

2–राग कान्हरा– इस राग में तीन पदों की रचना की गई है। तीनों पदों में 16 मात्रा की टेक के साथ सार और रूपसवैया छन्दों की रचना हे।

3–राग नट– इस राग में एक पद 23 मात्रा की टेक के साथ 40 मात्रा का विजया छन्द है।

4–राग ललित– इस राग में वर्णिक छन्द 'अनियमित दण्डक' का प्रयोग है।

5–राग सोरठ– इस राग में श्रीकृष्ण गीतावली में तीन पद हैं, इनमें 16, 18 एवं 19 मात्राओं की टेक है। तीनों पदों की रचना 'सार' छन्द में की गई है।

6–राग मलार– इस राग में दो छन्दों–सरसी तथा सार– की रचना की गई है।

7–राग धनाश्री– इस राग में सरसी, सार तथा रूप सवैया छन्द की रचना की गई है। ये पद 16 एवं 18 मात्रा की टेक वाले हैं।

8–राग बिलावल– रूप सवैया, लावनी और कुण्डल छन्दों की रचना इस राग के अन्तर्गत देखने को मिलती है।

9–राग केदारा– इसमें मात्रिक छन्द रूपमाला का प्रयोग हुआ है जो 14 मात्रा की टेक के साथ तथा 16 मात्रा की टेक के साथ प्रयुक्त है। इसके अतिरिक्त वर्णिक छन्द घनाक्षरी का प्रयोग भी दो पदों में हुआ है।

10–राग गौरी– इस राग में एक पद में हरिगीतिका छन्द है। तथा 32 मात्रा का रूप सवैया छन्द भी प्रयुक्त हुआ है।

तुलसीदास जी ने यथासम्भव अपने गीतिकाव्यों में छन्दों की रचना की है। इसमें अनेक पद ऐसे हैं जिनकी पंक्तियों की मात्राओं में विषमता है जिससे उनका छन्द निरूपण नहीं हो सका है। काव्य विषयक यह कठिनाई पद गेयता में व्यवधान पैदा नहीं करती है। छन्दों के विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि तुलसीदास ने विषय के अनुरूप पदों में छन्दों का प्रयोग कर अपनी सांगीतिक एवं काव्य सम्बन्धी प्रतिभा का परिचय दिया है।

लय का स्वरूप एवं लयात्मक–तत्व

गति से ही जड़ और चेतन का भेद प्रमुखतः जाना जा सकता है। जहॉ गति है, वहीं चैतन्य विकसित होता है। गति अपने में असीम है जब वह गति लय में सिमट आती है, तो उसका प्रत्यक्ष अनुभव होने लगता है। ताल में बंधने से इस गति का साक्षात्कार सहज ही उपलब्ध हो जाता है। यही लय जब 'ताल' और 'छन्द' में अपने को अनुशासित करके अभिव्यक्त करती है तो गान और काव्य का सृजन होता है।

भारतीय चिन्तन में 'लय' बहुविधि चर्चित है। योग की अंतिम स्थिति 'महालय' अर्थात् गति की असीमता को पकड़ उसमें एकाकार हो जाने का अभ्यास। सन्तों की भाषा में 'लौ लगने' के गहन अर्थ में परम साक्षात्कार का अनुभव। लय आवृतिमूलक है। संगीत और काव्य में यह लय काल सापेक्ष है। इसके विविध आयाम हैं।

ताल या आघात के बीच के मध्य विश्रान्ति को ही 'लय' का स्वरूप कहा गया है। जो सम्पूर्ण ब्रह्मण्ड में व्याप्त है। प्रकृति में व्याप्त लय से हम जितना तादात्म्य प्राप्त करते जाते हैं। उसने ही सहज हो सकते हैं। प्रकृति की लयात्मकता रात दिन के क्रम से लेकर ऋतु चक्रों के प्रत्यावर्तनों में उद्‌भूत होती है। यह लय अमूर्त भी है और स्वयं भू भी।

गति के अनुसार लय के तीन भाग मुख्य हैं। जिसका मुख्य आधार 'मध्यम लय' है। यह सहज और नैसर्गिक है। इस गति का अर्धभाग विलम्बित लय और उससे भी आधी अति विलम्बित लय है। ठीक इसी प्रक्रिया से मध्यमलय की जो दुगुनी लय है वह 'द्रुत लय' तथा चौगुनी लय अति द्रुत कहलाती है।

लय की अमूर्तता से स्थूल परिचय कराने वाला जो 'छन्द' निर्मित हुआ वही 'ताल' के नाम से जाना गया। ताल में क्रिया महत्वपूर्ण है। वस्तुतः ताल 'तल' से बना हुआ शब्द है। हाथ पर ताली देकर हम ताल को प्रकट करते हैं। यही ताल सशब्द होकर रूप ग्रहण करता हुआ आगे निःशब्द हो जाता है। विभिन्न प्रकार के भाववेग के उतार–चढ़ाव को

यही ताल नियंत्रित करता है।

भारतीय गायन वादन में विविध छन्दों पर लय के अनुरूप अनेक तालों की संरचना हुई। पूर्व में लगभग एक सौ आठ तालों का उल्लेख मिलता है। किंतु आज केवल पैंतीस ताल ही हैं जो सुने जा सकते हैं।

'ताल–वादन' भी भारतीय पद्धति में उपासना की एक विधि मानी गई है। अपनी गति मति के अनुसार ये ताल विभिन्न इष्ट देवों की आराधना के साथ स्थापित किए गये। और वादन इन्हें बजाकर इष्टदेवों को साकार अनुभव करते थे। ब्रह्मताल, ब्रह्मयोग ताल, रूद्रताल, लक्ष्मीताल, लीलाविलास ताल आदि अनेक उपासना मूलक ताल–छंदों का उल्लेख मिलता है।

भाव और लय का अन्योन्याश्रित संबंध है। भावाभिव्यक्ति लय पर और लयात्मकता भाव पर अवलम्बित है। कविता मनोवेगों की अभिव्यक्ति करती है, अतः कविता की भाषा में काव्येतर भाषा की अपेक्षा लय के भाव–साम्य वैभव का अत्यधिक प्राकट्य स्वाभाविक है। भाव की व्यंजना–शक्ति किस प्रकार शब्दार्थ–सापेक्ष शब्द–शक्तियों की अपेक्षा करती हैं। उसी प्रकार लय की भी।

तुलसी की भाषा में , काव्य में शब्द शक्तियों का उपयोग जितना उत्कृष्ट हुआ है, उतना ही लय का भी। लय–सापेक्ष व्यंजना के दो रूप दिखाई देते हैं– दृश्य विधायक और भाव–संवाहक। 'लय' के उभय पक्षों का सामन्जस्य तुलसी की कविता का महत्वपूर्ण गुण है, परन्तु कहीं–कहीं एक की अधिक प्रधानता है तो कही–कहीं दूसरे की। लय की अविरलता (निरन्तरता) समूचे भाव को खंड–2 में नहीं बल्कि अखण्ड रूप में उद्भाषित करती है। अतः भाव एवं रस किसी एक शब्द में या एक पद में नहीं बल्कि समूची लयात्मक संगति में व्याप्त रहता है। उदाहरण स्वरूप–

"खोटो खरो रावरौ हौं, रांवरी सौं रावरे सों

झूठ क्यों कहौंगौ? जानौ सबही के मन की।

करम वचन हिये कहीं न कपट किये

ऐसी हठ जैसी गांठि पानी परे सन की।।

दूसरो भरोसो नाहिं, वासना उपासना को

बासव बिरंचि, सुर नर मुनि गन की।।

स्वारथ के साथी, मेरे हाथ सों न लेवा देई

काहू तो न पीर रघुवीर दीन जन की।।'' (1)

लय के माध्यम से तुलसी के अन्तस की दीनता, कातरता और कथ्य की सत्यता सभी मूर्तिमान हो गई है।

काव्य की लय–योजना का सबसे बड़ा गुण उसमें 'कालान्तराल' की प्रमुखता है। संगीत में 'कालान्तराल के स्थान पर मुख्य आग्रह 'बलाघात' का रहता है। लय के बल–आघात की पहचान सहज व सरल है, जबकि कालान्तराल' की पहचान या उसके स्वरूप का मूल्याकंन उतना ही कठिन है। अतः लय–योजना के लिए मात्र बलाघात या स्वराघात पर ही पूर्णतः ध्यान देकर उसके कालान्तराल को ही प्रमुखता से ध्यान में रखकर तुलसीदास जी ने लय–साधना का उत्तम परिचय दिया है। फलतः उनके काव्य में लय का आहलादक सौंदर्य एवं भावोद्बोधन दोनों का ही सुन्दर विधान है।

तुलसी के लय–विधान में 'कालान्तराल' की योजना की सबसे बड़ी विशेषता है कि उन्होंने काव्य की भाषा को जीवन के व्यवहार की भाषा के निकट रखा है। काव्य की भाषा व सामान्य जीवन की भाषा–व्यवहार में अन्तर अवश्य है। फिर भी यह अन्तर संगीत की भाषा की तरह पूर्णतः असमान नहीं होता है। संगीत में 'लय पर किसी प्रकार के अंकुश की आवश्यकता नहीं रहती है। जितनी चाहे लम्बी हो या फिर छोटी। संगीत में लय का बंधन एक प्रकार के ढ़ांचे में बांधा जाता है, अर्थात् किसी न किसी निश्चित बोलो के ताल में 'लय' गीत की मांग के अनुरूप बंधी होती है।

---

(1) विनय–पत्रिका, टी0 राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी, पद–75, पृ0 86

काव्य की लय को खिंचाव और बलाघात दोनों से अपेक्षाकृत अधिक बचाना पड़ता है। संगीत की भांति काव्य में लय के स्वच्छन्द विलास के अभाव के कारण कवि की लय–योजना संगीतज्ञ की लय–योजना से अधिक दुःसाध्य और क्लिष्ट होती है। अतः तुलसी ने काव्य–भाषा की प्रकृति को पहचान कर उत्कृष्ट लय–योजना करते हुए भी उसे जीवन की भाषा के निकट रखा है। इसे निम्न पद में देखा जा सकता है–

'रावरी सुधारी जो बिगारी बिगरैगी मेरी,
कहाँ, बलि, वेद की न, लोकु कहा कहैगौ।
प्रभु को उदास भाव जन को पाप–प्रभाव
दुहुं भांति दीनबंधु! दीन दुख दहैगौ।
तेरे मुँह फेरे मोसे कायर कपूत कूर
लटे लट पटेनि को कौन परिगहैगो
बचन करम हिये कहौं राम सौंह किए
तुलसी पै नाथ के निबाहे निबहैगो। [1]

उपर्युक्त पद में भावना की तीव्रता के साथ–साथ लय की गति में भी क्रमशः तीव्रता आती गई है। लय के 'कालान्तराल' ने भाव की तीव्रता को क्रमशः विकसित करने में जितना योगदान किया है उतना ही उसे स्वर प्रदान करने भी।

पदों के चयन और वर्ण–संगति आदि के माध्यम से ही पद के संघटन में इस प्रकार की रमणीयता उत्पन्न हो जिससे सम्पूर्ण भाव खिल उठे तथा पद के प्रत्येक शब्द अत्यंत व्यजनापूर्ण होकर सजीव हो उठे, इसे ही काव्य की आदर्श लय–योजना कहा जाएगा। जिसमें तुलसी श्रेष्ठ सिद्ध हुए हैं।

तुलसी ने लय से नाद–सौन्दर्य उत्पन्न करने का भी काम किया है। भाव की रमणीयता के लिए नाद का हल्का सा पुट कई जगह दिखाई दिया है, परन्तु विशुद्ध नाद का

(1) विनय पत्रिका– 259

सौन्दर्य केवल नाद–व्यजंक स्थलों पर ही उभर कर सामने आया है।

'गरजहिं घन घण्टा धुनि घोरा, रथ रव बाजि हिंस चहु ओरा।

निदरि घनहिं घुर्म्मरहि निसाना, निज पराई कछु सुनिअ न काना।। [1]

लय में आवश्यक गति उत्पन्न करने के लिए तुलसी ने मात्र अनुप्रासों की ही नहीं, वरन, शब्द की अन्य शक्तियों का भी उपयोग किया है।

अनुप्रास का प्रयोग तुलसी के काव्य में सर्वत्र दिखाई देता है। तुलसी ने लय–सिद्धि के लिए अनुप्रासों का अनुपम उपयोग किया है।

''सीय चकित चित रामहि चाहा। भए मोह बस सब नरनाहा।

मुनि समीप देखे दोउ भाई। लगे ललकि लोचन निधि पाई।।[2]

यहाॅ 'चकित, चित' देखे दाऊ' ओर लगे ललकि लोचन में क्रमशः च, द और ल का अनुप्रास है। तीनों ही अनुप्रासों ने लय की योजना में सहायता प्रदान की है और भाव को संवेदा बनाया है। लय की दृष्टि से यह अनुप्रास के व्यवहार की यह सर्वोत्कृष्ट योजना है।

अनुप्रास का प्रयोग प्रायः लय की गति को तीव्र करने वाले स्थलों पर हुआ है, पर जहाॅ लय की गति को रोककर किसी भाव अथवा चित्र को चित्रित करने की बात आई, तो तुलसी ने अनुप्रास की अधिकता से भाषा को बचाया है। और विराम आदि या शब्द शक्तियों का प्रयोग किया है। जैसे

''लीन्हों उखारि, पहार बिसाल, चल्यो तेहि काल, बिलम्ब न लायो।'

लयात्मक विधान के लिए तुलसी ने वर्ण योजना को भावों के उद्रेक हेतु अपनाया है। वर्ण योजना का भावानुरूप संघटन लय के उत्कर्ष की आवश्यक विधि है। तुलसी ने अपने काव्य में इस विधि का सर्वत्र प्रयोग किया है।

'रघुवर बाल छबि कहौं बरनि।

---

(1) मानस पत्रिका 1, 301, 1।

(2) मानस पत्रिका 1, 248, 4।

सकल सुख की सींव, कोटि मनोज सोभा हरनि।
बसी मानहुं चरन कमलनि अरूनता तजि तरनि।
रूचिर नूपुर किंकिनी मन हरति रूनझुन करनि।।
भुजनि भुजग, सरोज नयननि, बदन बिधु जित्यो लरनि।
रहे कुहरनि, सलिल नभ उपमा अपर दुरि डरनि।।
लसत कर प्रतिबिम्ब मनि–आंगन घुटुरूवनि चरनि।
जन्तु जलज–संपुट सुछबि भरि–भरि धरति उर धरनि।।' (1)

उपर्युक्त पद की वर्ण–मैत्री में वर्णो की प्रकृति और मात्राएं ही नहीं शब्दों के स्वरूप भी समान है।

तुलसी की गीति काव्यों में माधुर्य, ओज अथवा प्रसाद गुण के अनुरूप वर्णो का चयन किया गया है। और यदि कहीं विजातीय वर्णों को ग्रहण भी किया गया है तो उसका कारण लय और भाव का आग्रह ही है।

इसके साथ ही तुलसी ने 'वर्ण–संगीत' को भी पूर्णतः ध्यान में रखा है। वर्ण–मैत्री, वर्ण–संगति के साथ्ज्ञ–साथ वर्ण–संगीत की वर्ण–योजना अनुप्रासों के स्वाभाविक प्रयोग से निखर उठी है–

छोटी–छोटी गोड़ियां अंगुरियां छबीलीं छोटी,
नख–जोति मोती मानो कमल दलनि पर।
ललित आंगन खेलें, ठुमुक ठुमुक चलैं।
झुंझुनु झुंझुनु पायं पैजनी मृदु मुखर। (2)

उपर्वक्त शब्दों से संगीत की झंकृति स्पष्ट हो रही है, अतः कहना न होगा कि तुलसी ने शब्दों एवं वर्णो का संघटन कर भावपूर्ण लय उत्पन्न की है। शब्दों ने लय

---

(1) गीतावली (बालाकाण्ड) 'तुलसीदास', पद सं027 पृ0 59।

(2) वही ....पद सं0 33, पृ0 66

निर्मित करने योगदान किया तो लय ने अनगढ़ शब्दों की प्रकृति को संवार कर उनमें भाव–रस उद्दीप्त किया। दोनों के सामन्जस्य से गीतिकाव्य की भाव–भूमि हरित हो गई।

यह अवश्य है कि वर्णों के प्रवेश से मात्राओं की संख्या घटी–बढ़ी है। गाने की दृष्टि से लघु–मात्रा दीर्घ, और दीर्घ लघु बनाई गई है, फलतः अनेक पदों में मात्राओं या वर्णों के क्रम की पूर्ण व्यवस्था नहीं प्राप्त होती है।

लय की दृष्टि से 'कबहुंक' 'कहिबो', बिगरिओ आदि शब्दों का प्रयोग तुलसी की सांगीतिक एवं लयात्मक दृष्टि का परिचायक है। यदि 'कबहुंक' के स्थान पर –'कुबंहु' का प्रयोग होता, तो भी उसके भाव एवं विचार में कोई न्यूनता नहीं होती, परन्तु लय के प्रवाह में अवश्य रूकावट आती, अतः लय एवं लयात्मकता के ये अनन्य उदाहरण तुलसी की सांगीतिक दृष्टि को उजागर करते हैं।

मात्रा या वर्ण संख्या, विराम गति या लय आदि से युक्त होने के कारण ही पद्य–काव्य, गद्य–काव्य की अपेक्षा अधिक मधुर और प्रिय रहा है। तथा उसकी भावनाएं अधिक सुग्राह्य और हृदयग्राही रहीं हैं। पद्य का यह विधान ही 'लय' का विधान है जो काव्य को ललित और मधुर बनाता है। काव्य के साथ संगीत भी मात्राकाल से आबद्ध होता है। संगीत के स्वर अक्षरों के लघु, दीर्घ और प्लुत पर आधारित हैं। यही संगीत की मात्रा–काल है। अर्थात् समय काल का मापदण्ड। जिन्हें संगीत शास्त्र में 'ताल' कहते हैं। काव्य में जिस प्रकार लय–बांट का आधार 'छंद' हैं उसी प्रकार संगीत में भिन्न–2 मात्राओं की तालें हैं।

तुलसी के गीति–काव्यों को भिन्न–2 तालों में बांधा गया है। जहाँ ध्रुपद का स्वरूप है वहाँ 'चारताल' 12–मात्रा में। 'धमार' में 14 मात्रा तथा 'द्रुतख्याल' में पदों को कई तालों में बांधा गया है। जैसे–ताल त्रिताल, ताल एक ताल, ताल कहरवा, ताल दादरा, ताल झपताल, एवं ताल दीपचन्दी।

इस प्रकार काल–निर्धारण और काल–मात्रा परक ताल ही संगीत के छन्द कहे जा सकते हैं या कहे जाएंगे। जिस प्रकार छन्द काव्य के अन्तर्गत भाव धारा की गति

को स्पष्ट करते हैं, उसी प्रकार संगीत में तालें राग–रागनियों को गति प्रदान करती हैं।

गोस्वामी तुलसीदास जी ने भाव और भाषा के, अनुभूति और अभिव्यक्ति के, रस और भाव के, काव्य और संगीत के जितने विविध पक्षों का उद्‌घाटन किया है वह आश्चर्य जनक और श्रेयस्कर है। 'हरिऔध' जी की निम्न पंक्तियां उनके 'कृतित्व' पर अक्षरशः सत्य बैठती हैं–

'कविता करके तुलसी न लसे,
कविता लसी पा तुलसी की कला'।।

सप्तम अध्याय

'वाग्गेयकार–तुलसी'

'वाग्गेयकार का शास्त्रीय स्वरूप'

'वाक्' और 'गेय' से मिलकर 'वाग्गेय' शब्द बना है अर्थात इन दोनों का कर्ता 'वाग्गेयकार' कहलाता है। 'वाक्' का अर्थ है– पद्य–रचना और 'गेय' का अर्थ है स्वर–रचना। इन्हीं को 'मातु' और 'धातु' कहते हैं। अर्थात– जो स्वर–रचना एवं पद्य–रचना दोनों का ज्ञान रखता हो, ऐसे संगीत–विद्वान को प्राचीन काल में 'वाग्गेयकार' की संज्ञा दी जाती थी। पाश्चात्य विद्वान इन्हें 'कंपोजर' (Composer) कहते हैं। वाग्गेयकार को साहित्य एवं संगीत दोनों का उत्तम ज्ञान होना आवश्यक है।

'वाग्गेयकार के तत्व'

संगीत रत्नाकर में शारंगदेव जी ने वाग्गेयकार के गुणों का विस्तृत वर्णन किया है,–

"वामांतुरूच्यते गेय धातुरित्यभिधीयते।
वाचं गेय च कुरूते यः स वाग्गेयकारकः।।
शब्दानुशासनज्ञानमभिधान प्रवीणता।
छंदः प्रभेदवेदित्यमलंकारेषु कौशलम्।।
रसभाव परिज्ञानं देशस्थितिषु चातुरी।
अशेष भाषाविज्ञानं कलाशास्त्रेषु कौशलम्।।
तूर्यत्रितयचातुरुयुं हृद्यशारीर शालिता।
लयताल कलाज्ञानम् विवेकोनेककाकुषु।।
प्रभूतप्रति भोद् भेदभाक्त्वं सुभगगेयता।
देशीरागेश्वभिज्ञत्वं वाक्पटुत्वं सभाजये।।
रागद्वेषपरित्यागः सार्द्रत्वमुचितज्ञता।

अनुच्छिष्टोक्ति निर्बंधो नूत्नधातुविनिर्मितिः।

परिचत्त परिज्ञानं प्रबंधेषु प्रगल्भता।

द्रुतर्गीतविनिर्माणं पदांतरविदग्धता।।

त्रिस्थानगमक प्रौढिर्विविधालप्तिनैपुणम्।

अवधानं गुणैरेभिर्वरो वाग्गेयकारकः।। (1)

उपर्युक्त श्लोकों का भावार्थ वाग्गेयकार के गुणों को प्रदर्शित करता है।

प्रथम श्लोक के अनुसार– जो वाक् अर्थात् मातु और गेय अर्थात् धातु का कर्ता है या पद्य–रचना व स्वर–रचना का ज्ञान रखता है, वही वाग्गेयकार है।

दूसरा जो व्याकरण शास्त्र, शब्द–ज्ञाता, छंद–ज्ञाता तथा साहित्य–शास्त्र द्वारा बताए गए उपमा आदि अलंकारों का ज्ञाता है।

तीसरा जिसे श्रृंगार आदि रसों और भाव–विभाव आदि का उत्तम ज्ञाता तथा भिन्न–2 देशों के रीति–रिवाजों तथा उनकी भाषाओं की जानकारी रखते हुए संगीतादि शास्त्रों में प्रवीण है।

चौथा गायन, वादन एवं नृत्य में निपुण तथा जिसे सुन्दर शरीर प्राप्त हुआ है। 'शरीर' अर्थात् जो रागों की अभिव्यक्ति में समर्थ हो उसके लिए 'हृद्य' अर्थात सुन्दर 'शारीर' का प्रयोग किया गया है। जो लय, ताल और कलाओं का ज्ञाता हो तथा जिसे भिन्न–2 स्वर काकुओं अर्थात् स्वर–भेदों का ज्ञान हो।

पॉचवाँ प्रतिभावान, कल्पनाओं में विचरण करने वाला तथा जिसे सुखदायक गायन करनें की कला प्राप्त हो। तथा देशी रागों का ज्ञाता जो अपनी वाक्‌पुटता से विजयी होता हो।

छठा जिसने राग–द्वेष का परित्याग करके सहजता, सरसता प्राप्त कर ली हो। अच्छे बुरे की पहचान हो। कब किस स्थान पर क्या चीज प्रस्तुत करनी है। जिसे स्वतंत्र

(1) पं0 शारंगदेव, 'संगीत रत्नाकर' प्र0 अ0

रचना एवं नई–2 रचनाओं को प्रस्तुत करने की शक्ति हो।

सातवाँ दूसरों के मन का भाव जानने वाला हो। प्रबन्धों का उच्च ज्ञाता हो। शीघ्रता से कविता रचने की क्षमता रखता हो तथा उसे भिन्न–2 गीतों की छाया का अनुकरण करने की सामर्थ्य हो।

अन्तिम जो तीनों सप्तक मंद्र, एवं तार में गमक लेने की शक्ति रखता हो तथा रागालप्ति, रूपकालप्ति में निपुण हो। उसमें चित्त की एकाग्रता का विशेष गुण हो।

ऐसे उपर्युक्त समस्त गुणों वाला व्यक्ति ही वाग्गेयकार की श्रेणी में आता है।

'वाग्गेयकार के रूप में तुलसी'

एक कुशल कवि के लिए आवश्यक है कि वह छंद–शास्त्र के साथ–2 संगीत शास्त्र में भी पारंगत हो। तुलसीदास की रचनाओं के लोकप्रिय होने का एक कारण यह भी है कि उनमें संगीतशास्त्र के प्रति रूचि एवं रूझान दिखाई दिया है। उनकी राग–रागिनियां भावानुकूल, रसानुकूल समयानुकूल एवं शास्त्र–सम्मत हैं। शब्द–योजना लय–ताल से परिपूर्ण एवं वर्ण–विन्यास सुमधुर है।

ऐसा लगता है कि भावना के तीव्र आवेग का परिणाम ही साहित्य व संगीत का संगम, और अनुपम संयोग है।

चूंकि संगीत में राग और ताल का विशेष महत्व है। 'राग' गीत का प्राण होता है। 'रञ्ज' धातु जिसका अर्थ है प्रसन्न करना इसी से राग शब्द बना है। परन्तु राग का महत्व तभी है जब साथ में लय व ताल हो।

भाव एवं समय का अद्भूत संगम एवं संयोग उनके साहित्य व संगीत की पारंगता को प्रकट करता है। विनयपत्रिका के पद सं0–41 में कवि तुलसी द्वारा सीता जी से राम से सिफारिश करने की विनय करता है। कवि जानता है कि राजाराम को एकान्त समय रात्रि में ही मिलेगा। अतएव कवि इस विनय के पद की रचना 'केदार' राग में करता

है। 'केदार' राग के गायन का समय रात्रि का दूसरा प्रहर है। इसी प्रकार जितनी भी राग–रागिनियों का वर्णन किया है, वे सर्वत्र भावानुकूल एवं संगीत शास्त्र सम्मत हैं।

गोस्वामी तुलसीदास की सांस्कृतिक वाणी आज सम्पूर्ण देश मं प्रतिष्ठित है और ग्राह्य है, फिर भी उनके व्यक्तित्व और कृतित्व का प्रसार उत्तरी भारत में ही हुआ है। उनके काव्यों का सृजन–क्षेत्र और विविध काव्य–शैलियां उत्तरी भारत से ही सम्बन्धित हैं। इससे उनकी गीति–शैली का हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति से संबद्ध होना स्वाभाविक है।

देवताओं, अवतारों आदि की अर्चना, वन्दना और भक्ति भावना के लिए संगीत में ध्रुपद और धमार दो शैलियां ही उपयुक्त हैं। अन्य शैलियां श्रृंगार और लोक–रंजन के तत्व को प्रकट करती हैं। अतः प्रथम शैली को ब्रह्म के सगुण एवं निर्गुण संगीतज्ञ भक्त कवियों ने प्रश्रय दिया जबकि दूसरी शैली को आश्रय उन संगीतज्ञों ने दिया, जिनकी गायकी राजा और नवाबों के आश्रय में पल्लवित हुई। प्रथम का संरक्षण ईश्वर के साधक स्वान्तः सुखाय करते थे। दूसरे के परान्तः सुखाय।

तुलसीदास जी राम के अनन्य भक्त व एक निवृत्तिमार्गी सन्त थे। राम के प्रति अपनी अनन्यता का प्रतिपादन ही उनकी वाणी का लक्ष्य था। यह प्रवृत्ति ध्रुपद और ध
मार गीति–शैलियों से मेल खाती है। इससे ये सिद्ध होता है कि तुलसी उपर्युक्त गीति–शैलियों से प्रभावित व आभारी थे। उनकी शैली में इसी शैली के विशुद्ध तत्व समाहित हैं।

विनय पत्रिका में आत्मयाभिव्यंजन प्रमुख है, तो श्री कृष्ण गीतावली और गीतावली में घटनाओं के प्रस्फुटन के साथ उनके हृदय ने कथा के मार्मिक और भावुक स्थलों को पहचाना है। तथा तद्विषयक कोमल चित्रण एवं सटीक रागों का वर्णन किया है।

तुलसी की वर्णनात्मक प्रवृत्ति के कारण उनके गीति –काव्यों की भावनाओं में कहीं–2 माधुर्य, प्रवाह और सौष्ठव में अभाव प्रतीत होता है। विनय पत्रिका के स्त्रोतपरक और गीतावली में चरित्र–परक लम्बे–लम्बे गीतों में अपेक्षित लालित्य नहीं दिखाई देता–किन्तु इनके छोटे–2 पदों में उनकी--भावनाएं अधिक मर्मस्पर्शी हैं। इन गीतों में सूर मीरा आदि के

समान ही गीतों में लालित्य और माधुर्य की अनुभूति है।

संगीत की सार्थकता रंजन करने में है। सिद्धान्ततः संगीत के अनुकूल भाव तथा संगीत और भाव के अनुकूल भाषा का प्रयोग आवश्यक ही नहीं अनिवार्य भी है। तुलसी के काव्य की अन्य शैलियों की अपेक्षा गीत–शैली अधिक कोमल और मधुर है। तुलसी ने अपने काव्य में ब्रजभाषा का प्रयोग किया है, जो प्रकृतितः अपने माधुर्य के लिए विख्यात है।

तुलसी की भक्ति–भाव–धारा के साथ यदि हम अपने अन्तरतम को मिलाते चलें तो वस्तुतः वे पंक्तियां हमें अपनी अपनी रस–माधुरी से रससिक्त कर देंगी।

तुलसी के गीति–काव्यों में समाहित संगीत के तत्वों ने जितना साहित्य को समृद्ध किया है, उतना ही साहित्य की भावनाओं से संगीत भी आभारी है केवल राग ही नहीं तालों (छन्दों) के उपयुक्त प्रयोग से भी गीति–काव्य समृद्ध है। ''संगीत की ताल के इस ईंट और गारे से ही काव्य के अन्तर्गत पदों अथवा गीतों की भित्ति का निर्माण हुआ है। उनके निर्माण कर्ताओं ने वस्तुतः दूने उत्साह के साथ अपने कर्तव्य को इति पर लाने की चेष्टा की है, इसमें जिस अध्यवसाय और मनोयोग की आवश्यकता थी उन्होंने उनका उपयोग किया है। इसी से संगीत कला विषयक–पच्चीकारी से वह काव्य के सौध में भावनाओं के सरोज मुकुलित कर सके हैं।''[1]

तुलसी के इस श्रेष्ठतम कार्य ने जहाँ एक ओर सहित्य को श्रेष्ठ स्थान पर पहुंचाया है, वहीं अपनी मनोरम भावनाओं के प्रयोग के कारण संगीत को भी नवीन शिक्षा दी है, इसी से साहित्य क्षेत्र में उनकी मान्यता है तो संगीत में भी उनका स्थान अक्षुण्ण है। इसी से इन काव्य–शैलियों के माध्यम से वे राम–ध्वनि जन–जन तक पहुंचाने में सफल रहे।

तुलसी ने अपने इन तीन पद–काव्यों की भावनाओं को सुग्राह्य एवं सुस्पष्ट करने के लिए उपयुक्त राग–रागिनियों की प्राण प्रतिष्ठा की है। जैसे– आसावरी, कान्हरा, केदारा, गौरी, धनाश्री, नट, बिलावल, मल्हार, ललित, सोरठ, बिहाग, भैरवी आदि।

---

(1) हिन्दी पद परम्परा और तुलसीदास, 'डॉ0 रामचन्द्र मिश्र', पृ0 276–277।

स्वर प्रधान होने के कारण संगीत के अन्तर्गत मात्रिक छन्दों की ही मान्यता है। पदों में मात्राओं के प्रयोग के कारण संगीत की ताल उनमें उचित रूप से अनुकूल बैठती है।

रागों के गायन समय की पद्धति प्राचीन काल से ही भारतीय संगीत में स्वीकृत व सर्वमान्य रही है। इस सिद्धान्त के विरूद्ध राग की प्राण–प्रतिष्ठा नहीं की जा सकती क्योंकि राग का जो विशेष गुण है 'रंजन करना', वो सम्भव नहीं हो पाता है। अतः तुलसी ने प्रकृति, वातावरण, भाव एवं रंजन के अनुरूप ही रागों को उन पदों के अनुरूप ही व्यक्त किया है।

संगीतात्मकता, आत्माभिव्यंजन, संक्षिप्तता और भावों की एकता ही गेय काव्य के तत्व हैं, जिनका प्रयोग तुलसी की शैली के काव्य में ग्रहण होता गया है। इसमें आत्माभिव्यंजन की भावना प्रमुख है। जिसको तुलसी ने किसी राग–रागिनी के प्रश्रय से प्रस्फुटित किया है।

मध्यकाल में संगीत अपनी ऊँचाइयों पर था। अतः तुलसी को इस स्वर्ण काल का लाभ मिला। अनेक प्रसिद्ध शास्त्रीय–संगीतज्ञों –तानसेन, बैजू बावरा, रामदास, मानसिंह प्रभृति आदि का यश फैल चुा था। गोस्वामी तुलसीदास पर साहित्यिक प्रभावों के अतिरिक्त शास्त्रीय संगीत का भी प्रभाव पड़ा था अतः ये स्वभाविक था कि उनके पदों में राग–रागिनियों का पूर्ण विचार है। तुलसी को अपने से पूर्व गीति शैली की अविच्छेद्य परम्परा मिली है। फलतः उन्होनें इसे ग्रहण कर श्रीकृष्ण गीतावली, गीतावली एवं विनयपत्रिका तीन गेय काव्यों की रचना कर डाली।

संगीत की सफलता माधुर्य और कारूण्य पर ही आधारित होती है। परूष एवं कटु तत्वों से इसका कोई वास्ता नहीं। श्रीकृष्णगीतावली और गीतावली दोनों काव्यों में वात्सल्य और श्रंगार के संयोग और वियोग दोनों की विविध परिस्थितियां समाहित हैं। अपनी गेय शैली के कारण ही शायद उन्होंने गीतावली में कैकेयी का वर मांगना, राम–रावण–युद्ध आदि जैसी कटु एवं परूष घटनाएं, यद्यपि जो रामचरित में प्रमुख हैं। उनका वर्णन नहीं किया है।

विनय पत्रिका में तो आदि से अन्त तक शान्त एवं भक्ति भावना का ही समावेश है। इस प्रकार तुलसी ने अपने गेय–काव्यों में काव्य वस्तु संगीत के अनुकूल ही रखी है।

उपर्युक्त गीति काव्यों की रचना पदों में हुई है। पदों में एक ओर भक्ति भावना की परम्परा साहित्य के रूप में सुरक्षित है, तो दूसरी ओर प्रगीत–तत्व का संगीत के रूप में सम्यक प्रस्फुटन भी हुआ है।

काव्य वस्तु और भाव का वैशिष्ट्य तो तुलसी में था ही, किन्तु उन्हीं के अनुकूल विधि काव्य रूपों और भाषा शैली का ग्रहण भी उन्होंने किया है। इसी से उनका गान किया हुआ राम–चरित मानस राजा से रंक तक को समेटे हुए है।

तुलसी ने यह सिद्ध कर दिया है कि राग और कविता के भाव का बड़ा घनिष्ठ संबंध है। उन्होंने अपने पदों में जिन रागों का उल्लेख किया है, उसके पीछे उनकी पैनी संगीत दृष्टि से मुख नहीं मोड़ा जा सकता है। भाव की अंतर्धारा से रागों की प्रकृति का सामन्जस्य दिखा कर उन्होंने निश्चित ही एक वाग्गेयकार के रूप में अपने को प्रतिष्ठापित किया है।

संगीत का मूलाधार स, रे, ग, म, प, ध और नी ये सात स्वर हैं। इनमें से 'स' और 'प' अचल या अटल स्वर कहलाते हैं। तथा शेष पांच स्वर– रे, ग, ध, नि और म के दो–दो रूप हैं– कोमल और तीव्र अतः इन बारह स्वरों के विभिन्न रूपों से ही सम्पूर्ण राग–रागिनियों का निर्माण होता है। यथा जिन राग–रागिनियों में कोमल स्वरों का प्रयोग किया गया है, उनसे करूण एवं श्रंगार रस की निष्पत्ति होती है।

उल्लास और वीरता के लिए शुद्ध स्वर वाले राग अधिक उपयुक्त होते हैं। अतः संगीत के मुख्य रूप से तीन रस–करूण, श्रंगार तथा वीर रस के लिए तीन प्रकार के मिश्रण वाले स्वर अपेक्षित हैं। राग के वादी–संवादी स्वरों को ध्यान से देखने पर उस राग की प्रकृति का ज्ञान हो जाता है। जैसे–

भक्ति एवं करूण रस में कोमल रे ध वाले राग उपयुक्त हैं। जैसे – भैरव,

कालिंगड़ा, तोड़ी, जोगिया और ललित आदि।

श्रंगार रस के लिए कोमल ग नि वाले राग जैसे– आसावरी, काफी, बागेश्वरी आदि।

सामान्यतः शुद्ध स्वर वाले राग वीर–रस और उल्लास का भाव प्रकट करते हैं। जैसे–शंकरा, भूपाली, हिंडोल आदि।

इसके अतिरिक्त कुछ राग इसके अपवाद भी हैं। जैसे– राग मालकौंस कोमल ग नि वाला राग है, परन्तु यह वीर रस–प्रधान राग है। इसके अतिरिक्त बिहाग में सब स्वर शुद्ध हैं, परन्तु यह वीर रस कदापि नहीं उत्पन्न करता है।

तुलसी ने अपने गीति–काव्य में कोमल स्वर वाले रागों को ही लिया है। जिससे सम्पूर्ण काव्य में भक्ति–रस के अनुकूल ही राग–योजना हुई है। विनय–पत्रिका गीतिकाव्य में विनय–भक्ति के कारण तोड़ी, जोगिया, भैरव आदि ऐसे रागों का उल्लेख किया है। जो करूणा से परिणूर्ण हैं। गीतावली में कान्हरा, सारंग, केदार आदि रागों का उल्लेख है। श्री कृष्ण गीतावली में वर्षा–वर्णन के कारण राग मल्हार का प्रयोग तथा गोपिकाओं के विरह को बिलावल, धनाश्री तथा केदार में बांध कर वियोग–श्रंगार को स्थापित किया है। 'करूणा' से सम्बन्धित पदों को सोरठ (देस) में बांधा है।

इस प्रकार तुलसी ने भावानुकूल राग–योजना कर राग की प्रकृति के अनुसार पदों को संगीतात्मकता प्रदान की है। तथा रागों के समय–विभाजन को दृष्टि में रखते हुए पदों को भावानुकूल के साथ–2 समयानुकूल भी प्रदर्शित किया है।

तुलसी के गीतों की सफलता यद्यपि उनकी शब्द योजना पर तो अवलंबित है ही परन्तु उन्होंने गीतों को सुगमता पूर्वक ताल–बद्ध भी किया है। विनय का एक पद उद्धृत है–

"ऐसो को उदार जग माहीं।

बिनु सेवा जो द्रवै दीन पर, राम सरिस कोउ नाहीं।।[1]

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15	16
धा	धिं	धिं	धा	धा	धिं	धिं	धा	धा	तिं	तिं	ता	ता	धिं	धिं	धा
				ऐ	ऽ	सो	ऽ	को	ऽ	उ	दा	ऽ	र	ज	ग
मा	ऽ	ऽ	ही												
								बि	नु	से	ऽ	वा	ऽ	जो	ऽ
द्र	वै	ऽ	दी	ऽ	न	प	र	रा	ऽ	म	स	रि	स	को	उ
ना	ऽ	ऽ	ही												
X				2				0				3			

उपर्युक्त गण–विधान ताल के सर्वथा अनुकूल हैं। इसी प्रकार अनेक पद गीतों को ताल–बद्ध कर उनकी छंद गणना को प्रमाणिक किया जा सकता है।

तुलसी ने अपने गीति–काव्यों में राग एवं ताल के अतिरिक्त वाद्य यंत्रों का भी उल्लेख किया है। जैसे–

बीना बेनु संख धुनि धारा [2]

बाजति ताल पखाउज बीना [3]

भूपति–सदन सो हिले सुनि बाजैं गह गहे 'निसान' [4]

बरषहिं बिवुध–निकर–दुसुमावलि, नभ–दुंदुभि बजाई' [5]

घंटा–घंटि, पखाउज–आउज, झांझ, बेनु,डफ–तार' [6]

---

(1) मानस–मयूख, पृ0 344,मार्च 1967

(2) रामचरित मानस – अयोध्या0 37/5।

(3) रामचरित मानस – लंका010/9।

(4) रामचरित मानस – बाल0 154/4।

(5) गीतावली –बाल01।

(6) वही ....बाल0 21।

इस तरह वीणा, निसान, दुंदुभि, शहनाई, झांझ, मृंदग, पखावज, नफीरी, भेरी
ढोल, पनव, डिंडमी, बिरव, बेनु, डफतार, करताल, डमरू, संख आदि का उल्लेख किया है।

यही नही नृत्य के भी कई चित्र उपस्थित किए हैं। राम विवाह के अवसर पर गीतावली में दृष्टव्य है–

'दुंदभि बजाई गाई, हरषि बरषि फूल
सुरगन नाचैं नाच गायक हूँ नाक के' [1]

गायन, वादन एवं नृत्य अर्थात् सम्पूर्ण संगीत परक दृष्टि उनके काव्य में दिखाई देती है। दोनों का सामन्जस्य उनको निश्चित रूप से एक उत्कृष्ण वाग्गेयकार की श्रेणी में ला खड़ा करता है। और यही धारणा है कि उनके गीति–काव्य संगीत शास्त्र के निकष पर पूर्ण रूप से खरे उतरे हैं।

अतः तुलसी ने हिन्दी गेय परम्परा की पृष्ठभूमि में मानवता वादी धार्मिक भावनाओं का गीत–काव्य के रूप में एक सुस्पष्ट स्वरूप समाज और साहित्य के समक्ष प्रस्तुत किया। संगीत के माधुर्य में साहित्य की ग्राह्यता स्वीकार कर एवं उसे जन–जन तक पहुंचाने में तुलसी सफल रहे है।

---

(1) गीतावली –बाल094/2।

उपसंहार

उपसंहार

'कला' का जन्म ही मानव को अपने भावों को प्रकट करने के उद्देश्य से हुआ है। कलाकार की कृति उसकी भावनाओं का दर्पण होती है। संगीत और काव्य दोनों ही कलाएं गतिशील हैं। कवि कल्पना को शब्द व अर्थ द्वारा, संगीतज्ञ नाद एंव स्वर द्वारा उसे साकार रूप प्रदान करता है। काव्य की काया ही शब्द और अर्थ से निर्मित है। तथा संगीत का प्राण नाद एवं स्वर है। जिस प्रकार काव्य में संगीत–तत्व आवश्यक है। उसी प्रकार कंठ संगीत में भी काव्य–तत्व सहायक हैं। संगीत–तत्व एवं काव्य–तत्व की यही मूल प्रतिष्ठा मध्यकाल के सन्त कवियों में भी दिखाई दी है, इन सन्त कवियों ने अपने पदों, भजनों एवं रचनाओं में गायन को ही दृष्टि में रखा है।

गोस्वामी तुलसीदास भी मध्यकालीन सन्त थे। उन पर तत्कालीन संगीतज्ञों का प्रभाव दिखाई देता हैं। उन्होंने अपने गीतिकाव्यों में रागों का उल्लेख कर अपनी सांगीतिक रूचि–प्रवृत्ति का परिचय दिया है। पदों में रागात्मक अनुभूति,, चित्तरंजन एवं अन्तदर्शन की ऐसी कलात्मक अभिव्यक्ति है, जो जन मानस के साथ हमारे रागात्मक सम्बन्ध को सुरक्षित ही नहीं रखती, वरन् अपने संवेगात्मक कोमल स्पर्श से हृदय वीणा को झंकृत करने की अपूर्व क्षमता रखती है।

तुलसीदास के प्रमाणिक 12 ग्रन्थों का प्रबन्ध, मुक्तक एंव निबन्ध शीर्षक के अन्तर्गत संक्षिप्त रूप से परिचयात्मक विवरण दिया गया है। साथ ही गीतिकाव्यों विशेष रूप से 'विनय–पत्रिका', 'गीतावली' एवं 'श्रीकृष्ण गीतावली' के पदों का गीतिकाव्य की विशेषताओं के साथ उनका विस्तृत विवेचन उदाहरण सहित किया गया है। जिससे तुलसी की व्यापक दृष्टि का परिचय मिलता है। उपर्युक्त गीति–काव्यों में तुलसी ने कुल 21 रागों की योजना दर्शायी है। ये राग आसावरी, जैतश्री, बिलावल, केदारा, सोरठ, धनाश्री, कान्हरा, कल्याण, ललित, विभास, नट, तोड़ी, सारंग, मलार, गौरी, मारू, भैरव, बसन्त, भैरवी, बिहाग, रामकली

हैं। रागों के साथ–साथ इन गीति–काव्यों के पदों की शब्द–योजनाओं में लय–प्रवाह को प्रधानता दी गई है। गीति काव्यों में विविध मनोभावों की प्रस्तुति में विविध रागों की योजना की है। जो ऋतु एवं समय की दृष्टि से भी खरे उतरते हैं।

इसमें श्रृंगार, उल्लास, स्त्रीस्वभावोचित गुण उत्साहपूर्ण, ओजस्वी प्रवाहपूर्ण, घात–प्रतिघात एवं रूद्र भावों की योजना के अनुसार ललित, कान्हरा, धनाश्री–केदार, मलार, और सोरठ आदि रागों को स्थापित किया है। ओजस्वी एवं उत्साहपूर्ण भावों के लिए भैरव तथा मारू की योजना गीतावली में देखने को मिली है। बिलावल राग में भावों की उपयुक्तता के आधार पर मधुरता का प्रमाण मिलता है। सभी रागों को समय, रस एवं ऋतुओं के आधार पर उल्लिखित किया गया है।

गीतावली में विविध रागों की योजना है, परन्तु 'चर्चरी' राग को लेकर विद्वानों में सहमति नहीं बन पाई है, क्योंकि 'चर्चरी' कोई राग है ही नहीं। वस्तुतः चर्चरी होली गाने की एक पद्धति मात्र है या एक वर्णिक वृत्त, जिसमें अठारह वर्ण होते हैं या एक मात्रिक वृत्त जिसमें छब्बीस मात्राएं हैं। इसके प्रमाण के लिए काशी–नागरी–प्रचारिणी सभा द्वारा एक प्रकाशित 'शब्द–कोष' या 'छंद–शास्त्र' की पुस्तक देखी जा सकती है। ऐसा 'निबंध–संगीत' में वचन देव कुमार ने अपने लेख 'तुलसीदास के गीति–काव्य में संगीत–योजना' के पृ0 527 पर उद्धृत किया है।

इसी प्रकार 'सूहो' भी बिलावल राग का ही एक प्रकार है। अतः इसे भी स्वतंत्र राग मानना उपयुक्त नहीं है। महाकवि तुलसीदास अपने आराध्य राम के प्रति किसी भी क्षण को खाली नहीं छोड़ना चाहते थे। अतः उन्होंने अपने ह्रदय की सारी विह्वलता को दिवस के प्रथम प्रहर वाले राग बिलावल, विभास, भैरव आदि से लेकर रात्रि के अंतिम प्रहर वाले वसन्त, ललित और यहाँ तक कि ऋतु परक राग मल्हार, बसन्त आदि में पदों का संयोजन किया। और यही कारण है कि उनकी भावानुकूल राग–योजना, शब्द योजना माधुर्ययुक्त वर्ण–विधान उन्हें संगीतज्ञ भी सिद्ध करता है। संगीतात्मकता एंव संगीत शास्त्र के

नियम इनके गीति–काव्यों पर खरे उतरते हैं।

संगीत के साथ–साथ तुलसीदास ने अलंकारों, रसों, भाषा–शैली के द्वारा लालित्य पूर्ण पदों की योजना प्रदर्शित की है। अतः तुलसी ने सिद्ध कर दिया है कि संगीत ही गीतों की आत्मा है। गीति काव्यों की प्रत्येक विशेषता में तीनों काव्यों का सफल सिद्ध होना ही तुलसीदास को समकालीन (मध्यकालीन) समस्त कवियों में श्रेष्ठ सिद्ध करता है मध्यकाल में संगीत अपनी स्वर्णिम अवस्था में था। संगीत का भक्तिपूर्ण स्वरूप भी सामने आया। इस समय शास्त्रीय संगीत का स्वरूप संवरा, तो वहीं भक्त कवियों ने अपने काव्य या पदों से भक्तिमय वातावरण निर्मित किया।

तुलसीदास के काव्य में संगीतात्मकता की सशक्त उपस्थिति एक संयोग मात्र नहीं थी। उन पर तत्कालीन संगीतज्ञों का जबरदस्त प्रभाव था। तुलसी ने अपने काव्य में संगीत के तीनों पक्ष गायन, वादन एवं नर्तन एवं अपने युग में प्रचलित सभी राग–रागिनियों को स्थान दिया।

तुलसी के समकालीन अनेक संत कवि जैसे– सूरदास, मीरा, कबीर, रैदास, मलूकदास, सूफी गायक , बल्लभाचार्य आदि कई पूर्ववर्ती कवियों का भी प्रभाव तुलसी पर पड़ा। तुलसी के समकालीन इन कवियों के संगीत ज्ञान के सापेक्ष तुलसी के काव्य का अध्ययन करने पर तत्कालीन संगीतज्ञों का प्रभाव तुलसी पर देखा गया।

तुलीसदास ने देशाटन के दौरान अनेक विद्वानों के साहित्य का तथा संगीत विद्वानों के सामीप्य का लाभ लिया, जिसका प्रभाव उनके काव्य में दिखाई दिया है। कई लोगों को तुलसी ने प्रभावित किया और कई लोगों से तुलसी भी प्रभावित हुए। यही लगता है कि संगीतज्ञों, कवियों के सम्पर्क में आकर देशाटन से विविध स्थानों पर सत्संग से तुलसी ने ज्ञान प्राप्त किया। यह तो तय है कि तुलसी पर पूर्ववर्ती एवं समकालीन संगीतज्ञों का प्रभाव तो पड़ा होगा, परन्तु इनके साक्ष्य रूप में प्रमाण लगभग नगण्य हैं।

कहना न होगा कि तुलसी की सांगीतिक रूचि प्रवृत्ति ही तुलसी को साहित्य

शिरोमणि के साथ–साथ एक श्रेष्ठ वाग्गेयकार बना गई। और यही कारण था कि तुलसी के गीति काव्यों की श्रेष्ठता आज भी पाठकों को उन पर भिन्न–भिन्न दृष्टि कोणों से शोध करने को आकर्षित करती है एवं प्रेरणा प्रदान करती है।

तुलसी ने अपने गीति काव्यों के पदों में जिन–2 रागों का उल्लेख किया है। उन रागों में पदों का स्वराकंन एवं ताल–निरूपण कर सी0डी0 में रिकार्ड किया गया है, जो परीक्षकों के मूल्यांकन में सहायक एवं अपेक्षित है।

सन्दर्भ-ग्रन्थ

संदर्भ–ग्रन्थ

आलोच्य–ग्रन्थ

1– विनय–पत्रिका — तुलसीदास

2– गीतावली — तुलसीदास

3– श्रीकृष्ण गीतावली — तुलसीदास

सहायक–ग्रन्थ

1– विनय–पत्रिका (टीका) — श्री गोपी नाथ तिवारी

2– विनय–पत्रिका (टीका) — श्री राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी

3– गीतावली विमर्श (टीका) — डॉ0 रमेश चन्द्र मिश्र

4– श्री कृष्ण–गीतावली (टीका) — श्री हनुमान प्रसाद पोद्दार

5– तुलसी–काव्य–मीमांसा — डा0 उदयभानु सिंह

6– तुलसी–काव्य–चिंतन — राम प्रतिपाल मिश्र

7– तुलसी दास और उनका काव्य — रामनेरश त्रिपाठी

8– तुलसीदास की कारयित्री प्रतिभा का अध्ययन — डॉ0 श्रीधर सिंह

9– तुलसी साहित्य और सिद्धान्त — यज्ञदत्त

10– तुलसी की साहित्य साधना — डॉ0 लल्लन राय

11– तुलसी साहित्य की भूमिका — श्री रामरतन भटनागर

12– तुलसीदास — श्री रामरतनं भटनागर

13– गीति–काव्य — डॉ0 राम खेलावन पाण्डेय

14– तुलसी — सं0 उदयभानु सिंह

15– हिन्दी पद परम्परा और तुलसीदास — डॉ0 रामचन्द्र मिश्र

16– संगीत–विशारद — बसन्त

17– नाट्य–शास्त्र — भरत

18– संगीत रत्नाकर — शारंगदेव

19– राग–विबोध — सोमनाथ

20– संगीत–शास्त्र — के0वासुदेव शास्त्री

21– राग–विज्ञान — वि0ना0 पटवर्धन

22– छन्द–प्रभाकर — जगन्नाथ भानु

23– भातखण्डे संगीत शास्त्र — पं0 भातखण्डे

24– संगीत–चिन्तामणि — आचार्य ब्रहस्पति

25– भारतीय संगीत कोष — विमल कान्त राय चौधरी

26– सौन्दर्य एवं रस–सिद्धान्त — निर्मला जैन

27– संगीत–शास्त्र — विशन स्वरूप

28– निबन्ध–संगीत — संकलक– लक्ष्मी नारायण गर्ग

29– संगीत–चिन्तन — रवीन्द्र नाथ टैगोर

30– Sound of sacred religious music in India — S. Thielamaum

31– Hindustahi Music — J.S. Ranade

32– भारतीय संगीत एक ऐतिहासिक विश्लेषण — डॉ0 स्वतंत्र शर्मा

33– भारतीय संगीत एक वैज्ञानिक विश्लेषण — डॉ0 स्वतंत्र शर्मा

34– राग और–रस के बहाने — केशव चन्द्र वर्मा

35– राग–परिचय भाग 2, 3, 4 — डॉ0 हरिश्चन्द्र श्रीवास्तव

पत्र–पत्रिकाएं

1– छायानट — उ0 प्र0 संगीत नाटक अकादमी, लखनऊ

2– संगीत कला बिहार

3– संगीत — प्रभुलाल गर्ग, हाथरस

4– Music To day

5– सम्मेलन–पत्रिका — सं0 श्री राम नाथ सुमन, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग